कृषि में उन्नति

डा० सन्तबहादुरसिंह

एम० एस० सी०, पी० एच० डी० (लंदन)

कृषि-सचालक उत्तर-प्रदेश.

भानुप्रतापसिंह

एम० एस० सी०

मोहना कृषि-फार्म, बस्ती

कृषि में उन्नति

लेखक

डाक्टर सन्तबहादुरसिंह

एम० एस० सी०, पी० एच० डी० (कैन्टब)

संचालक कृषि-विभाग

उत्तर-प्रदेश

और

भानुप्रतापसिंह

एम० एस० सी०

सोहना कृषि-फार्म

(जिला बस्ती)

पहिला एडीशन ३००० | दूसरा „ ६००० | तीसरा „ ६००० | चौथा „ ६०००

मूल्य ३)

विषय-सूची

चौथा अध्याय

जुताई तथा भूमि-सुधार

पाँचवाँ अध्याय

उन्नत बीज

छठा अध्याय

चारा

सातवाँ अध्याय

सिंचाई

आठवाँ अध्याय

गन्ना

नवाँ अध्याय

गेहूँ, धान और मक्का

दसवाँ अध्याय

आलू, चना, तम्बाकू और जौ

ग्यारहवाँ अध्याय

अन्य फसलें

बारहवाँ अध्याय

फसलों की बीमारियाँ और उनकी रोक-थाम

तेरहवाँ अध्याय

चौदहवाँ अध्याय

कृषि-उपयोगी अन्य बातें

भूमिका

२२ नवम्बर, सन् १९५२ का दिवस, जब कि श्रीजवाहरलाल नेहरू ने फसल प्रतियोगिता में सफल होनेवाले किसानों को स्वयं अपने हाथों पारितोषिक वितरण किया, उत्तर-प्रदेश के किसानों के लिये चिरस्मरणीय रहेगा। सारे उत्तर-प्रदेश के किसानों के लिये वह गर्व का अवसर था कि भारतवर्ष के प्रधान मंत्री ने उत्तर-प्रदेश के किसानों को इतना प्रोत्साहन दिया। उसी सभा में श्रीजवाहरलाल ने जो बातें खाद्यान्न समस्या के विषय में कहीं वह भी उत्तर-प्रदेश के किसानों को एक क्षण के लिये नहीं भूलना चाहिये। उन्होंने कहा था कि हमारे देश के लगभग तीन-चौथाई मनुष्य खेती का काम करते हैं और उसी की पैदावार पर उनका जीवन निर्भर है। पारितोषिक पानेवाले किसानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पैदावार कहाँ तक बढ़ाई जा सकती है। यह सब होते हुए भी यह समझ में नहीं आता कि हमारे देश में खाद्यान्न की कमी क्यों है। परन्तु कमी है और वह भी थोड़ी कमी नहीं। अरबों रुपयों का खाद्यान्न दूसरे देशों से मँगाना पड़ता है। यह दशा हमारे देश के लिये शोचनीय है। यदि किसी समय विश्वव्यापी युद्ध छिड़ जाय तो यह समस्या भयानक रूप धारण कर सकती है। बाहर के देशों से अन्न आना बन्द हो जायेगा। यदि जल्दी से जल्दी हम अपने देश को खाद्यान्न में स्वावलम्बी व सम्पन्न नहीं बना लेते हैं तो युद्ध से पृथक् रहने पर भी अन्न-संकट ही हमारा सबसे बड़ा संकट बन जायगा। जो धन हम अन्न मँगाने में खर्च करते हैं उसको हम अपने देश के और बड़े कामों में लगाकर इसकी स्थायी रूप से उन्नति कर सकते हैं।

१२ जून, सन् १९५१ को भारत सरकार के खाद्य और कृषि-मंत्री श्री के० एम० मुन्शी ने दिल्ली रेडियो पर भाषण देते समय बतलाया था कि कितना गल्ला किस देश से भारतवर्ष में उस साल आया था। उसके आँकड़े निम्नलिखित हैं। अमेरिका १७००००० टन, अर्जनटीना ५१३००० टन, थाइ-लैंड ३४३००० टन, बरमा ३४३००० टन, रूस १००००० टन, पाकिस्तान २१८००० टन, कनाडा २९६००० टन, आस्ट्रेलिया २४०००० टन, उरूगुई ३०००० टन, चीन ५१७००० टन, कुल मिलाकर लगभग ४३००००० टन

अन्न भारत में आया। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने २० लाख टन गेहूँ अमेरिका से और माँगा और वह भी मिल गया और १९५१ में खाद्यान्न की कमी पूरी हो गई। इस अन्न को भारतवर्ष पहुँचाने में जहाजों की कमी पड़ी, तब ४५ जहाज अमेरिका से और १०० जहाज इँगलैंड से सहायता के लिए मिले और सारा अन्न हमारे देश में आ गया।

इन आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि यदि विश्वव्यापी युद्ध दो-चार साल में छिड़ गया तो बाहर से अन्न लाना असम्भव हो जायगा। सब जहाज युद्ध की सामग्री व सेनाएँ देश-देशान्तर पहुँचाने में लगे रहेंगे। बहुत से जहाज लड़ाई में डूब भी जाते हैं, इसलिये इनकी और भी कमी हो जाती है। युद्धकाल में बाहर से ट्रैक्टर, उनके पुर्जे, तेल इत्यादि भी बड़ी कठिनाई से मिलते हैं। हमारे देश के सहस्रों इंजन और ट्रैक्टरों के चलने में भी ऐसे समय में इतनी अड़चनें पड़ सकती हैं कि वह भी ठीक से काम न कर सकेंगे और बहुत से नए फार्म इत्यादि जो मशीनों के ही सहारे चल रहे हैं उनकी भी पैदावार गिर जाने का भय है। हमारे देश में यदि अन्न की कमी बनी रही तो युद्ध में भाग न लेने पर भी हम असंख्यों को खाना ही नहीं मिलेगा और हजारों-लाखों को मृत्यु का सामना करना पड़ेगा। यह संकट लड़ाई के संकट से भी विकट हो जायगा। जो स्वतंत्रता असंख्य देशभक्तों के त्याग और बलिदान के फलस्वरूप हम लोगों को बहुत दिनों बाद प्राप्त हुई है उसकी रक्षा भूखे रहकर नहीं हो सकेगी। यह स्वतंत्रता तभी सफल होगी जब सब भारतवासियों को पेट भर अन्न की कमी न हो। जब तक हमारे देश को कल-कारखानों के अतिरिक्त भोजन सामग्री अरबों रुपये की बाहर से मँगाना पड़ता है, उस समय तक हमारा जीवन-स्तर ऊपर नहीं उठ सकता।

पिछले तीन साल के परिश्रम का फल यह अवश्य हुआ है कि ३ अप्रैल सन् १९५४ को बम्बई में भारत सरकार के खाद्य व कृषि-मंत्री श्री रफी अहमद किदवई ने बतलाया कि अब किसी चीज की कमी नहीं है, चावल की भी कमी नहीं है। उन्होंने कहा कि अब लोग जितना खा सकते हैं, उतना खायँ।

बहुत से किसानों ने व कृषि-विज्ञान-वेत्ताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि उचित खाद, पानी, बीज, जोताई, निराई, गोड़ाई करने पर और उचित समय पर सब कृषि-कार्य करने पर कोई ऐसी फसल नहीं है जिसकी पैदावार साधारण पैदावार की चौगुनी न की जा सके। १०० से २०० प्रतिशत पैदावार बढ़ा

देने का काम कठिन नहीं है यदि पानी का उचित प्रबन्ध हो और किसान की प्रबल इच्छा व जानकारी हो। ऐसे किसान हर गाँव में दो-चार रहते हैं जिनके खेतों की पैदावार अन्य आलसी और नासमझ किसानों की तुलना में दूनी तो हो ही जाती है। हमारे देश में तो केवल १० या १२ प्रतिशत की ही अन्न में कमी है और यह कमी जल्दी ही पूरी हो जाय यदि सब किसान थोड़ा-थोड़ा आगे बढ़ें। हमारे भारतवर्ष की जन-संख्या लगभग १४००० प्रतिदिन बढ़ जाती है। इन अपने नए बच्चों के हेतु तो अवश्य ही हम किसानों को मानसिक व शारीरिक आलस्य छोड़ना ही पड़ेगा।

इसी उद्देश्य से किसानों की जानकारी बढ़ाने के लिये यह पुस्तक ऐसी भाषा में लिखी गई है जो सबकी समझ में आ जाय व हरएक हिन्दी जानने-वाला किसान इसको पढ़कर कृषि-विज्ञान से पूरा लाभ उठा सके। इस पुस्तक में वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग कम किया गया है, जहाँ अनिवार्य था वहाँ अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है जिससे पाठकों को भ्रम न हो। जानवरों की विष्ठा और खरपतवार कैसे पौधे के भोजन में परिवर्तित होती है, यह एक गूढ़ वैज्ञानिक विषय है। इसे सरल भाषा में समझाना कठिन है फिर भी इसे सरल से सरल भाषा में खाद के अध्याय में समझाने का प्रयत्न किया गया है। यदि कुछ पाठकों को इसे पढ़ने या समझने में कठिनाई हो तो वे इस विषय को छोड़ दें। इसको छोड़ देने पर भी शेष पुस्तक की उपयोगिता कम नहीं होती है।

इस पुस्तक के तीन संस्करण पहिले छप चुके हैं। पहिले व दूसरे संस्करण में मैं ही अकेला लेखक था। तीसरे और चौथे संस्करण के लिखने में श्रीभानुप्रतापसिंह एम०एस-सी० ने भी पूरा भाग लिया है। पाठकों को इनका परिचय कराना आवश्यक समझता हूँ। लगभग १५ साल हुये, सर जान रसल इंगलिस्तान के कृषि-विज्ञान के सबसे बड़े विद्वान भारतवर्ष का दौरा कर रहे थे और यहाँ के विश्वविद्यालयों व कृषि-अनुसंधानशालाओं का निरीक्षण कर रहे थे। मुझे उनके साथ काशी व इलाहाबाद के विश्वविद्यालयों और वहाँ के गाँवों को देखने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। सर जान रसल ने विश्वविद्या-लयों में भाषण देते समय बारम्बार यह समझाया कि आक्सफोर्ड व कैम्ब्रिज से उत्तीर्ण विद्यार्थियों की भाँति यहाँ भी उच्च शिक्षा प्राप्त किये हुए नव-

युवकों को खेती के काम में लग जाना चाहिये। पढ़े लिखे खेतिहरों और किसानों के बिना इंगलिस्तान में खेती की उन्नति नहीं हो सकती थी और न भारतवर्ष में ही होगी। पढ़े-लिखे किसान ही अन्य किसानों के सामने आदर्श खेती करके उनको प्रभावित कर सकते हैं। वही कृषि-वैज्ञानिकों और कृषकों के बीच जो बड़ा अन्तर है उसे भर सकते हैं। कृषि विद्या के नवीनतम ढंग स्वयं प्रयोग करके किसानों तक उनको पहुँचा सकते हैं। सर जान रसल के भारतवर्ष आने के एक वर्ष बाद मेरे सुपुत्र भानुप्रतापसिंह एम० एस-सी० पास हुए। मेरे पिताजी ने उन्हें कुछ दिनों के लिये इंगलैंड भेज दिया। वहाँ से लौटने के बाद सर जान रसल के कथनानुसार उन्होंने खेती करना आरम्भ कर दिया। चौदह साल से अब वह खेती कर रहे हैं और हमारे पैत्रिक भूमि की पैदावार पहिले से तीन गुनी कर लिया है। हम लोगों को हर्ष है कि सर जान रसल की बात पूर्णतया सत्य निकली। भानुप्रतापसिंह की सफलता देखकर उनके पड़ोस में कई नये-नये ट्यूब-वेल (इंजन से चलने वाले कुएँ) और कई ट्रैक्टर आ गये हैं। उन्नत खाद व कम्पोस्ट का और उन्नत बीज का प्रयोग बढ़ गया है। इनके अनुभवों का पूरा लाभ पाठकों तक पहुँचाने के लिये ही मैंने श्री भानुप्रतापसिंह से भी इस पुस्तक के लिखने में पूरी सहायता ली है।

सन्तबहादुरसिंह

अध्याय १

उत्तर-प्रदेश के किसान और उनमें प्रचार का ढंग

उत्तर-प्रदेश में कृषि की उन्नति के लिए यहाँ के किसानों की दशा और भूमि दोनों को अच्छी तरह से समझकर जो ढंग किसानों में काम करने का निकाला जायगा वही सबसे अधिक सफल सिद्ध होगा। केवल खेती के विज्ञान को समझ लेना ही या दूसरे देशों में जो नियम ग्रहण किये जाते हैं उनको बतला देने से कोई लाभ नहीं हो सकता है। कृषि की उन्नति के प्रचार का भी ढंग ऐसा बनाना पड़ता है जो यहाँ के किसानों की दशा, गाँवों की रहन-सहन, यहाँ की जलवायु और भूमि का ध्यान रखते हुए किसानों पर सबसे अधिक प्रभाव डाले। कृषि-उन्नति के किसी प्रस्ताव के सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि वह किसान जिसकी खेती की उन्नति की चेष्टा की जा रही है, उसको पूरा भरोसा हो कि उन नये नियमों से जो कि बतलाये जाते हैं, पैदावार बढ़ जावेगी और उसको खेती से अधिक लाभ होगा। जब तक अधिकतर किसान इस बात को नहीं मानते उस समय तक कोई लाभदायक नया खेती का ढंग नहीं फैलाया जा सकता। इसलिये उन्नत खेती के प्रचार करनेवाले के लिये कृषि-विज्ञान, जलवायु और भूमि की हालत का जानना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है किसान की शिक्षा तथा उसकी आर्थिक दशा का समझना।

कुछ लोगों का विचार है कि भारतीय किसान केवल अपढ़ और बेसमझ ही नहीं हैं, किन्तु वे खेती के काम को भी अच्छी तरह से नहीं जानते। यही कारण है कि वे इतने निर्धन हैं। ऐसे लोग जब गाँवों में किसानों को खेती के बारे में सिखलाने जाते हैं तो उनको किसानी (कृषि-विद्या) की छोटी से छोटी हर एक बात बताने का प्रयत्न करते हैं। उनमें से बहुतसी चीजें ऐसी हैं जो उस गाँव की भूमि में सफल नहीं होतीं या किसान आसानी से उस ढंग पर नहीं चल सकता। कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि भारतीय किसान केवल नासमझ ही नहीं है, किन्तु बड़ा हठी है। अपने पुराने नियमों को छोड़कर नये किस्म के बीज और ढंग उपयोग में लाने को जल्द तैयार नहीं होता और इसलिये खेती में उतनी जल्दी उन्नति नहीं होती जितना प्रचार करनेवाले चाहते हैं।

यदि विचार किया जावे तो यह आसानी से समझ में आ जावेगा कि किसान खेती के काम में इतने नासमझ नहीं हैं जितना कि कुछ पढ़े-लिखे लोग उनको समझते हैं। औसतन इस प्रान्त में हरएक किसान के पास ढाई एकड़ से अधिक भूमि नहीं है। बहुत सी जगहों में तो एक एकड़ पर दो या तीन मनुष्यों

का पालन-पोषण होता है। फिर यही नहीं है कि इतनी थोड़ी सी भूमि से किसान अपने व अपने बालबच्चों के खाने पीने का सामान और कपड़ों का प्रबंध करता है किन्तु उसी थोड़ी भूमि से वह लगान भी अदा करता है जो कहीं कहीं २०) बीस रुपया या २५) पच्चीस रुपया प्रति एकड़ तक पहुँच जाता है। इसी थोड़ी सी भूमि से वह अपने जानवरों के लिये चारा व दाना भी पैदा करता है और उसी के लाभ से मकान भी तैयार करता है। कभी-कभी विवाह, त्योहार, तीर्थ और अन्य बहुत से धार्मिक व्यय के लिये भी उसी भूमि से पैदा करता है। यदि वह किसी अभियोग में फँस जाता है तो उसका व्यय भी उसको अपने खेत से ही निकालना पड़ता है, क्योंकि गाँव में और कोई ढंग धनोपार्जन का नहीं है। जो किसान ज़मीन के इतने छोटे टुकड़े से इतनी सब चीजें पैदा कर लेता है और अपने और अपने बालबच्चों का पालन-पोषण कर लेता है उसको कृषि के काम में कच्चा समझना भारी भूल है। यद्यपि उसने कृषि-विज्ञान को विज्ञान के स्कूल या कालेज में नहीं पढ़ा, किन्तु पीढ़ी दर पीढ़ी से, बीसियों शताब्दियों से उसके कुटुम्ब में उन्हीं खेतों में खेती का काम होता आ रहा है और वह अपने और अपने पूर्वजों के अभ्यास से खेती के काम को बहुत अच्छी तरह से समझ गया है। पर जहाँ उसमें परिश्रम और मितव्ययिता के सद्गुण हैं वहाँ कुछ त्रुटियाँ भी हैं। और वे त्रुटियाँ ऐसी हैं जो शिक्षा के बिना और दूसरे देशों और दूसरी जगहों में किये गये प्रयोगों को समझे बिना पूरी नहीं हो सकतीं। सरकारी फ़र्मों के ढंगों अथवा अन्य शिक्षित किसानों के खेतों को देखेभाले बिना पूरा किसान कोई नहीं हो सकता।

कृषि की उन्नति के लिये जो मनुष्य काम करते हैं उनके लिये केवल यही आवश्यक नहीं है कि वे पूर्णतया कृषिशास्त्र और किसान की दशा को जानते हों, किन्तु उनके हृदय में इस बात की सच्ची भावना हो कि हम जो नया ढंग किसान को बतलावें या नई सम्मति दें उसको हमारे बतलाये हुए नियमों पर चलने पर किसी प्रकार की हानि न हो। खेती की उन्नति चाहनेवाले के लिये यह परमावश्यक है कि वह अपने बातचीत के ढंग से प्रत्येक किसान पर यह प्रकट कर दे कि वह जो कुछ करता है किसान को लाभ पहुँचाने की सच्ची भावना से करता है। और यदि किसान उसके बतलाये हुए नियमों को अपने खेतों में काम में ले आवेगा तो उसको लाभ अवश्य होगा। कृषकों के हृदय में यह भाव कभी पैदा न होने देना चाहिए कि नये नियम जो बतलाये जा रहे हैं उनके प्रयोग में आ जाने से प्रचार करनेवाले को स्वयं भी इस काम से लाभ पहुँचने की आशा है या इस काम में परिश्रम वह इस इच्छा से करता है कि वह किसान के लाभ की अपेक्षा स्वयं अपना लाभ चाहता है। प्रारम्भ में यह बात बतलाने की इसलिये आवश्यकता समझी गई कि यहाँ के किसानों को प्रत्येक क्षण इसका

सन्देह रहता है कि प्रचार करनेवाले अपने लाभ के लिये ऐसी नई बातें बतलाते हैं।

दो या तीन एकड़ भूमि पर सारे कुटुम्ब का खर्च चलानेवाला किसान कभी कीमती यंत्र या ऐसी और कोई वस्तु का, जिसमें अधिक रुपया खर्च होता हो, प्रयोग नहीं कर सकता।

उसकी शिक्षा की दशा ऐसी है कि छपी हुई पुस्तकें और छपे हुए पर्चे से वह पूरा लाभ नहीं उठा सकता। इसका अनपढ़ होना ही अकेला इस बात का कारण नहीं है, किंतु किताबों और पर्चों से नई बात सीखने की आदत भी यहाँ के किसानों की नहीं है। वह किताब व पर्चे पढ़कर अपनी उन्नति करने का आदी नहीं है। व्याख्यानों को सुनने के लिए वह प्रायः इकट्ठा होता है। किंतु किसानों में खेती की उन्नति का प्रचार करनेवाले इतने कम हैं कि किसानों को वर्ष भर में एक या दो बार इस संबंध की बातें सुनने का अवसर मिलता है और जो बातें वह व्याख्यानों में सुनता है वह इतनी जल्दी भूल जाता है कि उन पर वह किसी प्रकार चल नहीं पाता। इसके अलावा इस बात का भी किसान को ध्यान रहता है कि जिन नियमों से कई पीढ़ियों से उसका और उसके बालबच्चों का पालन-पोषण होता आया है उन नियमों को एकदम छोड़कर नए नियमों से यदि उसको हानि हुई और उसके बच्चे भूखे मरने लगे तो उसको उस समय कोई सहायता देनेवाला खड़ा नहीं होगा। उसका यह डर ठीक भी है। इतनी थोड़ी पूँजी का मनुष्य एक बार व्याख्यान सुनकर अच्छी प्रकार से समझे हुए अपने पुराने खेती के नियमों को कैसे छोड़ सकता है।

किसान के गुणों के वर्णन के साथ-साथ मैं उसकी कुछ त्रुटियों को भी बतलाना चाहता हूँ जो उसकी वर्तमान अशिक्षित दशा में स्वभाविक ही हैं। यदि एक सौ किसानों से इस बात का हिसाब पूछा जावे कि उनके खेत में पिछले पाँच वर्षों में प्रत्येक वर्ष अलग-अलग प्रत्येक फ़सल की कितनी पैदावार हुई और एक वर्ष की पैदावार प्रति बीघा और दूसरे वर्ष की पैदावार में क्या अंतर रहा तो शायद एक प्रतिशत से अधिक किसान इसका ठीक उत्तर नहीं दे सकेंगे। अर्थात् किसान के यहाँ पैदावार का वार्षिक और प्रति बीघा का हिसाब किसी रूप में नहीं रहता। यदि ऐसी दशा में उसको कोई नया बीज दिया जाता है और वह उसे अपने खेतों में बोता है और १५-२० प्रतिशत पैदावार बढ़ भी जाती है तब भी अधिकांश किसानों के दिल में यह विचार पैदा नहीं होता कि जो नया बीज उन्होंने अपने खेत में बोया है उसके कारण ही उनकी पैदावार में यह उन्नति हुई है। हाँ, कोयमबिटूर गन्ने की तरह यदि किसी नए बीज की पैदावार ५० या १०० प्रतिशत उसकी पुरानी फ़सल की तुलना से अधिक है और बहुत स्पष्ट है कि नई वस्तु की पैदावार डेउढ़ा या दूना है तब तो गाँव का बिना पढ़ा किसान भी मान लेता है और उस नए बीज या खेती के ढंग के प्रयोग के लिए तैयार हो

जाता है। गेहूँ, अलसी, चना, मटर, जौ की उन्नत क़िस्मों में और इनकी देशी क़िस्मों की पैदावार में उतना अधिक अन्तर नहीं है जितना कि कोयमबिटूर और देशी गन्ने में है। इनकी पैदावार १५ से २५ प्रतिशत तक देशी बीज की अपेक्षा अधिक होती है और जितना ही अंतर कम होता जाता है उतना ही किसान को नए बीज का गुण समझाना कठिन होता जाता है। दस या पंद्रह प्रतिशत पैदावार का बढ़ना तो पहिले वर्ष उसकी समझ में ही नहीं आता। और जब दूसरे किसान उसको यह समझाते हैं कि पारसाल हमारे खेत में इससे कहीं अधिक पैदावार हुई थी या वह स्वयं ही अपने गोंयड़ के खेत के देशी फ़सल की पैदावार की तुलना कमज़ोर खेत के उन्नत बीजवाले फ़सल से करता है, तो उसके हृदय में शंका उत्पन्न हो जाती है। कोई किसान यदि इस बात का हठ करता है कि देखो, उन्नतिशील बीज अधिक पैदा हुआ तो दूसरे उसके साथी समझाते हैं कि सम्भवतः इस खेत की पैदावार इसलिए अधिक हुई कि उसने खेत में खाद अधिक डाली थी या जोताई अच्छी की थी या ठीक समय से वर्षा हुई या उसके भाग्य से ही अच्छी पैदावार हो गई किन्तु इस बात को वे जल्द नहीं मानते कि अधिक पैदावार नए बीज के कारण हुई है। ऐसी दशा में किसानों के हृदय में यह अच्छी तरह से चित्रित करने के लिए कि अच्छे बीज या अच्छे खेती के ढंग से उनको अवश्य लाभ होगा, साधारण अभ्यासों का एक विशेष नियम ग्रहण करना पड़ता है, जिससे किसानों को किसी नए बीज व नए उन्नत खेती के ढंग में किसी प्रकार का संदेह न रहे।

गाँव में बहुत से लोग पुराने खेती के नियमों को प्रयोग में लाते लाते उसके इतने आदी हो गए हैं कि वह यह मान बैठे हैं कि उसके सिवा अच्छा और लाभदायक कोई दूसरा नियम हो ही नहीं सकता और न उनकी आर्थिक अवस्था ही सुधर सकती है। दूसरे शब्दों में वे उन्नति का विचार ही छोड़ बैठे हैं। वे यह समझते हैं कि हम लोग जिस दशा में पैदा हुए हैं और बड़े हुए हैं उस दशा में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। इसका परिणाम यह होता है कि वे स्वयं उन्नति करने की इच्छा भी नहीं करते। यदि किसी सरकारी फ़ार्म पर या किसी दूसरे किसान के खेत में अच्छी फ़सल देखते हैं तो उनमें अधिकांश यह समझते हैं कि यह सरकार के अधिक ख़र्च करने का परिणाम है या दूसरे किसान के भाग्य से उसके खेत में अच्छी फ़सल पैदा हो गई। उनको जब तक कि उनके ही खेत में उन्हीं की जुताई, खाद, पानी और बढ़िया बीज की बुआई से अधिक पैदावार न दिखला दिया जावे, तब तक अधिकांश किसान इस बात को मानने को तैयार नहीं हो सकते कि उनके भी खेत की पैदावार बढ़ सकती है। ऐसे अवसर पर यह आवश्यक है कि एक ही खेत के दो भाग किए जावें और एक भाग में अच्छे नियमों से खेती की जावे और दूसरे भाग में किसान

अपने पुराने नियम से खेती करें और फिर दोनों की उपज अलग अलग तोलकर देखें और दूसरे पड़ोसी किसानों को भी बतलावें। तब उनको इस बात पर विश्वास होगा कि उनके पुराने बीज और पुराने खेती के ढंग से नए उन्नतिशील बीज और कृषि के नए और अच्छे नियम कितने लाभकारी हैं।

यह बहुत आवश्यक है कि किसान को अच्छी तरह से यह बात समझा दी जावे कि नए ढंग की खेती से उनको न केवल लाभ ही है, किंतु पुराने ढंग की तुलना में कितना अधिक लाभ है। कभी-कभी लोग कहते हैं कि नए बीज और पुराने बीज की पैदावार में अधिक अन्तर नहीं है। जिस खेत में पुराना बीज चार मन प्रतिबीघा पैदा होता है उसमें नया उन्नत बीज केवल पाँच मन प्रति-बीघा पैदा होता है अर्थात् कुल एक मन का अन्तर पड़ा। यदि पैदावार २० या २५ प्रतिशत बढ़ जाती है और ख़र्चे में कोई अन्तर नहीं पड़ता तो किसान के लाभ में जोकि उसके और उसके बालबच्चों के पालन-पोषण के लिए खेत से मिलता है वह किसी किसी दशा में दूने से भी अधिक होजाता है। लगान, बीज, खाद, सिंचाई, जुताई, मजदूरी इत्यादि का ख़र्चा यदि पैदावार का ७५ या ८० प्रतिशत तक, जैसा प्रायः होता है, हो गया तो किसान की जेब में बचा हुआ केवल २० प्रतिशत पड़ता है अर्थात् ८० रुपया ख़र्च करके १०० रुपया पैदा हुआ तो किसान का लाभ २० रुपया हुआ और यदि यही ८०) ख़र्च करके १२५) की आय हो जाती है तो उसका लाभ २०) से बढ़कर ४५) का हो गया। यद्यपि पैदावार में केवल २५ ही प्रतिशत की बढ़ती हुई।

किसान न तो इस बात का सालाना या फ़सलवार हिसाब रखते हैं कि जिससे यह विदित हो कि उनके खेतों की पैदावार में सालाना वृद्धि हो रही है या घटी और न उनको इस बात का पता ही होता है कि वह उन्नति कर रहे हैं अथवा अवनति। किसान बहुधा यह भी नहीं मानते कि उन्नति बहुत कुछ अपने हाथ में है। खेती की उन्नति करनेवालों के लिए यह आवश्यक है कि किसानों को स्वावलम्बन सिखावें और उनको उन्नति करने के लिए उत्साहित करें। खेती पर आकस्मिक दुर्घटना जैसे कि वर्षा की कमी या अतिवृष्टि, समय पर वर्षा का न होना, फ़सल की व्याधियाँ, पाला, ओले और बाढ़ का और ऐसी बहुत सी दुर्घ-टनाओं का ऐसा प्रभाव होता है कि कभी कभी किसान की सारी चेष्टाएँ बेकार हो जाती हैं और फिर उसे मजबूरन अपने पैरों पर खड़े होने का विचार छोड़कर प्रारब्ध का भरोसा करना पड़ता है। इससे किसान को यह समझाने की आवश्यकता है कि यदि दो चार साल तक बराबर खेती के अच्छे नियमों से लाभ होता रहा तो स्वयं ही उसकी आर्थिक दशा इतनी अच्छी हो जावेगी कि वह दुर्घटनाओं को सहन करने को अच्छी तरह से तैयार हो जायेगा और यदि दो एक फ़सल उसकी नष्ट भी हो गई तो भी उसके पास अपने और अपने बालबच्चों के पालन-पोषण के लिए पूँजी बच रहेगी।

इस प्रांत के किसानों में अधिक इस प्रकार के हैं जो अपने हाथ से हल जोतते हैं और खेती का सब काम करते हैं किन्तु कुछ किसान ऐसे भी हैं जो ग़रीब होते हुए भी अपने हाथ से हल नहीं चलाते और खाद इत्यादि स्वयं खेत में नहीं ले जाते। इसका परिणाम यह होता है कि उन लोगों का प्रभाव थोड़ा बहुत काम करनेवाले लोगों पर भी पड़ता है और इस देश के किसान खाद इकट्ठा करने के काम में संसार के और किसानों से पिछड़ गए हैं। कहीं कहीं तो खाद की ढेर पड़ी है परन्तु खेतों में नहीं पहुँचाई जाती। चीन, जापान के लोगों में इस प्रकार के विचार खाद इत्यादि ढोने के विरुद्ध नहीं हैं और यही कारण है कि उनके खेतों की उपजाऊ शक्ति यहाँ के खेतों की अपेक्षा अधिक है।

हमारे देश में खाद इकट्ठा करने की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। जानवरों का गोबर उपले बनाकर जला दिया जाता है। गाँव में जो कचरा इत्यादि इकट्ठा होता है उसको जाड़ों में स्थान-स्थान पर ढेर लगाकर शाम को जलाकर ताप लिया जाता है। गोमूत्र भी प्रायः जहाँ गिरता है वहीं नष्ट हो जाता है और खेतों तक नहीं पहुँचाया जाता। हरी खाद देने की भी प्रथा कम है और मनुष्यों का मल-मूत्र भी खेतों की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिये अधिकतर प्रयोग नहीं किया जाता। यही कारण है कि हमारे खेतों की जापान-चीन की तुलना में उपजाऊ शक्ति कम है और जितने खेत से हमारे देश में एक मनुष्य का पूरे तौर से पालन-पोषण नहीं होता उतने ही खेत से जापान में ३ मनुष्यों के लिए खाद्य पदार्थ उत्पन्न किया जाता है। खाद का उचित प्रबन्ध न करने के कारण ही उचित जोताई व सिंचाई करने पर भी हमारे देश में गेहूँ की औसत पैदावार साढ़े सात मन प्रति एकड़ है जबकि जरमनी, बेलजियम, इंगलैंड तथा हालैंड आदि देशों की औसत पैदावार लगभग ३५ मन प्रति एकड़ है। इसी तरह मक्के की औसत पैदावार भी भारतवर्ष में लगभग सवा ६ मन प्रति एकड़ है जबकि आस्ट्रेलिया, इजिप्ट, इटली तथा अमेरिका की औसत पैदावार लगभग २४ मन प्रति एकड़ है। यही दशा धान की पैदावार की भी है। हमारे देश की औसत पैदावार लगभग १० मन प्रति एकड़ है जब कि इटली और जापान, आस्ट्रेलिया आदि देशों की औसत पैदावार लगभग ४५ मन प्रति एकड़ है। यह बात नहीं है कि हमारे देश में कोई किसान इतनी पैदावार नहीं कर पाता। जो किसान उत्तम बीज, पानी, खाद और समय-समय पर उचित रूप से खेती की सारी क्रियाएँ करते हैं उनके फ़सलों की पैदावार जापान, जरमनी, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया आदि देशों की फ़सलों से बढ़ कर होती है। परन्तु इस देश के अधिकांश किसान खाद की तरफ पूरा ध्यान न देने से और कभी कभी पानी की कमी से पैदावार बहुत कम कर पाते हैं। खाद की कमी इस देश में बड़े बिकट रूप में हर किसान के सामने हर समय उपस्थित है। यदि हम भी खाद इकट्ठा करने और

खेतों की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने पर उतना ही ध्यान दें जितना कि चीन और जापान में दिया जाता है तो कोई कारण नहीं कि हमारे खेतों की भी पैदावार उतनी ही न हो जाय। जब तक कि खेती के प्रत्येक काम को प्रतिष्ठा की दृष्टि से न देखा जायगा तब तक खेती की पैदावार इतनी अच्छी नहीं हो सकती जितनी कि होनी चाहिए। उत्तर-प्रदेश में किसानों की जातियाँ, जैसे कुर्मी, जाट, मुसलमान व अहीर जो खेती के किसी काम से घृणा नहीं करते उनके खेतों की दशा अन्य जाति के हिन्दुओं के खेतों से प्रायः अच्छी पाई जाती है। एक पुरानी कहावत है कि:—

पूरी खेती जो हर गहा, आधी खेती जो सँग रहा।
जो पूछा हरवाहा कहाँ, पोत बिसार गँवाइस तहाँ ॥

यह कहावत पूर्णतया सत्य है और जब तक किसान चाहे वह ब्राह्मण, ठाकुर, कुरमी, जाट या जिस जाति का हो खेती के प्रत्येक काम को स्वयं अपने हाथ से नहीं करता, तब तक उसे खेती की पूरी पैदावार नहीं प्राप्त हो सकती।

अध्याय २

खाद

बुनियादी बातें——

खाद के विषय को ठीक से समझने के लिये यह आवश्यक है कि पहले हम यह समझें कि पौधों की खूराक क्या है और वे उसे किस प्रकार भूमि से लेते हैं।

इसे तो सभी जानते हैं कि पौधे मनुष्य तथा अन्य जानवरों की तरह अपना भोजन स्थूल रूप में नहीं करते। यदि किसी जानवर का पेट भोजनोपरांत फाड़ डाला जाये तो उसमें अन्न साग-भाजी तथा मांस के टुकड़े जो कुछ भी उसने खाया होगा, मिलेंगे। परन्तु यदि किसी पौधे को इस प्रकार से फाड़ा जाय तो उसमें गोबर की खाद, खरपतवार के टुकड़े या खली इत्यादि कभी नहीं मिल सकती। इससे यह स्पष्ट है कि साधारणतया जो खादें हम पौधों को देते हैं उसे वे ज्यों का त्यों प्रयोग नहीं करते। उसका कोई परिवर्तित अंश ही पौधों के काम आता है। पौधों के पोषण के लिए आक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन, नाइ-ट्रोजन, फासफोरस पोटाश, कैलशियम, बोरान, कोबाल्ट, कापर, लोहा, मैगनी-शियम, मैंगनीज, सलफर, जिंक तथा कुछ अन्य तत्त्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से आक्सीजन और कार्बन पौधे हवा से लेते हैं और शेष भूमि तथा पानी से। पौधे इन तत्त्वों के केवल घुलनशील लवणों का ही प्रयोग कर सकते है क्योंकि पौधे वास्तव में अपना भोजन केवल घोल के रूप में ही करते हैं। यह तत्त्व भूमि में कितनी भी अधिक मात्रा में क्यों न हों परन्तु यदि वे ऐसे रूप में है जो पानी में घुल न सकें तो वे पौधों के लिए बेकार हैं। इसलिए भूमि की ऐसी जांच जिसके द्वारा केवल यह जाना जा सके कि अमुक तत्त्व की कितनी प्रतिशत किसी भूमि में है, किसान के दृष्टिकोण से व्यर्थ सा है क्योंकि किसी भी तत्त्व का केवल भूमि में प्राप्त होना लाभप्रद नहीं है। वास्तव में उसका घुलनशील रूप में प्राप्त होना पौधों के लिए हितकर है।

ऊपर पौधों के पोषक तत्त्वों की गणना कराते समय कई तत्त्वों का नाम लिया गया है। परन्तु प्रकृति की यह असीम कृपा है कि नाइट्रोजन, फासफोरस तथा पोटाश को छोड़कर लगभग सभी पोषक तत्त्व साधारणतया हमारी भूमि में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हैं। केवल इन्हीं तीनों का प्रबंध हमें करना है। इन तीनों में से भी केवल नाट्रोजन की ही उचित रूप में पूर्ति करना कठिन है। प्रयोगों से

यह सिद्ध हुआ है कि नाइट्रोजन का प्रयोग पौधे केवल अमोनिया और नाइट्रेट के ही रूप में कर सकते हैं। यों तो हम अब अमोनियम सल्फेट् और सोडियम नाइट्रेट का खाद के रूप में अधिकाधिक प्रयोग करने लगे हैं और यदि इनके बार-बार अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किये जाने से अन्य कठिनाइयाँ उपस्थित न हो जातीं तब तो अधिक से अधिक रासायनिक खादों को तैयार करके खेतों में डालने से हमारे भोजन का प्रश्न बड़ी सुगमता से हल हो जाता। परन्तु ऐसा नहीं है। केवल रासायनिक खादों के प्रयोग से अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

रासायनिक खादों के आविष्कार के हजारों वर्ष पहले से खेती होती आई है, उसके अनुभव से हम यह जानते हैं कि जानवरों के गोबर तथा खरपतवार को सड़ाकर खेतों में डालने से खेतों की उर्वराशक्ति बढ़ती है। प्रकृति भी अपनी खेती अर्थात् जंगलों को खाद पेड़ों की सूखी पत्ती को ही सड़ाकर पहुँचाती है। जानवरों की विष्ठा और खरपतवार कैसे पौधों के भोजन के रूप में परिवर्तित होती हैं यह एक बहुत ही रोचक विषय है और इसका अध्ययन किसानों के लिये लाभप्रद होगा।

सभी खेती करने योग्य भूमि में कई प्रकार के शाकाणु पाये जाते हैं। इन शाकाणुओं में यह शक्ति है कि यह सभी वानस्पतिक तथा पाशविक उत्पत्ति के निर्जीव पदार्थों को पौधों के भोजन नाइट्रेट के रूप में बदल देते हैं। यदि हम इन्हीं वानस्पतिक पदार्थों को रासायनिक प्रयोगशालाओं में केवल रासायनिक उपायों द्वारा नाइट्रेट में परिवर्तित करना चाहें तो बड़ी ही कठिनाई होगी। सच तो यह है कि यदि यह हमारे सहायक शाकाणु भूमि में न होते तो खेती न हो सकती और शायद कोई भी जीवधारी इस पृथ्वी पर न होता।

यह हमारे मित्र शाकाणु तथा अन्य निम्न श्रेणी के जीव कई प्रकार के होते हैं, परन्तु इनके काम बँटे हुये हैं। अतएव इन्हें इनके नामों द्वारा पहिचानने की अपेक्षा इनके कामों के अनुसार पहिचानने में आसानी है। एक प्रकार के शाकाणु केवल सड़ाने तथा गूढ़ पदार्थों को सरल पदार्थों में परिवर्तित करने का काम करते हैं। ज्यों ही कोई वानस्पतिक अथवा पाशविक पदार्थ इनके सम्पर्क में आता है यह उस पर टूट पड़ते हैं और सड़ाकर ऐसे सरल पदार्थों में परिवर्तित कर देते हैं जिस पर कि दूसरे प्रकार के शाकाणु अपना काम शुरू कर देते हैं और इन सरल पदार्थों से अमोनिया गैस तैयार कर देते हैं। अमोनिया गैस के तैयार होने पर एक तीसरे प्रकार के शाकाणु अमोनियाँ को पौधों की खूराक नाइट्रेट में बदल देते हैं। खरपतवार या जानवरों की विष्ठा तथा अन्य वानस्पतिक पदार्थों के खाद बनाने में यह तीनों प्रकार के शाकाणु हमारे ऐसे सहायक हैं कि जिनके बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता। यदि हम गोबर तथा अन्य वानस्पतिक

पदार्थ को उबाल डालें जिससे कि उसके अन्दर के सभी शाकाणु मर जायें और फिर उसे ऐसे बर्तन में रखकर खाद बनाना चाहें जिसमें बाहर के शाकाणु आ न सकें तो हम देखेंगे कि खाद बनाने में हम असफल होंगे ।

यह शाकाणु जब किसानों के लिए इतने लाभप्रद हैं तो हमें यह भी जानना चाहिए कि इन शाकाणुओं को कैसा वातावरण चाहिये । कितनी गर्मी, नमी हवा और किस मौसम और भूमि में यह शाकाणु सबसे अच्छा काम करते हैं । इनकी खोज करने के लिए प्रयोग किए गये हैं और यह सिद्ध हुआ है कि औसत दर्जे की गर्मी, नमी, अधिक से अधिक हवा, ग्रीष्म ऋतु और बलुई भूमि की अपेक्षा दूमट और मटियार भूमि शाकाणुओं के लिये उचित वातावरण है । वातावरण का प्रभाव शाकाणुओं द्वारा एकत्रित नाइट्रेट की मात्रा पर किस प्रकार पड़ता है इसके कई नक्शे दिए जा रहे हैं ।

मिट्टी की बनावट का नाइट्रेट की मात्रा पर प्रभाव
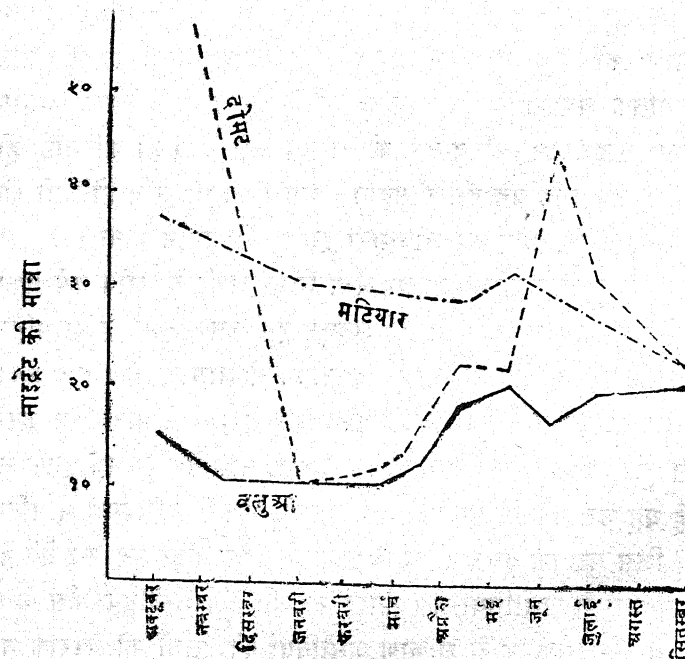
तापमान का नाइट्रेट की मात्रा पर प्रभाव
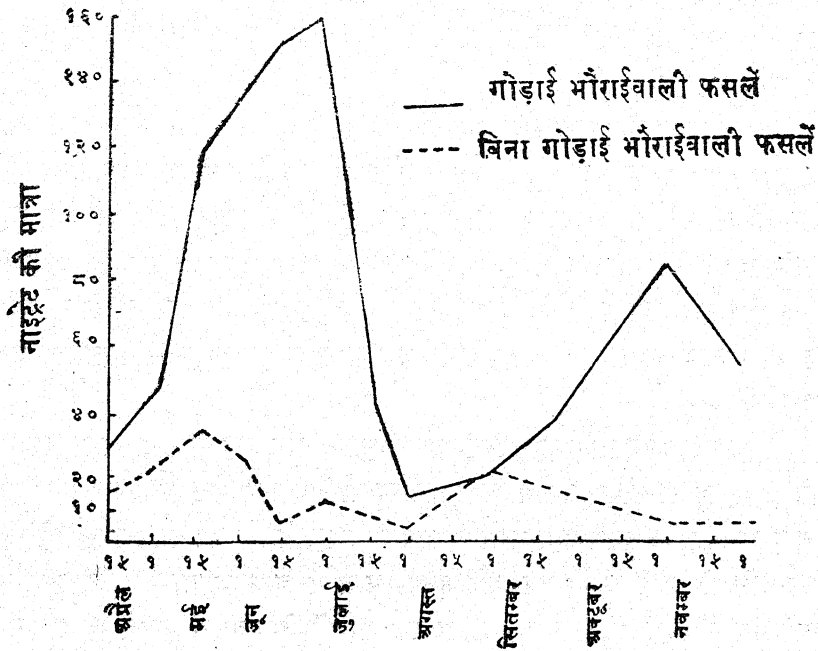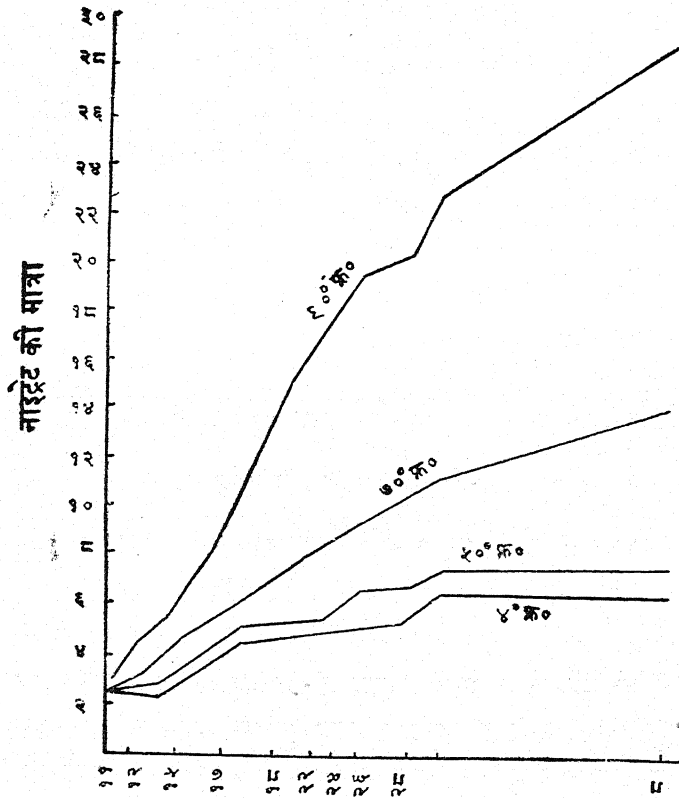
गोड़ाई भौराई का नाइट्रेट की मात्रा पर प्रभाव
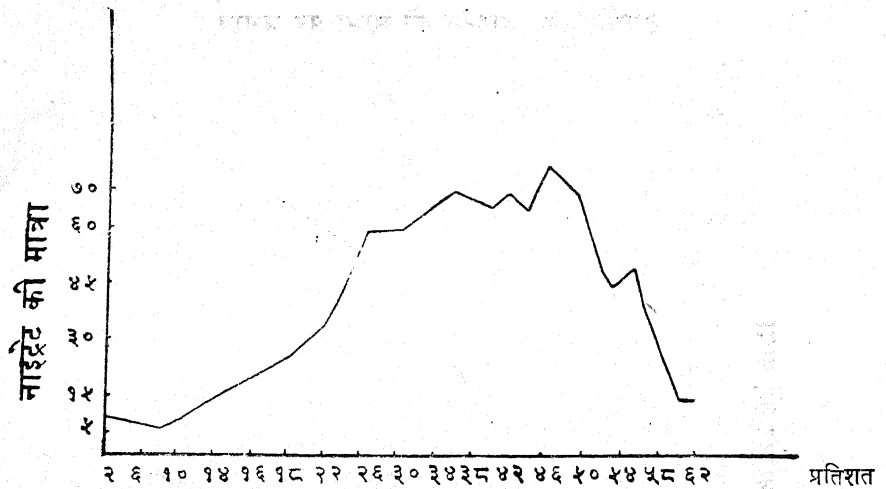
भूमि में पानी की मात्रा

भूमि में नमी का नाइट्रेट की मात्रा पर प्रभाव

इन नक्शों को देखने से मालूम होगा कि भूमि के अन्दर हवा पहुँचाने के लिये जोताई और फसलों की गोड़ाई भौराई कितनी लाभप्रद है। खेतों की उपज-शक्ति बढ़ाने की दृष्टि से गर्मियों में खेत जोतने से तभी लाभ होगा जब खेत में कुछ नमी हो, क्योंकि नमी की कमी में शाकाणु अपना काम नहीं कर सकते। यदि खेतों में घास अधिक न हो और गर्मी की जोताई केवल उन्हें मारने के लिए न की जा रही हो तो अच्छा तो यह होगा कि दिसम्बर जनवरी में जब कभी पानी बरसे तो खाली खेतों को जोतकर पाटा दे दिया जाय जिससे कि खेत में कुछ न कुछ नमी बनी रहे।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि तीनों प्रकार के शाकाणु जिनका अब तक वर्णन किया गया है, वे केवल वानस्पतिक पदार्थों में प्राप्त नाइट्रोजन को ही पौधों की खूराक नाइट्रेट के रूप में बदल देते हैं, वे बाहर से नाइट्रोजन नहीं एकत्रित करते। इसलिए यदि इन शाकाणुओं से लाभ उठाना है तो यह आवश्यक है कि किसान अपने खेतों में वानस्पतिक पदार्थ काफी मात्रा में पहुँचाया करें। खेत में वानस्पतिक पदार्थ न रहने पर यह शाकाणु हमारी कोई सहायता नहीं कर सकते।

ऊपर वर्णन किए हुये शाकाणुओं के अतिरिक्त दो प्रकार के और शाकाणु होते हैं जो वानस्पतिक पदार्थों के केवल प्रांगारिक अंश पर आक्रमण कर उन्हें कार्बन डाइक्साइड तथा अन्य गैसों के रूप में बदल देते हैं। इनमें से एक तो हवा की उपस्थिति और दूसरा हवा की अनुपस्थिति में कार्य करता है। जो हवा की उपस्थिति में क्रिया होती है वह प्रांगारिक पदार्थों के हवा में जलने के समान है और उसके फलस्वरूप प्रांगारिक पदार्थ कार्बन-डाइक्साइड के रूप में परिवर्तित

हो जाता है । दूसरी प्रकार की क्रिया जो हवा की अनुपस्थिति में होती है उसके फलस्वरूप कार्बोनिक एसिड मार्श गैस तथा हाइड्रोजन गैस निकलती है । दूसरी क्रिया द्वारा चूँकि कार्बन की अपेक्षा आक्सीजन और हाइड्रोजन प्रांगारिक पदार्थ से अधिक मात्रा में निकल जाता है इसलिये बचा हुआ पदार्थ काला होता है । प्रांगारिक पदार्थों के शाकाणुओं द्वारा सड़ाये तथा परिवर्तित किये जाने के बाद जो अंश बचता है उसे ह्यूमस कहते हैं । इसका रंग भी उक्त कारण से काला होता है । ह्यूमस मटियार भूमि को भुरभुरी बनाती है और बलुई भूमि को अधिक ठोस बनाकर उसमें पानी रोकने की क्षमता बढ़ाती है । ह्यूमस खेत के ऊपर एक कम्बल का सा भी काम करती है । भूमि में इसकी मात्रा पर्याप्त होने पर पौधों की जड़ों पर गर्मी और शीत का प्रभाव कम पड़ता है और पौधा सामान्य रूप से बढ़ता रहता है । इसके अतिरिक्त ह्यूमस जब भूमि में सड़ती है तो एक प्रकार की तेजाब निकलती है जिसकी उपस्थिति में भूमि में पाये जानेवाले अघुलनशील लवण भी घुलनशील हो जाते हैं । ह्यूमस का सभी प्रकार की भूमि में होना अति आवश्यक है ।

भूमि में जहाँ किसानों के इतने मित्र शाकाणु हैं वहाँ एक प्रकार का शत्रु शाकाणु भी है जो अवसर पाकर काम बिगाड़ने पर लगा रहता है । यह शाकाणु बने बनाये नाइट्रेट को तोड़कर आक्सीजन स्वयं अपने काम में ले आता है और नाइट्रोजन को हवा में उड़ा देता है । यह निश्चय ही अनावश्यक कार्य है क्योंकि हवा में ऐसे ही ४-५ भाग नाइट्रोजन का है । परन्तु यह शाकाणु अपने दुष्कर्म में तभी सफल होता है जब कि वानस्पतिक पदार्थ भूमि में अधिक हो और हवा की कमी हो । सच तो यह है कि यह शाकाणु नाइट्रेट से आक्सीजन लेने पर तभी बाध्य होता है जब कि इसे हवा से आक्सीजन नहीं मिलता । इसलिए किसानों को ध्यान रखना चाहिए कि वानस्पतिक खादों को भूमि की सतह के २-३ इंच के अंदर ही रखें और जोताई गोड़ाई व भौराई से खेत के अंदर हवा पहुँचाने का प्रबन्ध बनाये रखें । वानस्पतिक खाद देकर बड़े हल से ६ इंच या ८ इंच तक की गहरी जोताई करके खाद को नीचे दबा देना, जहाँ कि हवा न पहुँच सके, एक बड़ी भूल है । खेत में पानी भरे रहने पर भी इसी प्रकार नाइट्रोजन की कमी हो जाती है ।

यह नाइट्रेट को तोड़कर स्वतन्त्र नाइट्रोजन उत्पन्न करनेवाला शाकाणु भले ही अपने दुष्कर्म करने का अवसर कम पाता हो, परन्तु यदि यह क्रिया लाखों वर्षों से होती आई है और यदि कोई ऐसी व्यवस्था न होती जिसके द्वारा स्वतंत्र नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में परिवर्तित होता तो निश्चय ही अब तक सब का सब नाइट्रोजन स्वतंत्र रूप में ही होता । परन्तु ऐसा नहीं है । सौभाग्य से ऐसे शाकाणु भी हैं जो स्वतंत्र नाइट्रोजन को नाइट्रेट में परिवर्तित कर देते हैं ।

वायु से नाइट्रोजन लेकर भूमि में एकत्रित करनेवाले शाकाणुओं में से एक इस प्रकार का है जो एक जाति के पौधों के साथ साझीदारी में रहता है। इन पौधों के बिना यह शाकाणु निष्क्रिय रहता है और शाकाणु बिना पौधे नहीं पनप पाते। प्रकृति में पौधों और शाकाणुओं के बीच यह साझीदारी जितनी ही विचित्र है उतनी ही जीवधारी जगत् के लिये अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

जिस जाति के पौधों के साथ शाकाणु साझीदारी में रहते हैं उन्हें लिग्युमिनस किस्म की फसलें कहते हैं।

लिग्युमिनस किस्म की फसलें वह हैं जिनके फूल तितलीनुमा होते हैं और जिनके दानों को फोड़ने से दो दालें निकलती हैं। इसी लिये इन्हें दलहन की फसलें भी कहते हैं। अपने देश में पैदा होनेवाली मुख्य-मुख्य दलहन की फसलें यह हैं---चना, मटर, मूँग, लोबिया, मसूर, अरहर, ग्वार, ढेंचा, भटवाँस, मोथी, बरसीम इत्यादि।

इन फसलों की विशेषता यह है कि इनकी जड़ों में एक प्रकार का शाकाणु अपना निवास बना लेता है। दलहन के पौधे और यह शाकाणु एक प्रकार की साझीदारी में रहते हैं, दोनों का जीवन एक दूसरे पर निर्भर है। शाकाणुओं के बिना न तो (लिग्युमिनस) दलहन के पौधे सफलतापूर्वक बढ़ सकते हैं और न पौधों के बिना शाकाणुओं को आसानी से खूराक ही मिल सकती है। इन शाकाणुओं में एक बड़ी विलक्षण शक्ति होती है। यह हवा से नाइट्रोजन लेकर पौधों की जड़ों में एकत्रित कर देते हैं, जिनका प्रयोग पौधे अपने बढ़ने में करते हैं। शाकाणु पौधों की जड़ों में ग्रन्थियाँ बनाते हैं और इन्हीं ग्रन्थियों में नाइट्रोजन इकट्ठा करते रहते हैं। जब पौधा सूख जाता है या काट लिया जाता है तब ग्रन्थियाँ सड़कर खेत में मिल जाती हैं और बाद में बोई जानेवाली फसलों को लाभ पहुँचाती हैं। यही कारण है कि चना, मटर, मूँग, उरद, अरहर इत्यादि बोने के बाद खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। यह शाकाणु इतने छोटे होते हैं कि देखे नहीं जा सकते, परन्तु किसी भी दलहन के पौधे की जड़ खोदकर उसमें ग्रन्थियों को देखा जा सकता है। इन ग्रन्थियों का आकार-प्रकार भिन्न-भिन्न पौधों में भिन्न-भिन्न होता है। कुछ तो गोल और कभी-कभी मटर के दाने के बराबर होती हैं और कुछ बहुत ही छोटी और टेढ़ी-मेढ़ी शक्ल की होती हैं।

सभी दलहन के पौधों में रहनेवाले शाकाणु बराबर मात्रा में नाइट्रोजन इकट्ठा नहीं करते। कुछ ज्यादा करते हैं और कुछ कम। अच्छी दलहन की फसल ५० से १०० पौंड तक प्रति एकड़ नाइट्रोजन खेत को पहुँचाती है।

वैसे तो भारतीय कृषि की मुख्य-मुख्य दलहन फसलों की जड़ों में रहनेवाले सभी शाकाणु थोड़ी-बहुत मात्रा में हमारी भूमि में पाये जाते हैं और ज्यों ही कोई दलहन की फसल बोई जाती है उसके शाकाणु विशेष आकर उसकी जड़ में

अपना निवास बना लेते हैं और बड़ी शीघ्रता से बढ़ जाते हैं। परन्तु यदि कोई दलहन का पौधा विदेश से लाया गया हो जिसके शाकाणु हमारी भूमि में नहीं पाये जाते तो यह आवश्यक हो जाता है कि कृत्रिम रूप से उन शाकाणुओं को भूमि में पहुँचाया जाये। यही कारण है कि खेत में पहले साल बरसीम जो मिस्र देश का पौधा है बोने के पहले बरसीम शाकाणुओं के कल्चर (शाकाणुयुक्त मिट्टी) की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार यदि उन खेतों में जिनमें चने की खेती नहीं होती आई है उनमें चना बोना है तो भूमि में चने का कल्चर (शाकाणुयुक्त मिट्टी) मिलाना लाभप्रद होगा। यह भिन्न-भिन्न प्रकार के कल्चर कृषि-विभाग के अधिकारियों को लिखने से प्राप्त हो सकते हैं। यदि कल्चर मिलने में कठिनाई हो तो उन खेतों की मिट्टी लाकर नये खेतों में मिलाना चाहिए, जिनमें उस दलहन की, जिसे बोना है, सफलतापूर्वक खेती हो चुकी है।

कुछ दलहन के पौधे जैसे अरहर नाइट्रोजन इकट्ठा करने के अतिरिक्त अन्य रूप से भी खेत की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं। इनकी जड़ें बहुत मजबूत और लम्बी होती हैं जो भूमि को तोड़ती हुई काफी नीचे तक घुस जाती हैं। इस तरह से वह नीचे के खनिज पदार्थों को ऊपर ले आती हैं और भूमि में हवा और पानी का पहुँचना सुगम कर देती हैं।

दलहन पौधों की जड़ों में नाइट्रोजन की सदा प्रचुरता रहती है, इसलिये इन पौधों की पत्तियों में अन्य पौधों की अपेक्षा दुगुनी और तिगुनी नाइट्रोजन होती है। इसी कारण से अन्य चारों की अपेक्षा दलहन की फसलों का चारा अधिक पौष्टिक होता है।

भारतीय कृषि में दलहन फसलों का विशेष महत्त्व है क्योंकि इनकी सहायता से कृषक बिना पैसा खर्च किए अपने खेतों को उपजाऊ बना सकता है। हमारे देश के किसान अधिक संख्या में इतने निर्धन हैं कि वे खाद खरीद कर अपने खेतों में नहीं डाल सकते। गोबर, जो कुछ उनके जानवरों का होता है, उसे वह कंडे (उपले) बनाकर फूँक देने पर मजबूर हैं। इस तरह से खेतों में किसी प्रकार की खाद नहीं पहुँचती और पैदावार घटती जाती है। परन्तु यदि किसान अपने खेतों में दलहन फसलें अधिक बोवें तो खेतों की उर्वरा शक्ति बिना पैसा खर्च किए बढ़ जायगी। यों तो केवल दलहन फसलों को बोने से ही खेतों की ताकत बढ़ जाती है, परन्तु यदि दलहन फसलों को फ़ासफ़ेट खाद दी जाय तो न केवल फसल को ही लाभ पहुँचता है, बल्कि शाकाणुओं की नाइट्रोजन इकट्ठा करने की शक्ति भी बढ़ जाती है। इस विषय पर खोज करनेवालों का मत है कि यदि १ पौंड फासफेट किसी दलहन में दिया जाये तो उसके बदले में शाकाणु ३ पौंड नाइट्रोजन भूमि में इकट्ठा कर देते हैं। खेतों में नाइट्रोजन पहुँचाने का यह सबसे सस्ता उपाय है। इसलिए इसका अधिक से अधिक प्रयोग हमारे कृषकों को करना चाहिये।

श्रीपार और श्रीबोस ने इस विषय पर कई प्रयोग किए हैं जिनसे यह प्रमाणित हुआ है कि यदि बरसीम में फासफेट खाद दी जाये तो उसकी पैदावार १०० प्रतिशत से भी अधिक बढ़ जाती है और इस फासफेट का असर खेत पर इतना अच्छा होता है कि बाद में ली जानेवाली फसलों की भी पैदावार उस खेत की अपेक्षा, जिसमें बरसीम की कोई खाद नहीं दी गई थी, अधिक होती है। दलहन फसलों में फासफेट खाद देकर खेतों में एक बहुत ही टिकाऊ किस्म की उर्वरा शक्ति पैदा की जा सकती है।

अपने किसानों की परिस्थिति को देखते हुये यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ाने का सबसे सरल उपाय यही है कि वे अधिक से अधिक दलहन फसलें बोवें और उन फसलों में फासफेट खादों का प्रयोग करें।

अपने प्रान्त के कृषि-विभाग ने दलहन फसलों के महत्त्व को समझकर नई-नई जल्दी पकनेवाली दलहन फसलें निकाली हैं। इन जल्दी पकनेवाली फसलों को थोड़े समय में दो फसलों के बीच में लिया जा सकता है। मूँग नं० १ इसी प्रकार की फसल है। यह केवल ६५ दिनों में तैयार हो जाती है। यदि वर्षा के शुरू में १५ जून को बो दिया जाये तो २० अगस्त तक यह फसल तैयार हो जायेगी और उसके बाद २० अगस्त से २० अक्तूबर तक गेहूँ का खेत बनाने के लिये काफी समय बच रहेगा। अपने प्रान्त के लगभग १ करोड़ एकड़ भूमि में किसान पलिहर रखते हैं। यदि इसे पलिहर न रखकर इस पूरे रकबे में मूँग बोकर तब गेहूँ बोया जाये तो यह अनुमान लगाया गया है कि भूमि में उतनी नाइट्रोजन इकट्ठा हो जायेगी जितनी कि सिन्द्री जैसे तीन कारखाने साल भर में इकट्ठा कर सकते हैं। सिन्द्री का कारखाना संसार के सबसे बड़े खाद के कारखानों में से है जिसके निर्माण में भारत सरकार के करोड़ों रुपये व्यय हुये हैं। फिर भी यदि उत्तर-प्रदेश के किसान चाहें तो उस कारखाने में साल भर में जितनी खाद पैदा होती है उसकी तिगुनी मूँग की सहायता से अपने खेतों में पहुँचा सकते हैं। मूँग बोने से खेत ताकतवर हो जाता है और उसके बाद का लिया हुआ गेहूँ पलिहर-वाले खेत से अधिक पैदा होता है। मूँग पर कृषि-विभाग इसलिये जोर दे रहा है कि इसे किसान बिना सिंचाई के साधन के और बिना अपनी दूसरी फसलों पर कोई बुरा असर डाले इसका प्रयोग कर सकते हैं।

मूँग नं० १ के अलावा अन्य लाभप्रद दलहन की फसलें निकाली जा रही हैं। लोबिया नं० १ मूँग नं० १ की ही तरह गेहूँ के पहिले ली जा सकती है। नं० ८७ का चना किसानों के लिये बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इसमें यह विशेषता है कि यदि एक से डेढ़ महीने तक पिछड़कर बोया जाये तो भी यह पैदा हो जाता है। देसी चना पिछड़कर बोया जाये तो नहीं पैदा होता। जड़हन के

खेत प्रायः धान कटने के बाद खाली पड़े रहते हैं। यदि उनमें ८७ नं० का चना बो दिया जाये तो ७-८ मन प्रति एकड़ चना मिल जायेगा और खेतों की ताकत भी बढ़ जायेगी।

इसी प्रकार से एक नई मटर का भी पता चला है जो केवल ६० दिनों में तैयार हो जाती है। यदि सिंचाई का साधन हो तो इसका भी प्रयोग जड़हन के खेतों को एकफ़सला से दोफसला बनाने में किया जा सकता है।

इन जल्दी-जल्दी पकनेवाली दलहन की फसलों का यही महत्त्व है कि यह एकफसला खेतों को दोफसला बना देती है और साथ ही खेतों को भी ताकतवर बनाती है। किसानों को चाहिए कि इनका अधिक से अधिक प्रयोग करें।

दलहन पौधों की जड़ों में रहनेवाले शाकाणुओं के अतिरिक्त कुछ ऐसे शाकाणु भी हैं जो थोड़ी बहुत मात्रा में स्वयं बिना किसी पौधे की सहायता के हवा से नाइट्रोजन लेकर भूमि में एकत्रित करते हैं। इनमें प्रमुख स्थान अजोटोवैक्टर का है। यह शाकाणु भूमि के ऊपर हवा के सम्पर्क में पड़े हुये प्रांगारिक पदार्थों पर अपनी क्रियायें करते हैं। इन क्रियाओं के फलस्वरूप भूमि में नाइट्रोजन इकट्ठा होती है। इन शाकाणुओं से काम लेने के लिये भूमि की सतह पर प्रांगारिक पदार्थ की प्रचुरता तथा चूने की उपस्थिति आवश्यक है। यदि भूमि में पहले से ही चूने का अंश न हो तो चूना मिलाना लाभप्रद होगा।

ऊपर वर्णन किये हुए शाकाणुओं के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के निम्न श्रेणी के जीवधारी भूमि में रहते हैं जिनके विषय में दिन प्रतिदिन नई नई खोज हो रही है। सच तो यह है कि इनके विषय में हमारी जानकारी अभी पूर्ण नहीं है। परन्तु यह अवश्य निश्चय है कि इनकी सहायता बिना खेत की उर्वरा शक्ति बनाये रखना असम्भव है।

जानवरों के मल-मूत्र की खाद

पौधों के भोजन के विषय में बुनियादी बातें समझ लेने के बाद अब हमें इस पर विचार करना है कि गाँवों में उपलब्ध साधनों द्वारा हम खाद की कमी कैसे दूर कर सकते हैं। जानवरों के मल-मूत्र का खाद के रूप में प्रयोग बहुत ही प्राचीन समय से होता आया है। हम यहाँ उसी का वर्णन पहिले करेंगे।

गोबर की खाद

संसार में जितनी प्रकार की खादें हैं उनमें सबसे अच्छी और सबसे अधिक काम में आनेवाली खाद गोबर की है जिसको अंग्रेजी में फ़ार्म यार्ड मेन्योर कहते हैं। इसकी अच्छाइयों को केवल भारतवर्ष के किसान ही नहीं बल्कि संसार के सभी किसान अच्छी तरह से जानते हैं। यह पौधे की सारी खूराक भूमि में पहुँचाने के

सिवा उसकी दशा को भी सुधारती है अर्थात् बलुई भूमि को मटियार बनाती है और मटियार भूमि को भुरभुरी करती है और जो भूमि जल्द सूख जाती है उसमें यह नमी को रोकती है। जिस खेत में गोबर की खाद दी जाती है उसमें बिना खादवाले खेत की तुलना में नमी अधिक ठहरती है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए सर जॉन रसल के प्रयोगों का फल नक़्शे में दिया जाता है।

(इस नक़्शे में गोबर की खाद दी हुई भूमि की नमी की तुलना बिना खाद दी हुई भूमि की नमी से की गई है।)
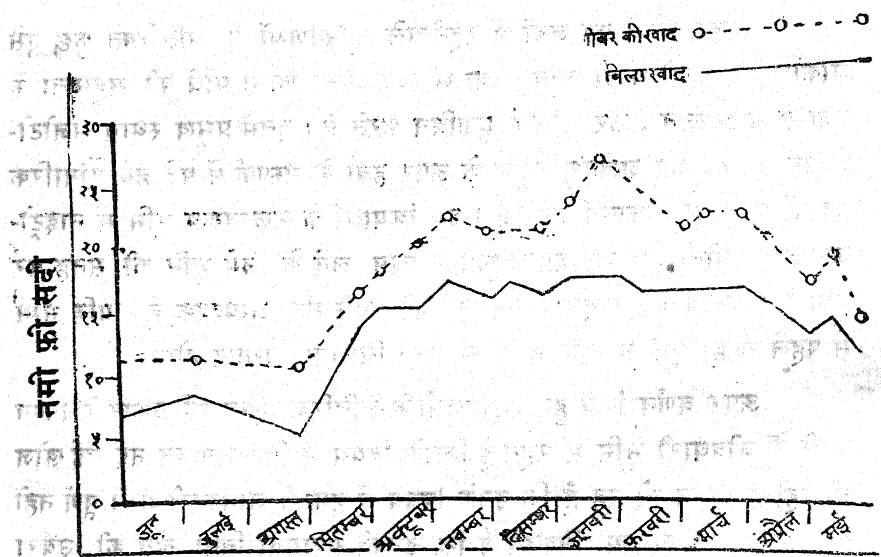
सर जॉन रसल की किताब से उद्धृत

ये प्रयोग राथम्सटेड फ़ार्म पर किए गए थे। हमारे प्रदेश के किसान गोबर की खाद की अच्छाइयों को भली प्रकार जानते हैं किन्तु उसको बनाने और रखने का नियम ठीक तरह से नहीं जानते। इसका फल यह होता है कि इस खाद की हमेशा कमी रहती है। गाँव में अधिकतर इसका ढेर लगा देते हैं जिसको घूर कहते हैं। इस घूर के ऊपर वर्षा होती है और पौधे की ख़ूराक का काफ़ी हिस्सा पानी के साथ बह कर नष्ट हो जाता है। पौधे की ख़ूराक गोबर का ढेर नहीं है किन्तु उसमें का वह भाग है जो पानी में घुल सकता है। इसलिए घूर में गोबर इकट्ठा करनेवालों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जिस घूरे पर बराबर बरसात होती रही है उसमें से अधिकतर पौधे की ख़ूराक बरसात के पानी में घुलकर बह गई और नष्ट हो गई और खाली सीठी जो पौधे के लिए बेकार है वही बाक़ी रह गई है

और उसी को किसान प्रायः खेत में डालते हैं। दूसरी हानि जो गांव में घूरे लगाने से होती है वह यह है कि जब धूप होती है तो उसमें जितनी एमोनिया की खाद तैयार होती है जैसे एमोनियम क्लोराइड इत्यादि वह हवा में उड़कर ठीक उसी तरह नष्ट हो जाती है जैसे कपूर थोड़े दिनों हवा में रखने से उड़ जाता है।

प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि जो खाद गढ़ों में डालकर इस तरह मिट्टी से ढक दी जाती है कि उस पर धूप और पानी असर न कर सके उसमें से नाइट्रोजन जो पौधे की मुख्य ख़ूराक है बिल्कुल नष्ट नहीं होती है। और उस खाद के ढेर में से जो बाहर मैदान में डाल दी जाती है ३३ फ़ी सदी नाइट्रोजन नष्ट हो जाती है। खाद के ढेरों से वर्षा के दिनों में जो काला-काला रस गाँव के डगरों और रास्तों में जमा होता है वही पौधे की असली ख़ूराक है। इस सम्बन्ध में राथम्सटेड फार्म का एक प्रयोग जो सर जॉन रसल ने किया था उसका वर्णन नीचे दिया जाता है। यह प्रयोग आलुओं पर किया गया था। तीन बराबर क्षेत्र के खेत छाँटकर एक खेत में २७० मन ऐसी गोबर की खाद डाली गई थी जो बाहर पड़ी हुई थी और बरसात व धूप से सुरक्षित नहीं रक्खी गई थी और दूसरे खेत में २७० मन गोबर की ऐसी खाद पड़ी थी जो गड्ढों में वर्षा और धूप से सुरक्षित रक्खी गई थी। तीसरे खेत में कोई खाद नहीं डाली गई थी। पहिले खेत में २०० मन आलू पैदा हुआ और दूसरे में जिसमें गढ़े की दबी हुई खाद डाली गई थी २४३ मन आलू पैदा हुआ। उस खेत में जिसमें कोई खाद नहीं डाली गई थी १३७ मन आलू पैदा हुआ। इस का सही अनुमान आगे के नक़्शे के देखने से मालूम होगा जिसमें २७० मन घूरे की खाद और २७० मन गढ़े की खाद से आलू की पैदावार की तुलना की गई है। इससे स्पष्ट है कि २७० मन घूरे की खाद डालने से पैदावार सिर्फ़ ६३ मन बढ़ी और २७० मन गढ़े की खाद डालने से आलू की पैदावार १०६ मन बढ़ गई यानी गढ़े की खाद घूरे की खाद की तुलना में डेढ़ गुने से भी अधिक लाभप्रद सिद्ध हुई अर्थात् एक गाड़ी गढ़े की खाद कम से कम डेढ़ गाड़ी घूरे की खाद के बराबर है।

खाद के गढ़े में जो प्रायः गाँव में बनाए भी जाते हैं इस बात का ध्यान नहीं रक्खा जाता कि वे कितने लम्बे, चौड़े, और गहरे हैं या कितने दिनों में वह भर सकते हैं। अधिकतर गढ़े नीची जगह में बना दिए जाते हैं जिसमें बरसात का पानी भर जाता है और खाद का बहुत उपयोगी भाग बहा ले जाता है जो गाँव को भी गन्दा करता है। ऐसे गन्दे पानी में प्रायः मच्छर, मक्खियाँ और बहुत सी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं जिनसे गाँव में रहने वालों को बहुत ही कष्ट होता है। इसलिए केवल यह समझ लेना कि खाद को गड्ढे में रखना चाहिए काफ़ी नहीं है किन्तु यह समझना आवश्यक है कि गड्ढा कैसी जगह पर हो और किस लम्बाई, चौड़ाई व गहराई का हो। जैसा कि पहले बताया जा चुका है गोबर की खाद चाहे
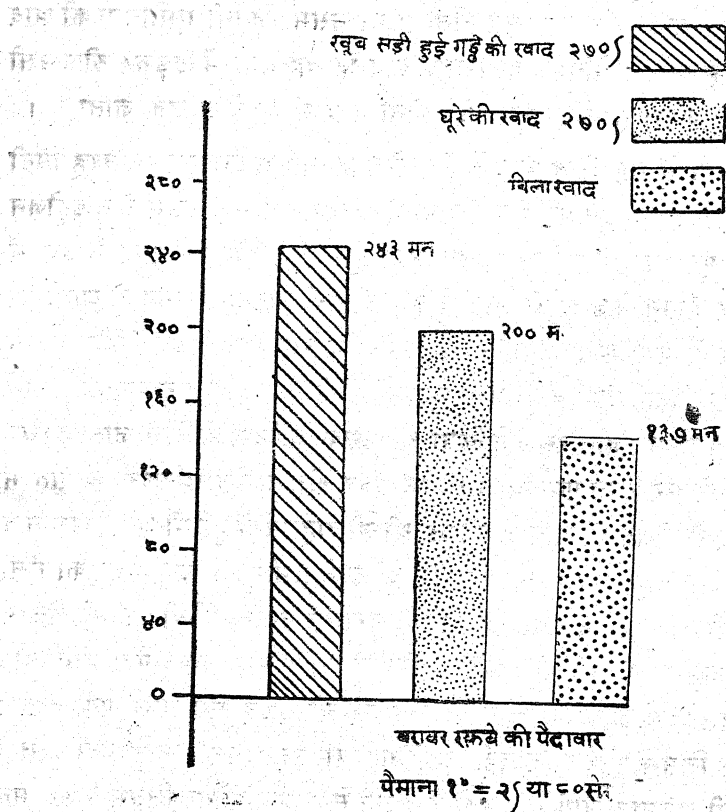
घूरे में हो, चाहे गड्ढे में, उस पर पानी का असर बहुत बुरा पड़ता है। इसलिए खाद का गड्ढा ऐसी जगह पर होना चाहिए जहाँ मेंह का पानी इकट्ठा न होता हो। इस पानी को गढ़े में जाने से रोकने के लिए यह भी आवश्यक है कि उसके चारों ओर कम से कम एक या डेढ़ फिट ऊँची और २ फ़ीट चौड़ी मजबूत मेंड़ बना दी जावे ताकि बाहर का पानी किसी हालत में गड्ढे में न जा सके। गढ़े की गहराई ३ से ४ फ़ीट होनी चाहिए। यदि इससे अधिक गहराई होगी तो नीचे की खाद अच्छी तरह नहीं सड़ेगी और यदि गड्ढे की गहराई कम होगी तो खाद के सूखने का डर रहेगा। लम्बाई और चौड़ाई के बारे में किसान को अपनी आवश्यकता के अनुसार स्वयं ही तय कर लेना चाहिए। ६ फ़ीट चौड़ा और ८ फ़ीट लम्बा अथवा १२ फ़ीट लम्बा और ८ फ़ीट चौड़ा गड्ढा इस काम के लिए बहुत अच्छा सिद्ध हुआ है। हरएक किसान को चाहिए कि वह अपनी आवश्यकता के अनुसार छोटे पैमानेवाला ८×६×४ फ़ीट का अथवा बड़े पैमानेवाला १२×८×४ फ़ीट का कम से कम दो या तीन गड्ढे बना लें। जब एक गड्ढा खाद से पूरे तौर पर भर जावे तो उसको ६ इंच मोटी मिट्टी की तह से ढक दे। यह मिट्टी की तह गड्ढे में धूप और बरसात का पानी ही जाने से नहीं रोकती, किन्तु जो एमोनिया गैस इत्यादि पौधे की खूराक गड्ढे

में से हवा में उड़ती है उनको भी यह मिट्टी सोख लेती है और वह भी लगभग उतनी ही अच्छी खाद हो जाती है जितनी नीचे की ढकी हुई खाद। जब एक गड्ढा इस तरह से भर कर ढक दिया जावे तब दूसरे गड्ढे में खाद भरना चाहिए। पहिले गड्ढे की भरी हुई खाद लगभग ६ महीने में सड़कर खेत में डालने योग्य तैयार होगी। उस समय तक दूसरे गड्ढा भी भर कर उसी तरह से ढक देना चाहिए और तीसरे में खाद भरना शुरू कर देना चाहिए। किसान को आसानी इसी में होगी कि वह तीन गड्ढे रखे ताकि जब तीसरा भरा जा रहा हो उस समय पहला खाली कर दिया जावे और उसकी खाद खेत में पहुँच जावे ताकि जैसे ही तीसरा गड्ढा भरकर ढका जावे वैसे ही उसको नं० १ गड्ढा भरने को खाली मिल जावे। एक जोड़ी बैल और दो एक गाय भैंस रखनेवाले किसान के लिए छोटे किस्म के गड्ढे काफी हैं पर दो या चार जोड़ी बैल रखनेवाले किसान के लिए बड़े पैमाने के गड्ढे आवश्यक होंगे। यह गड्ढे यदि गाँव से हटकर थोड़ी दूरी पर बनाए जावें तो गाँव के साफ रखने में बड़ी आसानी होती है। दूसरी बात जो ध्यान से रखने की है वह यह है कि इस किस्म के गड्ढे पानी पीने के कुओं से अलग बनाए जावें ताकि अधिक वर्षा होने पर इन गड्ढों का पानी भूमि के अन्दर ही अन्दर कुओं में न पहुँच जावे और गाँव में रहनेवालों का स्वास्थ्य न नष्ट कर दे।

जिन लोगों के पास भेड़, बकरी, सूअर, गदहे, घोड़े, ऊँट और हाथी हों उनको भी चाहिए कि उनकी सारी लीद इन्हीं गढ़ों में डालते रहें क्योंकि इन जानवरों की लीद की भी अच्छी बढ़िया खाद बन सकती है जैसे गाय, भैंस के गोबर की बन सकती है।

बहुत से किसान यह गलती करते हैं कि वह कच्चा गोबर ही खेत में फैला देते हैं और वह वहीं पड़ा-पड़ा सूख जाता है। यदि गर्मी के दिनों में कोई कच्चा गोबर का टुकड़ा उठाकर देखा जावे तो उससे मालूम होगा कि वह दीमक की सबसे बढ़िया खूराक है। बिना सड़े हुए गोबर से सिर्फ यही नहीं होता कि खाद खराब हो जाती है किन्तु खेत में दीमक पैदा हो जाते हैं जो बाद को पैदा होने-वाली फसलों के लिए हानिकारक होते हैं। इसके अतिरिक्त गोबर में मिले हुये खरपतवार के बीज भी खेत में ज्यों के त्यों पहुँच जाते हैं और खेत में घासें बहुत उपजती हैं। गड्ढों में गोबर को सड़ाकर डालने से खरपतवार का बीज पहिले ही सड़ जाता है और बाद में खेत में नहीं उगता। इसलिए खेत में बिना सड़ाए खाद नहीं डालनी चाहिए।

एक गाड़ी खाद यदि गेहूँ के खेत में डाल दी जावे तो लगभग १५) की पैदावार बढ़ा देती है किन्तु गन्ने के खेत में जिसमें २०, २५ गाड़ी खाद प्रति एकड़ डाली जाती है उसमें बिना खादवाले खेत की तुलना में कम से कम

४०० मन गन्ना की पैदावार बढ़ जाती है अर्थात् एक गाड़ी खाद से लगभग २०) मन गन्ने की पैदावार बढ़ती है। इन सब हिसाबों को देखते हुए यह निश्चय है कि एक गाड़ी १५ मन गोबर की खाद फ़सल के समय औसतन २०) की पैदावार बढ़ा देती है। यदि किसान गोबर के उपले कम बनावे और उसे खाद के लिए गढ़े में जमा करे तो उसके खाद की मात्रा और खेत की पैदावार बहुत अधिक बढ़ जावेगी। कंडे के बजाय जहाँ तक हो सके आस-पास के जंगलों से बबूल, ढाक और दूसरे किस्म की लकड़ी के ईंधन का प्रयोग करना किसान के लिए अधिक लाभप्रद होगा। ग्राम पंचायतों को यह चाहिए कि जहाँ कहीं भूमि इस काम के योग्य हो उसमें बबूल, ढाक, महुआ और कई किस्म के पेड़ लगाते रहें ताकि ईंधन के लिए लकड़ी काफी मिलती रहे और कंडे बनाने के बदले गोबर उनके खेतों के खाद के लिए बच जावे। ईंधन का प्रश्न कुछ हद तक ढेंचा की खेती से भी हल हो सकता है। यदि ढेंचा बोकर उसका दाना बीज के लिये ले लिया जाय तो उसके डंठल जलाने के काम आ सकते हैं। ढेंचा का पौधा बहुत ही शीघ्र बढ़ता है और जितना ईंधन यह केवल ४-५ महीने में दे सकता है, शायद ही उतना ईंधन कोई और पौधा दे सके। दलहन किस्म का होने के नाते यह खेत को भी मजबूत बनाता है और इसका दाना भी बिक जाता है। साथ ही इसको पैदा करने के लिये कोई विशेष जोताई गोड़ाई नहीं करनी पड़ती। बरसात शुरू होते ही ताल पोखरों के किनारे या अन्य बंजर भूमि में इसका बीज छींट दिया जाय तो यह पैदा हो जाता है।

जानवरों के मूत्र की खाद

किसान इस बात को बहुत दिनों से जानते हैं कि जानवरों का मूत्र बहुत ही अच्छी खाद है। मध्यप्रदेश में सरकारी फार्म पर श्री आर० जी० ऐलन की देखरेख में बहुत से प्रयोग किए गए हैं उनसे यह सिद्ध हुआ है कि यदि एक जोड़ी बैल के कुल गोबर की खाद एक खेत में डाल दी जावे और उन्हीं बैलों का कुल मूत्र मिट्टी में जमा करके उतने ही क्षेत्रफल में डाल दिया जावे तो दोनों का प्रभाव बिलकुल बराबर होता है। चूँकि गोबर के खाद का दो तिहाई हिस्सा जला दिया जाता है इसलिए यदि जानवरों का कुल मूत्र खाद में प्रयोग कर लिया जावे तो मौजूदा खाद की मात्रा जो किसान के पास है तीन या चार गुना बढ़ जावेगी। यदि १०० पौण्ड नाइट्रोजन, जो पौधों की असली खुराक है, बैलों को घास, फूस, खली दाने में खिलायी जाती है तो वह निम्नलिखित हिस्सों में उसके शरीर से बाहर निकलती है। ३० प्रतिशत नाइट्रोजन गोबर में, ५० प्रतिशत पेशाब में, ५ प्रतिशत गोश्त, हड्डी और खून बनने में खर्च होती है और १५ प्रतिशत हवा में मिल जाती है। इस बात से यह स्पष्ट है कि मूत्र में अधिक

नाइट्रोजन होती है जिसकी इस प्रदेश की भूमि के लिए बहुत आवश्यकता है और यह ऐसी खाद है जिसे सड़ाने की भी आवश्यकता नहीं है। यह जैसे ही सार अर्थात् बैलों के बाँधने की जगह से निकाली जावे उसी रोज खेतों में डाली जा सकती है।

मूत्र की खाद तैयार करने के तीन उपाय हैं जिनमें से कोई एक उपाय अपनी सुविधा को देखकर काम में लाया जा सकता है।

(१) मिट्टी की एक ४" इंच मोटी तह पशुशाला में बिछा दी जाती है, जहाँ तक हो यह मिट्टी किसान को अपने खेत ही में से लानी चाहिए। यह मिट्टी जानवरों के बैठने के लिए मुलायम और आराम देनेवाली फर्श बन जावेगी और उस मूत्र को जो उस पर गिरेगा सोख लेगी। जब जानवरों के नीचे की मिट्टी अच्छी तरह से मूत्र से तर हो जावे तो उस मिट्टी को वहाँ से हटा देना चाहिए और पशुशाला में दूसरी जगह की मिट्टी जो सूखी है उसकी जगह डाल देना चाहिए। मिट्टी को इसी तरह पशुशाला के अंदर ही उलटते-पलटते रहना चाहिए और हर तरफ से मिट्टी वहाँ डालते रहना चाहिए जहाँ मूत्र अधिक गिरता है ताकि पशुशाला की तमाम मिट्टी बराबर मूत्र से तर हो जावे। इस तरह हर पन्द्रहवें दिन कुल पशुशाला की खुदाई करते रहना चाहिए। करीब दो माह में पशुशाला की कुल मिट्टी मूत्र से तर हो जावेगी और अच्छी और तुरन्त काम में आनेवाली खाद बन जावेगी। दो माह के बाद यह ४" इंच मोटी मिट्टी की तह हटा लेना चाहिए और तुरन्त खेतों में खाद की तरह डाल देनी चाहिए या खाद के गढ़ों में जमा कर देना चाहिए ताकि फिर काम में आ सके और फिर नई मिट्टी की ४" इंच मोटी तह पशुशाला में बिछा देनी चाहिए। इस तरह किसानों को बिना किसी खर्च के ही काफी मात्रा में अच्छी खाद मिल जावेगी। यह खाद आसानी से सभी फसलों में दी जा सकती है। जब यह उपाय प्रयोग में लाया जावे तो इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जावे कि पशुशाला की मिट्टी की हर पंद्रहवें दिन खूब गुड़ाई कर दी जावे।

(२) पशुशाला की भूमि को ६ इंच गहरा खोद डालना चाहिए जैसा कि नीचे चित्र में दिखाया गया है।
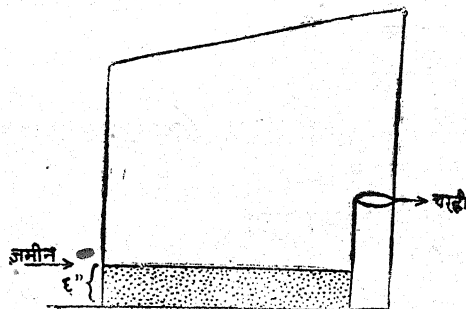
फिर २½ इंच भुरभुरी मिट्टी की तह महीने में एक बार डाल दी जावे और इसी तरह हर महीने २॥ इंच मोटी तह डालते रहें ताकि पहली तह को दूसरी तह ढक ले और दूसरी तह को तीसरी तह ढक ले और फिर तीसरी तह को चौथी तह ढक ले। इसके बाद फर्श भूमि की सतह से २ इंच ऊँची हो जावेगी। चार महीने के बाद कुल ८ इंच मोटी मिट्टी एकदम उठा ली जावे और नई मिट्टी फिर उसी प्रकार डाली जावे। यह उपाय सबसे अच्छा है और अक्टूबर से मई तक प्रयोग में लाया जा सकता है।

(३) जिन स्थानों में बाग बगीचा अधिक हों और खरपतवार अधिक मात्रा में मिल सकता हो वहाँ बजाय मिट्टी के उस खरपतवार की ६ इंच मोटी तह पशुशाला की फर्श पर बिछाकर और उसमें मूत्र को सोखाने से वैसी या उससे भी अच्छी खाद तैयार की जा सकती है। जब यह खरपतवार की तह अच्छी तरह मूत्र से सन जावे तो उसे हटा देना चाहिए और खरपतवार की दूसरी तह ६ इंच मोटी पशुशाला में बिछा देनी चाहिए। इस तरह मूत्र से सना हुआ खरपतवार गोबर के साथ ही खाद के ढेरों में सड़ने के लिए डाल देना चाहिए। यह उपाय जाड़े के मौसम के लिए सबसे अच्छा है।

नोट—इन उपायों के प्रयोग करने में यह आवश्यक है कि पशुशाला के ऊपर छप्पर डाल दिया जावे ताकि बरसात के दिनों में पेशाब न बह जावे। बरसात में जानवरों के नीचे बिछाने के लिए मिट्टी कहीं साये में बरसात शुरू होने के पहिले जमा कर लेना चाहिए।

कम्पोस्ट

कम्पोस्ट खाद सभी वानस्पतिक या पाशविक पदार्थों को सड़ाकर बनाई जा सकती है। गाँवों में पाई जानेवाली वस्तुएँ जिनकी कम्पोस्ट बन सकती है वे निम्नलिखित हैं—

१. खरपतवार और निकाई की घासें
२. बागों की सूखी पत्तियाँ, गन्ने की पत्तियाँ, पुराने छप्पर
३. कूड़ा करकट राख
४. पौधों की जड़ें और डंठल
५. तालाब, गड्ढे और झीलों की खरपतवार जलकुम्भी इत्यादि
६. जानवरों का मलमूत्र
७. चरही पर का बचा हुआ भूसा
८. धान की भूसी
९. लकड़ी का बुरादा

इनमें से जो पदार्थ सख्त हों उन्हें जानवरों से कुचलवा कर मुलायम करा लेना चाहिए। जिस रास्ते से पशुशाला से जानवर आते-जाते हों उसी स्थान पर कड़ी चीजें जैसे पटुआ, ढैंचा, कपास इत्यादि के डन्ठल को बिछा देना चाहिए। ८-१० रोज कुचले जाने के बाद ये चीजें मुलायम हो जाती हैं और कम्पोस्ट बनाने योग्य हो जाती हैं।

बिलकुल हरे पौधों को गड्ढों में नहीं भर देना चाहिये। हरे पौधों में नमी अधिक होती है और यदि ज्यों के त्यों भर दिए जायें तो कम्पोस्ट के बजाय साइलेज बनने की सम्भावना अधिक है। यदि हरे पौधे का अनुपात ३० प्रतिशत से अधिक हो तो उसे पहले कुछ सुखा लेना चाहिए। परन्तु थोड़ी मात्रा में हरे पौधों का होना लाभप्रद है क्योंकि इसमें भौवरी जल्द लगती है और कम्पोस्ट का सड़ना शीघ्र प्रारम्भ हो जाता है। यदि कोई लम्बी लच्छेदार वस्तु है तो उसे सड़ाने के पहिले छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेना सुविधाजनक होगा।

सड़ाने के समय कम्पोस्ट के गड्ढों में एक प्रकार की तेजाब तैयार होती है और यदि यह अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाने दी जाये तो शाकाणु मर जाते हैं और सड़ान रुक जाती है। ऐसी दशा को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि कम्पोस्ट बनाते समय खरपतवार के साथ चूना मिट्टी या राख अवश्य मिलाई जाये।

गर्मी और जाड़े के दिनों में गढ़ों के भीतर और बरसात में जमीन के ऊपर ही किसी ऊँचे स्थान पर जहाँ पानी न लगता हो कम्पोस्ट बनाना चाहिये। गड्ढे जानवरों के बाँधने के स्थान के पास ही हों जिससे कूड़ा कचरा गोबर इत्यादि ढोने में आसानी हो। परन्तु यह आवश्यक है कि गड्ढे ऐसी जगह हों जहाँ पानी की सुविधा हो। खरपतवार को भरते समय और फिर पलटते समय बार-बार तर करना पड़ता है इसलिए पानी का निकट होना अत्यंत आवश्यक है। हर-एक किसान के पास आवश्यकतानुसार गड्ढे की संख्या होनी चाहिये परन्तु तीन से कम किसी के पास नहीं होनी चाहिये जिससे जब तक अंतिम गढ़ा भरता रहे तब तक पहले गढ़े की खाद तैयार हो जाये।

गढ़ों की लम्बाई किसान के पास प्राप्त कम्पोस्ट बनाने की सामग्री की मात्रा पर निर्भर है। चौड़ाई उसकी सुविधा के अनुसार और गहराई तीन फुट होनी चाहिये। साधारणतः ३०×१०×३ फुट के गढ़े बनाने चाहिये। इन गढ़ों को लम्बाई के ५-५ पाँच, पाँच फुट के टुकड़ों में भरना चाहिये। जिधर से गड्ढा भरना शुरू करें उधर गड्ढा की लम्बाई का कुछ टुकड़ा खाली छोड़ देना चाहिये जिससे बाद में पलटने में आसानी हो। प्रयत्न यह होना चाहिये कि ५-५ फुट के टुकड़े एक सप्ताह में भर जायें।

गड्ढे भरने की विधि

गड्ढे तहों में भरे जाते हैं। पहिले पत्तियों, फूस व खरपतवार की ६ इंच की एक तह लगाई जाती है। उसके ऊपर २ इंच गोबर की खाद या पुरानी कम्पोस्ट की तह लगानी चाहिये और फिर एक पतली तह मिट्टी और राख या चूने की देनी चाहिये। यदि खरपतवार पहले से नम नहीं है तो उसे पानी छिड़ककर ज्यों-ज्यों तह पर तह लगाई जाती है, नम करते चलना चाहिये। पहली तह लग जाने के बाद फिर ६ इंच खरपतवार, २ इंच पुरानी खाद और मिट्टी राख या चूना की तह लगाना चाहिये। इस प्रकार से तह लगाते रहना चाहिये जब तक कि कुल तहों की ऊँचाई ५ फुट न हो जाये। शुरू में तो यह गड्ढे की ऊँचाई से २ फुट ऊँचा हो जायेगा, परन्तु बाद में सड़ने पर दबकर ३ फुट से अधिक नहीं रह जायेगा। अन्त में सब तहों के ऊपर एक मोटी तह मिट्टी की दे देनी चाहिये। गड्ढे को भरने के समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उनको कुचला न जाये नहीं तो तहें बहुत कसकर बैठ जायेंगी और हवा की कमी में कम्पोस्ट ठीक से बन न सकेगी। यदि गड्ढों को भरते समय उनमें खड़े-खड़े २ गोल छेद हर टुकड़े में छोड़ दिये जायें तो उनके द्वारा नीचे तक हवा भी पहुँचती रहेगी और उन में हाथ डालकर देखा जा सकेगा कि उचित समय से और ठीक गर्मी गड्ढे में पैदा हुई या नहीं। छेद छोड़ने का सबसे सरल उपाय यह है कि ४ इंच व्यास के दो बाँस के टुकड़े कचरा भरते समय गड्ढे के बीच में खड़े कर दिये जायें। जब टुकड़े भर जायें तो उन्हें खींचकर निकाल लेने पर उनके स्थान पर दो छेद बन जायँगे।
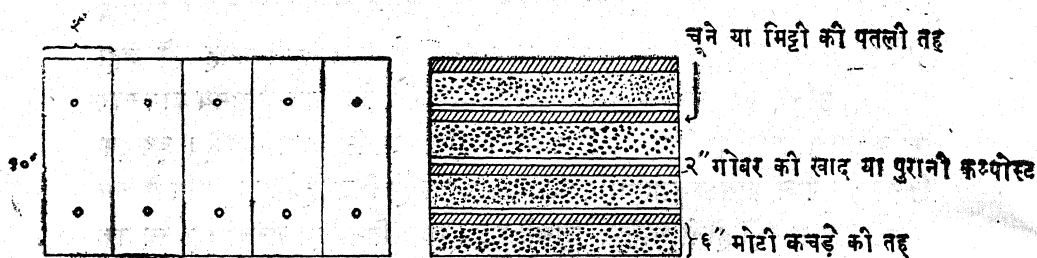
पहली पलटाई--

तह लग जाने के ३ सप्ताह बाद ढेर को फावड़े से काट-काट कर ऊपर से नीचे तक पलट देना चाहिये। प्रयत्न यह होना चाहिये कि कचरा खूब मिल जाये। ऊपर का नीचे चला जाये और नीचे का ऊपर चला आवे। यदि कहीं-कहीं नमी की कमी हो तो उसे पानी से तर कर देना चाहिये और जहाँ नमी अधिक हो उसमें सूखे हिस्से से कचरा मिला देना चाहिए या थोड़ी सी सूखी धूल मिला देनी चाहिए। इस पलटाई के समय भी बाँस के टुकड़े द्वारा छेद बना देना लाभप्रद होगा।

दूसरी पलटाई—

पहिली पलटाई के ३ सप्ताह बाद ढेर को फिर पलट देना चाहिये, जिन बाँसों का ध्यान पहली पलटाई के समय रखना चाहिये उन्हीं का ध्यान दूसरी पलटाई के समय भी रखना चहिये। दूसरी पलटाई के समय बाँसों द्वारा छेद बनाने की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

दूसरी पलटाई के ६ सप्ताह बाद यानी पहली दफे तह लगाने के १२ सप्ताह बाद कम्पोस्ट बिलकुल तैयार हो जाती है और खेतों में डालने योग्य हो जाती है।

जो किसान पहले-पहल कम्पोस्ट बनाते हैं उनको यह जानने की उत्सुकता रहती है कि क्या उनकी कम्पोस्ट ठीक से बन रही है। कम्पोस्ट बनने की क्रियायें ठीक से चल रहीं हैं, उसके कुछ लक्षण हैं। यदि ये लक्षण दिखाई दें तो किसान को सन्तुष्ट रहना चाहिये कि उसकी कम्पोस्ट ठीक से बन रही है। ये लक्षण निम्न-लिखित हैं—

(१) ढेर में बाँसों द्वारा बनाये हुये छेदों से भाप का निकलना। सुबह के समय देखने से काफी भाप निकलती दिखाई देती है।

(२) ढेर के ऊपर छोटे-छोटे कुकुरमुत्तों का निकलना।

(३) पहली पलटाई के समय पूरे ढेर में भूरे सफेद रंग की भौंवरी का लगा रहना।

(४) दूसरी पलटाई के बाद ढेर में केचुओं का आ जाना।

(५) ढेर में किसी प्रकार की बदबू का न होना।

कम्पोस्ट बनने की क्रिया ठीक से नहीं चल रही है उसके लक्षण निम्नलिखित हैं:—

(१) ऊपर लिखे हुये सुलक्षणों का अभाव।

(२) ढेर से बदबू या अमोनिया गैस का निकलना।

यह इस बात का चिह्न है कि या तो ढेर दबकर बैठ गया है या उसमें नमी अधिक है।

(३) ढेर पर मक्खियों का भिनभिनाना या अंडे-बच्चे देना।

(४) सड़ने के फलस्वरूप ढेर को दब जाना चाहिये। यदि ढेर दबता नहीं है और ज्यों का त्यों बना रहता है तो समझना चाहिये कि कचरे में नमी की कमी है।

कम्पोस्ट बनाने में तह लगाने, उसे नम रखन तथा पलटने की बातें सोच-कर किसान घबरसता है। वास्तव में यह सब इतना कठिन नहीं है जितना मालूम होता है। फिर भी कम्पोस्ट बनाने का एक सरल उपाय भी है। यदि किसान कम

मेहनत करना चाहता है और कचरे को सड़ाने के लिये अधिक समय दे सकता है और थोड़ी सी निम्न श्रेणी की कम्पोस्ट से सन्तुष्ट हो जाता है तो उसे निम्नलिखित सरल उपाय अपनाना चाहिये।

पशुशाला में खरपतवार, भूसी, पुराने छप्पर इत्यादि जो किसान के पास सड़ाने की सामग्री हो उसका बछरा बिछा दिया जाये। पेशाब और गोबर से ज्यों-ज्यों यह बछरा तर होता जाये त्यों-त्यों उसमें और कचरा डालते रहना चाहिये जिससे कि बछरा सदा सूखा बना रहे। सप्ताह में एक दफे कुछ सूखी मिट्टी भी डालते रहना चाहिए। अन्त में जब एक गढ़ा भरने भर को सामग्री तैयार हो जाये तो उसके ऊपर बटोरी हुई राख या चूना छिड़क कर पूरे बछरे को पानी से तर कर देना चाहिए। इस प्रकार से कचरा, मिट्टी, राख और नमी सब कुछ पहले से मिल जाती है और तहें लगाने से छुट्टी मिल जाती है। बस, कुल का कुल उठाकर गड्ढों में भर देना रहता है। गड्ढों को भरकर उसके ऊपर एक मोटी तह मिट्टी की दे देनी चाहिये। इस प्रकार से भरी खाद ४ या ५ महीने में बिना पलटे तैयार हो जायेगी। यह उतनी अच्छी खाद तो नहीं होगी जितनी कि विधिवत् बनाई हुई कम्पोस्ट। फिर भी यह गोबर की खाद से अच्छी होगी और आसानी को देखते हुए अपनाने योग्य है।

बहुत सा खरपतवार ऐसा है जिसे खेत से दूर लाकर कम्पोस्ट बनाना कठिन है, जैसे फसलों की जड़ें, नई तोड़ी गई जमीन की घासें इत्यादि। इन्हें तथा कुछ फसल जिन्हें इसी काम के लिए बोया गया है खेत ही में कम्पोस्ट बना दिया जाता है। इसकी विधि यह है कि खरपतवार घास या फसल को पाटा देकर खेत में ही दबा दिया जाता है और उसके ऊपर से कुछ गोबर की खाद या पुरानी कम्पोस्ट या थोड़ी अमोनियम सल्फेट छिड़क कर सब को मिट्टी पलटनेवाले हल से उलट दिया जाता है। यदि खेत में पहले से नमी न हो तो हल से पलटने के पहले सिंचाई कर देना चाहिए। इस तरह से पलटा हुआ खरपतवार शीघ्र ही सड़कर खेत में ही कम्पोस्ट हो जाता है।

जिन स्थानों पर कचरे को तर करने के लिए पानी की कमी हो या पानी पहुँचाने में अत्यधिक परिश्रम पड़ता हो वहाँ बरसात में कम्पोस्ट बनानी चाहिए। बरसात में कम्पोस्ट बनाने की विधि निम्नलिखित है:—

बरसाती कम्पोस्ट खाद बनाने की विधि

कचरे के ढेर में से चार-पाँच बोझ रोज जानवरों के बाँधने के स्थान पर बिछा देना चाहिए। दूसरे दिन कंडे के लिए गोबर उठाकर मूत्र से सनी बिछाली पर एक टोकरी खोदी हुई मिट्टी और दो पलरे राख बखेरकर धरती को झाड़ लेना चाहिए और फिर सारे कचरे को ऐसी जगह ले जाकर जहाँ बरसाती पानी न रुकता हो एक छोटी सी ढेर या सिल्ली बना देना चाहिए। इस प्रकार रोज के लाए हुए कचरे

से इस ढेर की ऊँचाई धीरे-धीरे ३ फीट हो जायगी। चौड़ाई ८ फीट हो और लम्बाई १४ फीट होनी चाहिए। बरसात से पहले ही कम्पोस्ट खाद बनाने का ढेर तैयार हो जाना चाहिए। इस तरह बनाये हुए ढेरों को १ महीने के अन्तर से तीन बार उलटना चाहिए।

पहली बार उलटना--

वर्षा का पहला पानी जब खूब जोर से बरस चुके तब लकड़ी की दताली या फावड़े से ढेर को एक तरफ से उलटना चाहिए जिससे उसके पास ही बगल में दूसरा ढेर बन जाय। पलटने से ऊपर नीचे का तर व सूखा भाग अच्छी तरह मिल जाता है और बरसात का पानी भी उसके अन्दर अच्छी तरह प्रवेश हो जाता है जिसके कारण ढेर में सड़ान जल्दी होने लगती है। इसके बाद ढेरों के ऊपर ½ छटाँक सनई प्रति ४० वर्गफुट के हिसाब से पहली उलटाई के बाद बो देना चाहिए और जो पौधे उगें उनको दूसरी पलटाई के समय उसी कम्पोस्ट में मिला देना चाहिए, इसकी वजह से सड़न जल्दी होने लगती है।

दूसरी बार उलटना--

पहिली बार पलटने के एक महीने बाद फिर पलटने से ढेर अपनी पहली जगह आ जावेगा। इसके एक महीने बाद ढेर को तीसरी बार पलटना चाहिए। इन पलटाओं के कारण ढेर में हवा और नमी अच्छी तरह प्रवेश कर जाती है। ढेरों को उस रोज पलटना चाहिए जिस दिन कम बरसात होती हो अथवा केवल बादल ही हों ताकि धूप और पानी से खाद्य-पदार्थ नष्ट न हो जायँ।

ऊपर लिखा कार्य-क्रम मामूली मौसम के वास्ते है। यदि किसी समय पानी देर में बरसे तो उसी के अनुसार ढेर के पलटने में भी देरी कर देना चाहिए और अन्त में यदि सड़ाव पूरा न हो तो एक पलटाव और कर देना चाहिए।

साधारण तौर पर इस रीति से बनाया हुआ खाद चार महीने में तैयार हो जाता है। इस सरल रीति से कम से कम एक गाड़ी खाद तीन गाड़ी कूड़े-कचरे से बनायी जाती है।

कम्पोस्ट खाद बनाने से किसान को दो लाभ हैं। एक तो जितने गोबर से वह एक गाड़ी खाद बना सकता उससे वह ३ गाड़ी कम्पोस्ट बना सकता है। और दूसरे कम्पोस्ट में गोबर की खाद की अपेक्षा लगभग दूनी नाइट्रोजन होती है। इस तरह से हम देखेंगे कि यदि कुल के कुल गोबर को कम्पोस्ट बनाने में प्रयोग किया जाये तो जितनी नाइट्रोजन अकेले गोबर की खाद डालने से खेत में पहुँचती उसका ६ गुना तक कम्पोस्ट बनाकर डालने से खेत में पहुँचती है।

यदि कम्पोस्ट बनाने की सामिग्री की कमी न हो तो एक जोड़ी बैल रखनेवाला किसान साल भर में ४० गाड़ी कम्पोस्ट तैयार कर सकता है।

हरी खाद

देहातों में ईंधन की कमी के कारण गोबर का बहुत बड़ा भाग जला दिया जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि खाद में कमी हो जाती है। इस कमी को खरपतवार की कम्पोस्ट बनाकर पूरी की जा सकती है। परन्तु यदि कम्पोस्ट बनाने के लिये खरपतवार या अन्य सामग्री की भी कमी है तो खाद की कमी को हरी खाद द्वारा पूरा किया जा सकता है।

हरी खाद्र के लिये फसलें उपजाकर जब वे काफी बड़ी हो जाती हैं तब उन्हें मिट्टी पलटनेवाले हल से जोतकर खेत में ही सड़ने के लिये मिला दिया जाता है। फ़सलें प्रायः दालदार किस्म की बोई जाती हैं क्योंकि उनकी जड़ों में नाइट्रोजन इकट्ठा होती है और जब वे जोतकर भूमि में मिला दी जाती हैं तो न केवल वानस्पतिक अंश की मात्रा बल्कि नाइट्रोजन की भी मात्रा भूमि में बढ़ जाती है। हरी खाद के लिये फसल शीघ्र बढ़नेवाली तथा मुलायम होनी चाहिये जिससे थोड़े समय में तैयार होकर फसलों को लाभ पहुँचा सके।

इन सब बातों का ध्यान रखते हुये हरी खाद के लिये सबसे अच्छी फसल सनई और ढेंचा की सिद्ध हुई है। हरी खाद के लिये सनई या ढेंचा उस जगह जहाँ पानी सुगमता से मिल सके मई के दूसरे सप्ताह में बोना चाहिए और जहाँ पानी न मिल सके उस जगह पहिली बारिश के साथ बो देना चाहिए। जब पौधे की बाढ़ पूरी हो जावे जो प्रायः बुवाई के बाद ७ या ८ हफ्ता के अंदर ही हो जाती है उस समय खड़े खेत पर पाटा चलाकर पौधों को गिरा देना चाहिए। इसके बाद मिट्टी पलटने वाले हल से उसी तरफ़ को जोते जिस तरफ़ को सनई गिराई गई हो। ऐसा करने में बैलों को भी कष्ट न होगा और पौधे मिट्टी के अंदर दब जायेंगे। सनई या ढेंचा की फसल को ऐसे समय जोतना चाहिए कि जोतने के बाद न तो इतनी वर्षा हो कि सब खाद सड़-गलकर खराब हो जावे और न इतना कम पानी मिले कि खाद सड़ भी न सके। इसलिए यदि सनई जोतने के बाद वर्षा न हो तो खेत में पानी भर दिया जावे ताकि सब खाद सड़कर अगली फसल के लिए तैयार हो जावे। सनई को बहुत घना अर्थात् १ऽ मन बीज प्रतिएकड़ बोना चाहिए और ढेंचा को २० सेर प्रति एकड़ बोना चाहिए ताकि वानस्पतिक भाग की अधिक से अधिक मात्रा भूमि में जा सके। गेहूँ बोने से दस या ग्यारह सप्ताह पहिले हरी खाद जोत देना चाहिए। इसके लिए सबसे अच्छा समय जूलाई का अन्तिम सप्ताह या अगस्त का पहिला सप्ताह होता है। यदि एक एकड़ में सनई अच्छी पैदा हो तो उसकी लाँक का वजन लगभग ३००ऽ होगा। अच्छी सनई या ढेंचा की फसल जोतने से खेत को उतना ही लाभ होता है जितना १२ गाड़ी गोबर की पाँस प्रति एकड़ डालने से होता है।

शाहजहाँपुर के फार्म पर जो प्रयोग १९२८ से लेकर १९३१ ई० तक किए गए उनसे अच्छी तरह सिद्ध हो गया है कि गन्ने की पैदावार पर हरी खाद का बड़ा अच्छा प्रभाव होता है और केवल हरी खाद देने से गन्ने की पैदावार ३३ प्रतिशत बढ़ जाती है। ये प्रयोग फार्म के अलग-अलग भागों में अलग-अलग समय में किए गए हैं, किन्तु पैदावार में बराबर ३० प्रतिशत से ३३ प्रतिशत की वृद्धि हुई। हरी खाद दिए हुए और बिना खाद दिए हुए खेतों की पैदावार की तुलना इस प्रकार से की गई कि उनमें से दस-दस भाग छाँट लिए गए और फिर उनकी पैदावार का वज़न किया गया। इससे जो नतीजा निकला वह निम्नलिखित है।

साल	गन्ने की पैदावार उस खेत में जिसमें हरी खाद दी गई है	बिला खादवाले खेत में गन्ने की उपज
१९२८-१९२९	८४७ मन	६४९ मन
१९२९-१९३०	९१० मन	६६० मन
१९३०-१९३१	८०८ मन	६०५ मन
	२५६५ मन	१९१४ मन

शाहजहाँपुर फार्म पर सनई की हरी खाद के गन्ने पर तजुर्बे--
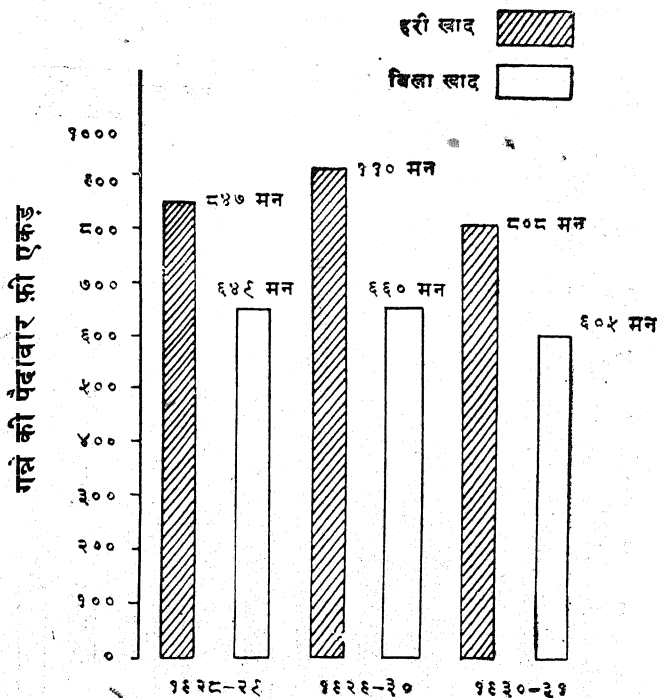
तीन साल की औसत पैदावार ८५५ और ६३८ मन।

हरी खाद दिए और विना खाद दिए हुए खेतों की मिट्टी की जाँच करके श्री जी० क्लार्क भूतपूर्व डाइरेक्टर कृषि-विभाग यू० पी० ने सिद्ध किया है कि हरी खाद दिए हुए खेतों में नाइट्रोजन अधिक रहता है और यही गन्ने की पैदावार बढ़ाने का मुख्य कारण है।

गेहूँ की पैदावार पर भी हरी खाद का बहुत अच्छा असर होता है। जिला बाँदा में अतर्रा फार्म पर जो प्रयोग १९१७ ई० से १९२१ ई० तक किये गये, उन प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि गेहूँ की पैदावार में हरी खाद से बहुत उन्नति हो जाती है। बाद को अलीगढ़ फार्म के प्रयोगों से भी इसकी पुष्टि हुई है। आगरे में सनई की खाद का गेहूँ की पैदावार पर इस तरह प्रयोग किया गया है कि एक खेत में हरी खाद दी गई और दूसरे में कोई खाद नहीं दी गई। इन दोनों में जो पैदावार हुई वह निम्नलिखित है।

गेहूँ की पैदावार

क़िस्म खाद	सन् १९१७			१९१८			१९१९		
	मन	सेर	छ०	म०	से०	छ०	म०	से०	छ०
हरी खाद	३४	१	४	२८	९	८	३२	८	०
बिना खाद	३०	१०	०	१४	२२	८	१९	१०	०

	१९२०			१९२१		
	म०	से०	छ०	म०	से०	छ०
हरी खाद	१७	३२	८	१८	१०	०
बिना खाद	१५	२२	०	११	२६	०

आगरा फार्म पर सनई की हरी खाद के प्रयोग गेहूँ की फसल पर
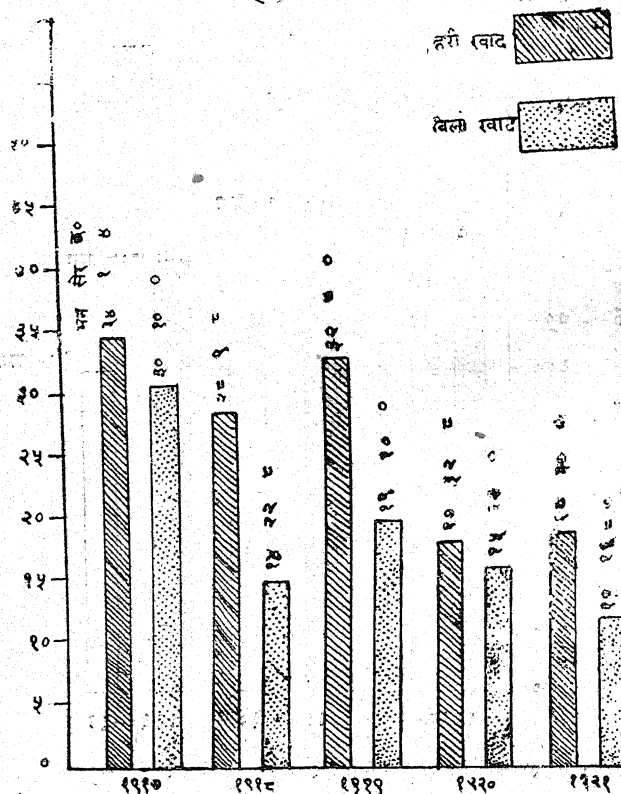
इन आँकड़ों को देखने से यह ज्ञात होता है कि हरी खादवाले खेत में गेहूँ की पैदावार प्रत्येक दशा में अधिक है। परतापगढ़ में पूसा नं० ४ और पूसा नं० १२ पर प्रयोग किए गये हैं। एक खेत में पूसा नं० १२ सन् १९१६ और १९२३ के बीच बिना खाद दिये हुए बोया गया और पैदावार का औसत लगभग ९।) प्रति एकड़ रहा अर्थात् ७५० पौण्ड। किन्तु हरी खाद देने से पैदावार औसतन ३० फ़ी सदी बढ़ गई।

ज़िला बाँदा के अतर्रा फार्म पर किये गये प्रयोग से सिद्ध हुआ है कि सनई की हरी खाद देने से गेहूँ की पैदावार ४० से ५० प्रतिशत तक बढ़ गई। नीचे अतर्रा फार्म के प्रयोगों का नतीजा दिया गया है:—

नाम खाद	१९१२-१३ई०	१३-१४	१४-१५	१५-१६	१६-१७ ई०
हरी खाद	२५)	१९॥)	१५॥)	२०)	१९॥।)
बिला खाद	१६)	११)	८)	१६)	१६॥)

अतर्रा फार्म जिला बांदा के सनई की हरी खाद का गेहूँ पर
किए गये प्रयोगों का फल
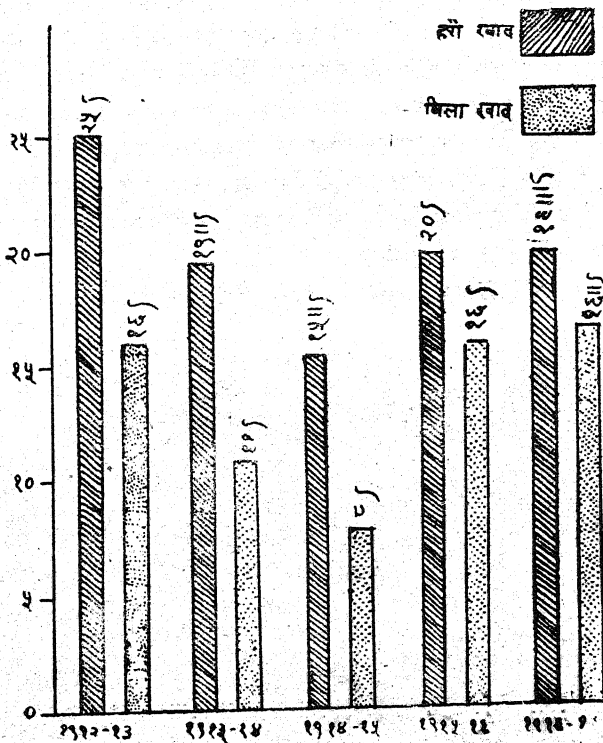
इन नतीजों को देखकर सनई की हरी खाद की उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं रह जाता। परन्तु इसके प्रयोग करने में छोटे किसानों के सामने अनेक कठिनाइयाँ हैं जिनके कारण कृषि-विभाग की ओर से काफी प्रचार होने पर भी

सनई की हरी खाद का प्रयोग अधिक नहीं बढ़ा है। सनई की लाँक बहुत बड़ी होती है जिससे पलटने के लिए बड़े हल और बड़े बैलों की आवश्यकता होती है। छोटे किसानों के पास न तो बड़े हल और न बड़े बैल ही खरीदने की सामर्थ्य है। दूसरे हरी खाद के लिए सनई बोने पर खेत से वर्षा ऋतु में कोई फसल नहीं ली जा सकती और गरीब किसान एक फसल की कमी को सहन नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त सनई का बीज हरी खाद के लिये एक मन प्रति एकड़ लगता है जिसकी कीमत १२) से १५) होती है और जिसको किसान आसानी से पैदा नहीं कर सकते।

इन सब कठिनाइयों को देखते हुये कृषि-विभाग ने एक नई दलहन की फसल मूँग टाइप १ का आविष्कार किया है। यह फसल बहुत बढ़ती नहीं, आसानी से मेस्टन हल से छोटे-छोटे बैलों से भी पल्टी जा सकती है। इसको पलटने के पहिले इसके दाने जो ६५ दिनों के अन्दर तैयार हो जाते हैं, तोड़ लिए जाते हैं। दाने तोड़ लिये जाने के बाद फसल खेत में ही जोत दी जाती है। यदि वर्षा शुरू होते ही १५ जून के लगभग मूँग बो दी जाये तो २० अगस्त तक में पकी फलियाँ तोड़कर यह खेत में जोत देने लायक हो जाती है। २० अगस्त से २० अक्तूबर के बीच २ महीने का अवसर किसान को खेत तैयार करने को मिल जाता है। इस बीच में मूँग की पत्तियाँ और डंठल सड़कर खेत में अच्छी खाद बन जाती है। इसके बोने से किसान को प्रति एकड़ ८-१० मन मूँग भी मिल जाती है और हरी खाद का भी लाभ होता है। मूँग यदि लाइन से बोई जाय तो केवल डेढ़ सेर प्रति एकड़ बीज की आवश्यकता होती है जिसकी कीमत केवल १ रु० है और जिसे किसान स्वयं पैदा कर सकता है। इसके बीज के लिये किसान को बीज गोदाम पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। मूँग नम्बर एक के बाद गेहूँ की फसल नीचे चित्र में देखिए।

मूँग नम्बर एक के बाद गेहूँ की फसल

बीच खेत में खड़े हुए मनुष्य की टोपी देखिए

मूँग नं० १ की ही तरह एक दूसरी फसल लोबिया टाइप १ है। यह भी शीघ्र पकनेवाली दलहन की फसल है और दाना लेने तथा हरी खाद दोनों के लिये प्रयोग की जा सकती है।

सनई मूँग नं० १ लोबिया नं० १ की लाँक को देखते हुये किसान का यह सोचना स्वाभाविक है कि सनई की तुलना में मूँग नं० १ और लोबिया नं० १ से खेत को कम लाभ पहुँचता होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। दलहन की फसलों की नाइट्रोजन इकट्ठा करने की शक्ति उसके बढ़ाव पर ही निर्भर नहीं है। मूँग नं० १ और लोबिया नं० १ बढ़ाव में सनई से कम अवश्य है परन्तु उनकी हवा से नाइट्रोजन इकट्ठा करने की शक्ति कम नहीं है, जैसा कि प्रयोगों से सिद्ध हुआ है। सनई, और मूँग नं० १ की हरी खादों तथा चौमस का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है; इसके नतीजे निम्नांकित चित्र में दिखाये जाते हैं।

शाहजहाँपुर गन्ना रिसर्च फार्म पर किये गये प्रयोग का फल—

१९५१, ५२
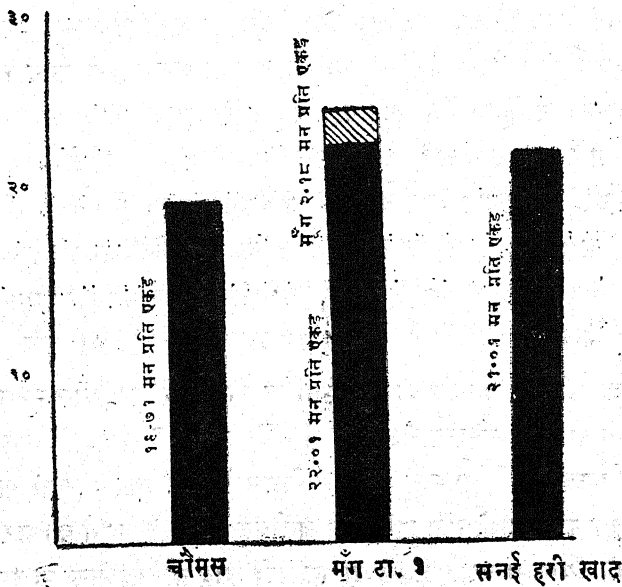
दूसरा प्रयोग कानपुर कृषि-कालेज में किया गया उसका फल आगे के चित्र में दिया गया है।

गेहूँ की उपज

(चित्र १) सरकारी कृषि-कालेज, कानपुर

१९५०-५१
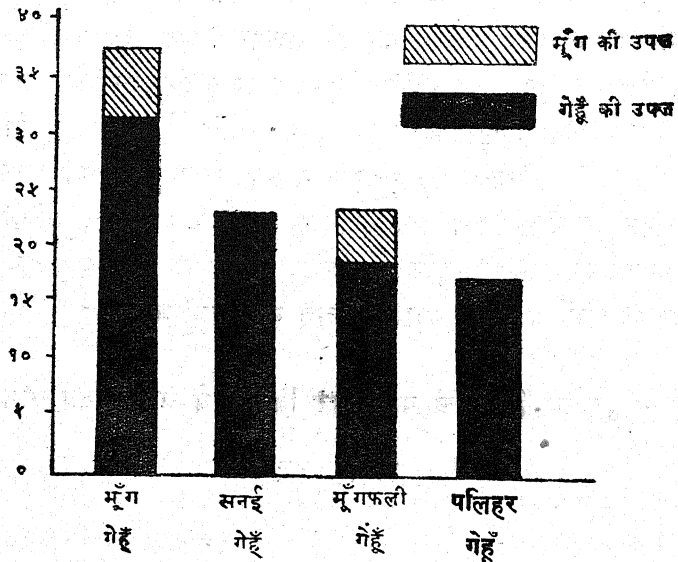
सनई, मूँग, लोबिया यह सब फसलें ऐसे ही खेतों में सफल होती हैं जिनमें पानी न लगता हो। जिन खेतों में पानी लगता है उनमें हरी खाद के लिये ढेंचा का प्रयोग करना चाहिये। ढेंचा का गुण यह है कि एकबार उग आने के बाद चाहे खेत में पानी लगे या न लगे, यह फसल सूखती नहीं। इसीलिये इसका प्रयोग निचली भूमियों विशेषकर धान के खेतों में किया जाता है। ढेंचा की हरी खाद से धान की पैदावार बहुत बढ़ जाती है जैसा कि निम्नलिखित तुलनात्मक आँकड़ों से सिद्ध है। वह आँकड़े १९४६ में पँचपेड़वा और साधूनगर जो गोंडा और बस्ती जिलों में हैं किये गये प्रयोगों के फलस्वरूप प्राप्त हुए हैं। *(पृष्ठ ४१ देखें)

ढेंचा की हरी खाद से दोनों स्थानों के दोनों वर्षों का औसत लेने पर बिना खाद की अपेक्षा २८ प्रतिशत पैदावार में वृद्धि हुई। इतनी वृद्धि केवल अमोनियम सल्फ़ेट खाद देने से सम्भव है। अमोनियम सल्फेट एक कीमती खाद है और लम्बे अर्से तक इसके प्रयोग से भूमि की बनावट के भी बिगड़ने का डर रहता है। इन बातों को ध्यान में रखते हुये ढेंचा की हरी खाद ही सर्वश्रेष्ठ मालूम होती है।

हरी खाद के लिये ढेंचा भी गर्मियों के अन्त में शीघ्र से शीघ्र जब खेत में नमी हो सके तब बो देना चाहिये और बैठोनी (रोपाई) के एक सप्ताह पहिले जोत कर खेत में मिला देना चाहिये।

*(प्रति एकड़ धान की पैदावार)

नं०	पदार्थ	पँचपेड़वा			साधूनगर			औसत पैदावार प्रति एकड़ साधूनगर पँचपेड़वा	बिना खाद की तुलना के अधिक पैदावार
		१९३६	१९३७	औसत पैदावार	१९३६	१९३७	औसत पैदावार		
		मन	मन	मन	मन	मन	मन	मन	
१	ढेंचा	१२	१६	१४	१७	१७	१७	१५.५	१२८
२.	सनई	१०	९	९.५	१८	१६	१७	१३	१०८
३.	गोबर की खाद	९	१२	१०.५	१८	१९	१८.५	१४.५	१२१
४.	अमोनियम सलफेट	१२	१४	१३.०	१८	१९	१८.५	१६	१३३
५.	बिना-खाद के	९	९	९	१६	१५	१५.५	१२	१००

जिस खेत में बैठोनी रोपाई न करना हो उसमें भी ढेंचा की हरी खाद का लाभ उठाया जा सकता है। अगहनी धान को खेत में बोते समय उसमें ५ सेर ढेंचे का बीज प्रति एकड़ मिलाकर बो दिया जाय। धान और ढेंचे दोनों साथ ही उगेंगे। दोनों को एक साथ ४०-५० दिनों तक बढ़ने दिया जाये उसके बाद ढेंचा को उखाड़कर उसी खेत मे दबा दिया जाये। ढेंचा का पौधा शीघ्र सड़कर खाद का काम करता है। ढेंचा का इस प्रकार से प्रयोग करने से धान की पैदावार सवाई बढ़ जाती है। ढेंचा की हरी खाद का प्रयोग ऊँचे खेतों में गन्ने और गेहूँ के लिये भी सनई की तरह किया जा सकता है।

अब तक जितनी भी हरी खाद की फसलों का वर्णन किया गया है, वे सबकी सब खरीफ की फसलें हैं। रबी में यदि हरी खाद तैयार करना हो तो बरसीम का प्रयोग करना चाहिये। बरसीम एक बहुत ही जोरदार दलहन की फसल है। इसमें जितनी वायु से नाइट्रोजन एकत्रित करने की शक्ति है उतनी

शायद ही किसी दूसरी दलहन की फसल में हो । यह काटने पर भी बढ़ती रहती है और आसानी से ४-५ कटाई ली जा सकती है । इन चारों पाँचों कटाई में कुल मिला कर लगभग ६०० मन वानस्पतिक पदार्थ मिलता है जो सनई की फसल की मात्रा का लगभग दूना है । इसलिये बरसीम के हरे चारे का प्रयोग यदि हरी खाद के लिये किया जाये तो एक एकड़ की पैदावार से दो एकड़ भूमि उपजाऊ बनाई जा सकती है और जिस एकड़ में यह पैदा की जायेगी वह भी इसकी जड़ों तथा गिरी-गिराई पत्तियों की सहायता से उपजाऊ हो जायेगा । इस तरह से एक एकड़ बरसीम बोकर तीन एकड़ खेत उपजाऊ बनाया जा सकता है ।

बरसीम की खेती जानवरों के चारे और इसके बीज के लिये बहुधा की जाती है । परन्तु खिलाने के लिये यदि जानवरों की कमी हो और इसका दाना बीज में न भी बिक सके तो भी केवल खाद के लिये ही बरसीम की खेती लाभप्रद होगी ।

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है कि दलहन की फसलों की सफलता के लिये भूमि में फासफेट का होना आवश्यक है । फासफेट की उपस्थिति में दलहन की फसलें बढ़ती भी खूब हैं और उनकी हवा से नाइट्रोजन इकट्ठा करने की शक्ति भी बढ़ जाती है । यह बात उस समय भी लागू है जब दलहन की फसलें हरी खाद के लिये बोई जाती हैं । अतएव जिस भूमि में स्वभाविक रूप में फासफेट की कमी है उसमें सुपर फासफेट मिला कर हरी खाद की फसल बोने से हरी खाद की उपयोगिता बढ़ जाती है ।

बरसीम की हरी खाद का फासफेट देकर और बिना फासफेट दिये शाहजहाँपुर गन्ना रिसर्च फार्म पर प्रयोग हुआ है । इसकी खाद देने पर गन्ने की जो पैदावार मिली, वह निम्नलिखित है ।

बिना खाद	बरसीम बिना फासफेट दी हुई ।	बरसीम १०० पौंड फासफेट प्रति एकड़ देकर बोई हुई ।
३७५ मन	४९८ मन	६४३ मन

बरसीम के इस प्रयोग में तीन कटाई में ४०० मन हरा चारा लेने के बाद जोता गया । यदि इस ४०० मन हरे चारे की कम्पोस्ट खाद बनाकर उसी खेत में डाल दी गई होती तो निःसन्देह पैदावार और बढ़ गई होती ।

बरसीम की ही तरह एक और उपयोगी घास का पता चला है । इसका नाम 'हूबम क्लोवर' है । यह अक्टूबर या नवम्बर में बोई जाती है । इसकी जड़ें भूमि के अन्दर बहुत नीचे तक चली जाती हैं, इसलिये इसको सिंचाई की उतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी कि बरसीम को होती है । लेखक ने इसे अपने निजी फ़ार्म पर, बिना सिंचाई के जड़हन के खेतों में पैदा किया है । बोवाई के समय यदि उगने भर को नमी हो तो यह घास जड़हन

गया है एक आदमी के एक साल के मलमूत्र म लगभग १२ पौंड नाइट्रोजन होती है जो करीब २ या २½ गाड़ी गोबर की खाद के बराबर हो गयी। यह पहिले बताया जा चुका है कि एक गाड़ी गोबर की खाद खेत में पड़कर कम से कम १५) की पैदावार बढ़ा देती है। इस प्रकार से प्रति व्यक्ति ३७॥) सालाना की पैदावार बढ़ाई जा सकती है और गाँव भी बीमारी से सुरक्षित रह सकते हैं, यदि कोई उपाय ऐसा काम में लाया जावे जिससे मैले पर मक्खी न बैठे और यह तुरन्त ही जमीन के अन्दर दबा दिया जावे।

इसका सब से सरल उपाय यह हो सकता है कि किसान जब बाहर खेतों में जावें तो एक छोटी सी खुरपी भी साथ लेते जावें जिससे ४ इंच गहरा गड्ढा खोद लें और मैले को तुरन्त ही मिट्टी से ढक दें। चीन में किसान सड़कों के किनारे छोटी-छोटी टट्टी इस मतलब से बना देते हैं कि राह चलनेवालों की आवश्यकता भी पूरी होती रहे और उनके खेत भी उपजाऊ होते रहें। यहाँ कुछ धार्मिक विचारों के कारण लोग इस किस्म की टट्टी बनाना पसन्द नहीं करेंगे लेकिन मैले को तुरन्त मिट्टी से दबा देना बहुत ही आसान उपाय है जिसे प्रत्येक किसान कर सकता है और अपने गाँव को संक्रामक रोगों से भी बचा सकता है और फसल की पैदावार भी बढ़ा सकता है।

मैले की खाद से पैदावार बढ़ाने का साफ़ और सस्ता तरीक़ा

* (पृष्ठ ४५ देखें)
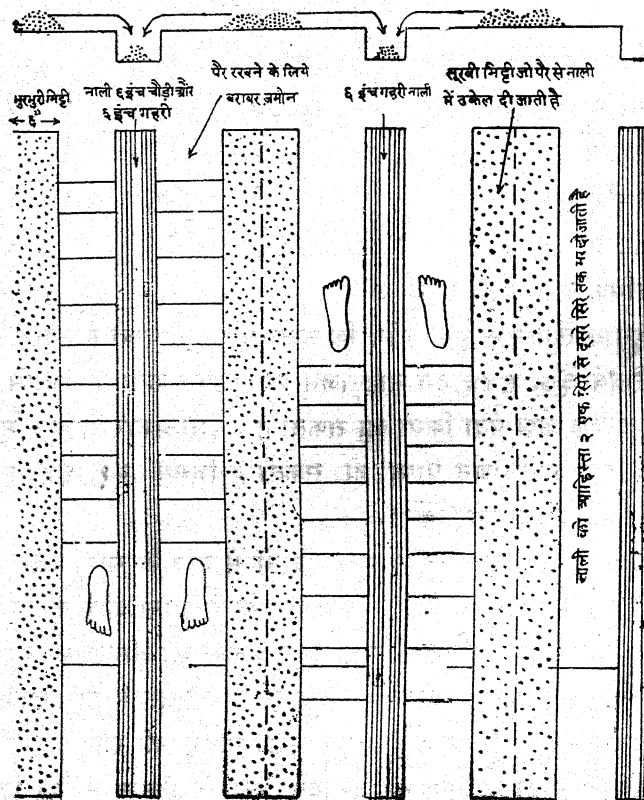
के किनारे-किनारे ३-४ इंच की चौड़ाई में लगा दी जाती है। नाली के सिरे पर पहियेदार टट्टी रख दी जाती है और दिन प्रति दिन प्रयोग के बाद आगे बढ़ाई जाती है।

यह टट्टी हल्की लकड़ी की बनी होती है और इसकी दीवारें और दरवाजे टाट या चटाई के बनाये जाते हैं जिससे कि कुल टट्टी का वज़न भारी न हो। टट्टी के भीतर बैठने के लिये एक फुट के दो तख्ते जड़े रहते हैं जिनके बीच की दूरी ६ इंच की होती है। सामने दरवाजे की ओर दो कुंडे लगे रहते हैं जिसमें से टट्टी खैंचने के लिये रस्सी बँधी रहती है। पिछली पहियों की तरफ डेढ़ फुट लम्बाई के दो खड़े तख्ते इस प्रकार गड़े रहते हैं कि उनके खाली सिरे एक दूसरे से ४ इंच दूर हों। इन तख्तों के नीचे लोहे की पत्तियाँ जड़ी रहती हैं। टट्टी की शेष बनावट तथा नाप चित्र से ही स्पष्ट है।

शुरू में दिये गये आँकड़ों से यह देखा जायगा कि मल से मूत्र में नाइट्रोजन लगभग ६ गुना होता है। इसलिये यदि केवल मूत्र को ही सुरक्षित करके खाद की तरह प्रयोग किया जाये तो मनुष्य द्वारा त्यागे गये नाइट्रोजन का बहुत बड़ा अंश काम में आ जायगा। मूत्र की खाद बनाने का एक बहुत ही सरल उपाय है। एक मिट्टी या टिन के बर्तन में नीचे दिखाये गये आकार की नली लगाकर बर्तन को बलुई मिट्टी, बुरादा या धान की भूसी से भर देना चाहिये।
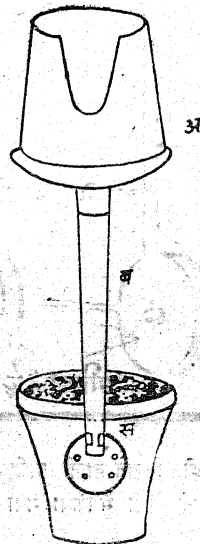
नली के नीचे के सिरे के पास रुई का एक प्लग सा लगा दिया जाता है जिससे कि नली में मिट्टी या बुरादा इत्यादि भर न जाये और मूत्र आसानी से निकलता रहे। चूँकि मूत्र मिट्टी की सतह के नीचे निकलता है, इसलिये जब तक कि कई दिनों तक प्रयोग न किया जाये तब तक ऊपर की सतह बिलकुल सूखी

भी गड्ढों में जलकुम्भी का बढ़ने देना हानिकर है। ताल गड्ढों में ही मच्छर अंडे बच्चे देते हैं। इन्हें तालाबों में रहनेवाली छोटी छोटी मछलियाँ काफी संख्या में खा जाया करती हैं। परन्तु जिस गड्ढे में जलकुम्भी लग जाती है उसमें मछलियों का निर्वाह नहीं हो सकता और वे मर जाती हैं। मछलियों की अनुपस्थिति में मच्छरों की वृद्धि बड़ी तेजी से होती है और गाँव में मलेरिया फैलने का डर रहता है। जाड़े की शीत और गर्मियों की लू से भी कुछ मच्छर मर जाते हैं, परन्तु यदि गाँव के गड्ढों में जलकुम्भी होती है तो मच्छर उसी में शरण लेकर बच जाते हैं। इसलिये गाँव के स्वास्थ्य की दृष्टि से भी जितनी भी जलकुम्भी हो उसे निकालकर उसका खाद बना लेना खेती तथा स्वास्थ्य दोनों के लिये लाभप्रद है।

बड़ी-बड़ी झीलों में जलकुम्भी के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के खरपतवार उपजते हैं। यह हर साल सड़कर झीलों के नीचे भूमि की सतह पर तह की तह एकत्रित होते रहते हैं। यह क्रिया सैकड़ों हजारों वर्षों से होती आई है जिसके फलस्वरूप कुछ झीलों में काफी मोटी (६ इंच से १२ इंच तक) तह सड़े और अधसड़े वानस्पतिक पदार्थों की एकत्रित हो गई है। गर्मी के दिनों में जब झील सूख जावे तो इस तह को निकालकर खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। खेत में डालने के पहले यदि इसे वर्षाऋतु में कम्पोस्ट के गड्ढों में भर रक्खा जाये तो बहुत ही अच्छी पूर्णरूप से सड़ी हुई खाद तैयार हो जाती है और खरपतवार के बीज जो इसमें मिले रहते हैं वह भी कम्पोस्ट के गड्ढों की गरमी पाकर नष्ट हो जाते हैं।

झील की खाद का प्रयोग पहलेपहल हमनें अपने निजी फार्म पर किया।

इस खाद का इतना अच्छा नतीजा हुआ कि इसे हमने जाँच के लिये प्रान्त के तीन प्रमुख रासायनिकों के पास भेजा। जब उनकी जाँच का फल आया तो हम लोग चकित हो गये। तीनों ने जो नतीजे भेजे उनके अनुसार खाद में .६५७, १.०४ व १.०१६ प्रतिशत नाइट्रोजन पाया गया। अर्थात् इस ताल की खाद में जिसकी जाँच कराई गई थी औसतन १ प्रतिशत नाइट्रोजन पाया गया। स्मरण रहे कि बढ़िया से बढ़िया गोबर की खाद में भी ०.५ प्रतिशत से अधिक नाइट्रोजन नहीं होता। पहला नतीजा हम लोगों के पास जब आया तो हमें विश्वास ही नहीं हुआ कि खाद इतनी अच्छी हो सकती है। परन्तु जब इसके बाद और दो नतीजों से उसी बात की पुष्टि हुई तो सोचना पड़ा कि आखिर इस ताल के खरपतवार की खाद में गोबर की खाद तथा कम्पोस्ट से अधिक नाइट्रोजन कहाँ से आया है?

वास्तव में बात यह है कि ताल की खाद पानी में पैदा होनेवाले खरपतवार से बनती है। हर साल ताल में खरपतवार पैदा होता है जो सड़सड़कर उसकी तह में बैठता रहता है। इस प्रकार से सड़ा हुआ कई वर्षों का वानस्पतिक

एकड़ उपज बढ़ने से ही नहीं हुई है। कुछ तो पैदावार प्रति एकड़ बढ़ी और कुछ खाद की ताकत से खेत एक फस्ली से दो फस्ली कर लिये गये। उदाहरण के लिये जब खाद की कमी थी तो गन्ना बोने के पहले सनई हरी खाद के लिये बोई जाती थी। इसी प्रकार से क्वारी धान के बाद में चना या मटर बोना पड़ता था, परन्तु खाद पर्याप्त मात्रा में होने के कारण क्वारी धान के बाद गेहूँ की फसल ली गई और गन्ने के पहले सनई न जोत कर दूसरी फस्लें ली गईं। इस प्रकार फार्म का रकबा बढ़े बिना ही फस्लों का रकबा बढ़ गया और कुल पैदावार तीन से चार गुना तक बढ़ गई।

मैंने पहलेपहल जब इस खाद को झील में से निकलवाया था तो उस समय पड़ोस के किसानों ने मेरा मजाक उड़ाया था, परन्तु आज वही किसान मेरे फार्म पर इस खाद की उपयोगिता के लगभग १० वर्ष के प्रदर्शन के बाद इतनी तत्परता से खाद को ताल में से निकालते हैं कि इसे इकट्ठा करने की होड़ सी लगी रहती है और जो किसान तेजी नहीं करता, उसे बहुत कम खाद मिल पाती है। इस साल कम से कम ५०,००० गाड़ी खाद ताल के निकटवर्ती किसानों ने अपने-अपने खेतों में डाला होगा। इतनी बड़ी मात्रा में कम्पोस्ट खाद का प्रयोग शायद ही कहीं और होता हो। मेरे फार्म के निकटवर्ती ताल 'लेंवड़ताल' में ही कोई विशेषता नहीं है; अन्य बड़े तालों में से भी इस प्रकार की खाद निकाली जा सकती है। दो एक अन्य तालों में से लोगों ने खाद निकालना शुरू भी कर दिया है। हमारे उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में बड़ी-बड़ी झीलों की कमी नहीं है। जिन किसानों के निकट बड़ी झीलें हों उन्हें चाहिए कि इस खाद का अधिक से अधिक प्रयोग करें।

खलियों की खाद

सभी तेलहन की खलियों में थोड़ी बहुत मात्रा में नाइट्रोजन होती है। इसलिये इनका प्रयोग खाद के रूप में किया जाता है। भिन्न-भिन्न खलियों में पोषक तत्त्व कितनी मात्रा में पाये जाते हैं वह नीचे की तालिका से जाना जा सकता है:—

नाम खली	शतांश नाइट्रोजन	शतांश फासफोरस	शतांश पोटाश
१. मूँगफली	७.६	२.३	२.२
२. सरसों	६.५	१.०	१.४
३. कुसुम	५.८	१.३	१.२
४. अलसी	५.७	१.६	१.६
५. तिल	५.०	१.१	१.०
६. रामतिल्ली	४.५	२.०	१.९
७. नारियल	३.७	१.९	१.८

केवल चावल किसान को बेचना चाहिये। खली और भूसी खेतों में पहुँचनी चाहिये।

इस विषय में यह बतला देना आवश्यक है कि नीम का पेड़ देहात के लिये एक अत्यन्त लाभदायक पेड़ है। यदि सावधानी से इसका फल और बीज इकट्ठा किया जावे और बीज से तेल निकाला जावे तो किसान को करीब १२) प्रति मन निबोली (नीम का बीज) से लाभ हो सकता है और उसके खेत भी खली के प्रयोग से उपजाऊ हो जायेंगे। जहाँ तक हो सके नीम और महुये के वृक्ष अधिक संख्या में गाँवों में प्रत्येक किसान को लगाने चाहिये।

हड्डी की खाद

यह बहुत ही उपयोगी खाद है। इसमें बहुत सा फ़ासफ़ोरस और काफ़ी नाइट्रोजन होता है। यह इतनी अच्छी खाद है कि हर साल हजारों मन हड्डियाँ जहाजों पर लदकर भारतवर्ष से दूसरे देशों को जाती हैं। किन्तु यहाँ के किसान इसका मूल्य बिलकुल नहीं जानते हैं और जो जानते भी हैं वे धार्मिक विचारों के कारण हड्डी छू भी नहीं सकते हैं। परन्तु यह उनकी नासमझी है। इसको इकट्ठा कराकर और पिसवाकर खेतों में डालना चाहिए। उत्तरी भारतवर्ष की भूमि में लगातार फ़सलों के बोने से भूमि में दो तत्त्वों की कमी हो गई है। यानी नाइ-ट्रोजन और फ़ासफोरस। नाइट्रोजन को पूरा करने के लिए हरी खाद व गोबर इत्यादि की खाद दी जाती है और फ़ासफोरस देनेवाली खाद बहुधा हड्डी से बनाई जाती है, जैसे बोन सुपर फोसफेट (तेजाब में पकाई हुई हड्डी) व बोन-मील (हड्डी का चूरा) इत्यादि। कुछ फ़ासफोरस देनेवाली खादें खनिज पदार्थों और कारखानों से निकले हुये मैल इत्यादि से भी तैयार की जाती हैं। बोन सुपर फोसफेट की कीमत बाजारों में मँहगी होती है। किसान गरीबी के कारण इन खादों का प्रयोग नहीं कर सकते हैं।

एक सरल उपाय किसानों के लाभ के लिये मालूम किया गया है जिसका प्रयोग सरकारी फ़ार्म गोरखपुर पर लेखक ने किया था। हड्डी की खाद हमेशा पिसी हुई हालत में खेत में डाली जाती है। इसकी पिसाई ही सबसे कठिन है। देहात में चमार हड्डियाँ जमा करके उसको रेलवे स्टेशन पर या देहात की ठेकियों पर बेचने को ले जाते हैं जहाँ इनको थोड़ा दाम मिलता है। गाँव में हड्डी बहुत सस्ती मिल सकती है। मामूली हड्डी की पिसाई आसान नहीं है इसलिये उपर्युक्त फ़ार्म पर इसको जलाकर पीसा गया। इसमें सन्देह नहीं है कि जलाने से हड्डी का अधिक नाइट्रोजन निकल जाता है इसलिये नाइट्रोजन को बचाने के लिये आधी जली हुई हड्डी पीसी जाती है। जलाते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि हड्डी बिलकुल न जल जावे। निम्नलिखित नियम से हड्डी जलानी चाहिये।

जिस प्रकार लकड़ी का कोयला बनाया जाता है उसी तरह से हड्डी को

स्फुर पूरक खादों में कठिनाई यह होती है कि मिट्टी में मिलने के साथ ही स्फुर अंश मिट्टी के कुछ अंशों में मिलकर एक ऐसा रूप धारण कर लेता है जो पानी में घुल न सके। जो भी खाद्य पदार्थ पानी में घुल नहीं सकता वह पौदों के लिये बेकार हो जाता है, क्योंकि उनमें यह शक्ति नहीं होती कि वे किसी भी स्थूल पदार्थ का प्रयोग कर सकें। पौधे, अपनी पोषक वस्तुवों का प्रयोग केवल घोल के ही रूप मे कर सकते हैं, इसलिये यह सम्भव है कि हम चाहे जितना भी स्फुर भूमि में मिलावें वह सबका सब ऐसा रूप धारण कर ले जो पौधों के लिये बेकार हो जाये। सम्भवतः यही कारण हैं कि इस प्रान्त के किये गये प्रयोगों में स्फुरपूरक खाद देने का फसलों की पैदावार पर कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई देता।

भूमि में स्फुर के होते हुये भी इसका अप्राप्य होना एक ऐसी कठिनाई थी कि जिसका संतोषजनक हल अभी तक नहीं मिला था। परन्तु अब दो दिशाओं से कुछ आशा बँध रही है कि इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है।

अमेरिका में किये गये अनुसन्धानों से यह पता चलता है कि यदि स्फुर-पूरक खाद को वानस्पतिक खादों के साथ मिलाकर दिया जाये तो स्फुर फसलों के लिये अप्राप्य नहीं होता। इसका कारण यह है कि जब वानस्पतिक पदार्थ भूमि में सड़ता है तो उनमें से कई तेजाब उत्पन्न होते हैं। ये तेजाब भी भूमि के उन्हीं अंशों पर हमला करते हैं जिनसे मिलकर स्फुर ऐसा रूप धारण कर लेता है जो घुल न सके। इन वानस्पतिक तेजाबों और स्फुर तेजाबों में एक होड़ सी होती हैं कि कौन भूमि के उस अंश को पकड़ ले जिनसे न घुलनेवाले पदार्थ बनते हैं। परन्तु इस होड़ में वानस्पतिक तेजाब बाजी मार ले जाते हैं और स्फुर तेजाब के लिये वह अंश बचता ही नहीं जिससे मिलकर वह न घुलनेवाली वस्तु बन सके। इस प्रकार से स्फुर खाद्य पदार्थ घुलनेवाले ही रूप में रह जाता है। अतएव स्फुरपूरक खादों को वानस्पतिक खादें जैसे कम्पोस्ट, गोबर या हरी खाद के साथ मिलाकर देना चाहिए।

दूसरी विधि जिससे स्फुर खादों के लिये कुछ आशा दिखाई दे रही है वह है इन खादों का पौधों की जड़ों के निकट ही दिया जाना। पिछले दो सालों में कुछ प्रयोग किये गये हैं जिनमें स्फुर खादें भूमि के ३ से ४ इंच नीचे दी गईं। इस प्रकार से भूमि के अन्दर के खादों के दिये जाने पर पैदावार में दर्शनीय वृद्धि हुई है। भूमि के नीचे खाद देने का उपाय यह है कि हल के पीछे कूँड़ में खाद डाल दी जाये। यदि गहरे हल न हों तो एक के पीछे दूसरा देसी हल चला कर गहरी कूँड़ बना लेनी चाहिये।

यदि ऊपर बताये हुये दोनों विधियों को मिला दिया जाय यानी स्फुरपूरक खाद को वानस्पतिक खादों के साथ मिलाकर भूमि के नीचे दी जाये तो नतीजे सम्भवतः और भी अच्छे होंगे।

के ३ या चार महीने पहिले पड़ जावे तो यह भूमि में अच्छी तरह सड़कर मिल जाती है। इसका पूरा असर तभी होता है जब कि यह गन्ने की फसल बोने के कम से कम ४ माह पहिले डाल दी जावे। इसको अधिक मात्रा में डालना पड़ता है और इसकी ढुलाई का खर्च बहुत अधिक हो जाता है। यह शकर के कारखानों के बिलकुल निकटवाले खेतों में यदि सस्ते दामों में मिल सके तो प्रयोग में लाई जा सकती है। ऊसर भूमियों में भी शीरे की खाद का बहुत अच्छा असर होता है।

प्रेस मड—शकर के कारखानों से जो गन्ने की मैले रस से छनकर निकलती है उसे प्रेसमड कहते हैं। रस में से मैल निकालने के लिये जिन कारखानों में सल्फ़िटेशन विधि का प्रयोग होता है उनमें से निकली हुई प्रेसमड का प्रयोग खाद के रूप में हो सकता है। प्रायः कारखाने के मालिक इसे सस्ते दामों में बेच देते हैं। इसमें नाइट्रोजन का अंश १ प्रतिशत होता है अर्थात् गोबर की खाद की तुलना में यह दुगना जोरदार होता है। किसान जब गन्ना बेचने मिल को जाते हैं तो लौटते समय अपनी गाड़ी पर यह खाद ला सकते हैं। इस तरह से इसकी ढुलाई में अधिक कठिनाई न होगी। फसल बोने के लगभग ३ मास पहिले इसे खेतों में डाल देना चाहिए। इस खाद का ६ गाड़ी प्रति एकड़ से अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिये।

बनावटी खाद

साधारणतया यह बात यहाँ के किसानों को ज्ञात नहीं है कि बनावटी खाद किसी न किसी रूप में इस देश में बहुत दिनों से प्रयोग होती आई है। लोना मिट्टी जो पुरानी दीवालों के नीचे प्रायः जमा हो जाती है तम्बाकू, सावाँ और आलू की खेती के लिये बहुत दिनों से इस्तेमाल की जाती है। इसमें उम्दा खाद पोटाशियम नाइट्रेट का बहुत बड़ा भाग होता है। १२५ वर्ष पहिले शोरा भारतवर्ष में बहुत तैयार होता था और इस मुल्क से लगभग एक लाख मन २५ से ३० लाख रुपये का शोरा दूसरे मुल्कों को भेजा जाता था। आजकल भी शोरा काफी मात्रा में बनता है, किन्तु इसका प्रयोग अब अधिकतर इस देश में चाय के खेतों में होता है। जर्मनी में बहुत बड़ी और सस्ती शोरे की खान मिल गई है।। भारतवर्ष के शोरे की, जिसे लोनिया बनाकर बेचते थे, बाहरी देशों में इतनी माँग नहीं रह गई। और इससे सस्ती और अच्छी खाद सलफेट आफ अमोनिया और नाइट्रेट आफ सोडा बाहर से आने लगी हैं। ये खादें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इनका प्रयोग इस देश में तेजी के साथ बढ़ रहा है। रेंडी की खली के साथ अमोनिया सलफेट बराबर-बराबर मिलाकर ४) फी एकड़ के हिसाब से गन्ने के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। इस खाद को गन्ने में जून के महीने में सिंचाई या बरसात के पहिले देना सबसे अधिक लाभ-

भूमि से अधिक से अधिक उपज नहीं ली जा सकती। परन्तु रासायनिक खादों के विरोधियों का मत है कि इन खादों के निरन्तर प्रयोग से भूमि, पशु तथा मनुष्य सभी का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और पैदावार बढ़ने के बजाय घटने लगती है। इस वाद-विवाद के दोनों पहलुओं को समझना किसानों के लिए लाभकर होगा।

पौधों का बढ़ाव कई बातों पर निर्भर है। उनमें से जलवायु, नमी, भूमि में पौष्टिक तत्त्वों की प्रचुरता, भूमि में तेजाबी अंश कम-ज्यादा होना तथा भूमि की बनावट मुख्य है। इन पर एक-एक करके विचार करना चाहिये और देखना चाहिये कि रासायनिक या प्रांगारिक खादों के प्रयोग का क्या असर होता है।

जलवायु––जलवायु का पौधों के बढ़ाव पर सम्भवतः सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। मनुष्य इसे अभी बदलने में सफल नहीं हो सका है, परन्तु इसकी कठोरता को प्रांगारिक खादों के अधिक प्रयोग से हम कम कर सकते हैं। यदि भूमि में ह्यूमस का अंश अधिक हो तो वह भूमि के ऊपर एक प्रकार से कम्बल का काम करता है। और जिस प्रकार कम्बल के नीचे जाड़े-गर्मी का कम-असर होता है उसी प्रकार उस भूमि में जिसमें ह्यूमस अधिक हो उस पर जाड़े का कम असर होता है और पौधे एक गति से बढ़ते रहते हैं। रासायनिक खादों के प्रयोग से ऐसा कोई लाभ नहीं होता और अत्यधिक जाड़े और गर्मी दोनों से पौधों को हानि पहुँचती है।

नमी––पौधों को जीवित रहने के लिये नमी की सदैव आवश्यकता रहती है। पानी कभी-कभी बरसता है या कृत्रिम उपायों से खेत को हम एक-दो बार सींचते हैं। यदि भूमि में नमी रोकने की शक्ति न हो तो खेत बारिश या सिंचाई के बाद शीघ्र ही सूख जायें और पौधे मरने लगें। इस लिये यह आवश्यक है कि भूमि में अधिक नमी रोकने की शक्ति हो।

भूमि में नमी रोकने की शक्ति उसकी बनावट पर निर्भर है, मटियार भूमि में बलुई की अपेक्षा ज्यादा दिनों तक नमी बनी रहती है। जिस भूमि में सड़ा हुआ प्रांगारिक पदार्थ या ह्यूमस अधिक होता है उसमें भी नमी अधिक दिनों तक ठहरती है। इसके विषय में सर जान रसेल द्वारा किये हुये प्रयोगों का फल पृष्ठ २२ पर चित्रित किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रांगारिक खादों के अधिकाधिक प्रयोग से हम खेत में नमी रोकने की शक्ति बढ़ा सकते हैं। रासायनिक खादों के प्रयोग से भूमि की नमी रोकने में कोई सहायता नहीं मिलती।

भूमि में पौष्टिक तत्त्वों की प्रचुरता—जहाँ तक भूमि में नाइट्रोजन पहुंचाने का प्रश्न है इसमें सन्देह नहीं कि रासायनिक खादों द्वारा यह कार्य बड़ी सुगमता से किया जा सकता है। परन्तु पौधों को नाइट्रोजन के अतिरिक्त अन्य तत्त्वों की भी आवश्यकता होती है। शुरू-शुरू में जब रासायनिक खाद का प्रयोग

बिना पैसे की सहायता को खोकर उसकी कमी को केवल अमोनियम सलफेट खाद डालकर पूरा करना कहाँ तक बुद्धिमानी है।

भूमि की बनावट:—भूमि की बनावट ऐसी होनी चाहिये कि उसमें हवा का प्रवेश आसानी से हो सके, नमी अधिक दिनों तक स्थिर रह सके और जोताई-गोड़ाई का काम आसानी से हो सके। जहाँ तक नमी रोकने का प्रश्न है, हम यह देख चुके हैं कि प्रांगारिक खादों के प्रयोग से भूमि में नमी रोकने की शक्ति बढ़ जाती है, इन खादों के प्रयोग से मटियार भूमि मुलायम और भुरभुरी बनती है और बलुई भूमि भारी हो जाती है। किसी भी प्रकार की भूमि में प्रांगारिक खाद का प्रयोग किया जाये तो उसकी बनावट सुधरती है। इसके विपरीत रासायनिक खादों के प्रयोग से ह्यूमस की कमी से दिन प्रतिदिन खेत की बनावट बिगड़ती ही जाती है।

यह भी कहा जाता है कि रासायनिक खादों के प्रयोग से जो फसलें पैदा होती हैं, उनमें पौष्टिक तत्त्वों की कमी रहती है और उनके खाने से पशु तथा मनुष्य दोनों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। यह प्रश्न मनुष्य जाति के लिये बहुत ही महत्त्व का है, परन्तु जो प्रयोग अब तक हुये हैं, उनसे कोई अन्तिम निष्कर्ष निकालना ठीक न होगा। वास्तव में यह प्रश्न स्वास्थ्य-विभाग से सम्बन्धित है और जब तक इसका कोई अन्तिम निर्णय न निकल पावे, तब तक किसान को इससे उलझने की कोई आवश्यकता नहीं है।

परन्तु यदि स्वास्थ्य-सम्बन्धी पहलू पर हम विचार न भी करें तो भी हम देखेंगे कि रासायनिक खादों के प्रयोग से खेत की बनावट बिगड़ जाती है। उसमें नमी रोकने की शक्ति कम हो जाती है, उसमें तेजाब का अंश बढ़ जाता है और नाइट्रोजन के अतिरिक्त अन्य तत्त्वों का शीघ्रता से ह्रास हो जाता है और वे पौधों के लिये अप्राप्य हो जाते हैं। इस सभी का पैदावार पर बुरा असर पड़ता है। कुछ लम्बे अर्से के प्रयोग से यह सिद्ध भी हुआ है। यहाँ हम तीन ऐसे प्रयोगों का वर्णन करेंगे।

१. लम्बे अर्से तक शाहजहाँपुर में गन्ने पर अमोनियम सलफेट प्रयोग करने का असर:—

इस प्रयोग में गन्ने की काश्त के बाद अठवांस और अठवांस के बाद फिर गन्ना लिया गया। इस प्रकार से यह क्रम १५ वर्षों तक चलता रहा। प्रति वर्ष जो पैदावार नाइट्रोजन अमोनियम सल्फेट के रूप में भिन्न-भिन्न स्तर पर दिये जाने से हुई, वह आगे के पृष्ठ पर दी जाती है।

लेकर १६२६,३० तक मक्का जई मक्का अरहर का हेरफेर और १६३०,३१ से १६४३,४४ तक मक्का जौ मक्का अरहर मक्का गेहूँ मक्का मटर, का हेरफेर रक्खा गया। निम्नलिखित आँकड़ों में कुल पैदावार जोड़कर रक्खी गई है।

पैदावार प्रति एकड़ मनों में

१६०८,०६ से १६२६,३० तक कुल पैदावार		१६३०,३१ से १६४३,४४ तक कुल पैदावार	
१. बिना खाद	७१२.२	बिना खाद	२६३.५
२. गोबर की खाद २० पौंड नाइट्रोजन	६६५.०	गोबर की खाद ४० पौंड नाइट्रोजन	६६४.०
३. गोबर की खाद ३० पौंड नाइट्रोजन	१०३४.४	अमोनियम सलफेट ४० पौंड नाइट्रोजन	२४६.५
४. अमोनियम सलफेट २० पौंड नाइट्रोजन	६४४.३	रासायनिक खादों का मिश्रण ४० पौंड नाइट्रोजन, ८० पौंड फासफेट, ५० पौंड पोटाश।	५६४.३
५. रासायनिक खादों का मिश्रण (नाइट्रोजन फासफेट और पोटाश नं० ३ के आधार पर)	१०२१.०		

ऊपर के आंकड़ों से हम देखेंगे कि केवल अमोनियम सलफेट खाद निरन्तर २१ वर्ष देने से पैदावार बिना खादवाले खेत से भी कम होती है। केवल रासायनिक खादों के पूर्ण मिश्रण को देने से ही पैदावार स्थिर रखी जा सकती है, परन्तु ऐसा करने पर भी हम देखेंगे कि १६३०,३१ से १६४३,४४ के बीच पैदावार गोबर की खाद की तुलना में कम हुई। इन प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि केवल अमोनियम सलफेट के लम्बे अर्से तक खेत में डालने से पैदावार उतनी भी नहीं होती जितनी कि उन्हीं खेतों से उसी अर्से में बिना किसी खाद के ली जा सकती है।

३. इसी प्रकार का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रयोग राथेम्स्टेड में हुआ। कुछ खेत के टुकड़ों में १८५२ से लगातार गेहूँ बोया गया। भिन्न-भिन्न टुकड़ों में भिन्न-भिन्न खादें दी गईं। एक टुकड़ा ऐसा भी रक्खा गया जिसे कोई खाद नहीं दी गई। ७० वर्षों तक इन टुकड़ों में जो पैदावार हुई उसे जोड़कर जो औसत निकला उसका फल निम्नलिखित है।

१. बिना खाद वाले टुकड़े की औसत पैदावार	१३ बुशल
२. सलफेट आफ अमोनियमवाले टुकड़े	२१ ,,
३. रासायनिक खादों के मिश्रणवाले	३१ ,,
४. गोबर की खाद	३६ ,,

प्रांगारिक खादों की उत्तमता इन आंकड़ों से भी सिद्ध होती है।

	बिना नाइट्रोजन		१०० पौंड नाइट्रोजन		२०० पौंड नाइट्रोजन	
१९३५,३६	५९२		८९९		८६२	
१९३६,३७	३५१		६२६		७९२	
१९३७,३८	३७१	४९२.६	७९६	८१६.२	७८३	८३४.८
१९३८,३९	५५०		८९६		८४५	
१९३९,४०	५९९		८६४		८९२	
१९४०,४१	३७४		५०५		६१६	
१९४१,४२	२७१		५५६		६६१	
१९४२,४३	४४०		९३०		९९७	
१९४३,४४	४२४		६४५		६२९	
१९४४,४५	४०१		७००		७७७	
१९४५,४६	४६४		४८६		५७८	
१९४६,४७	२६३		४४९		४९५	
१९४७,४८	३८३	३३५.२	४९०	४६६.६	४९८	५००.४
१९४८,४९	२९३		४८४		५०६	
१९४९,५०	२७३		४२४		४२५	

इन आँकड़ों से दो नतीजे निकलते हैं:—

(अ) अमोनियम सलफेट के लगातार प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति इतनी कम हो गई कि १०० पाउन्ड नाइट्रोजन के स्तर पर अंतिम ५ वर्षों में पैदावार घटकर उतनी भी नहीं रह गयी जितनी कि प्रथम ५ वर्षों में बिना खाद के पैदावार हुई थी। २०० पाउन्ड के स्तर पर भी बिना खाद के प्रथम ५ वर्षों की पैदावार की तुलना में केवल ७, ८ मन प्रति एकड़ अधिक पैदा हुई।

(ब) यदि प्रथम ५ वर्षों की औसत पैदावार का अन्तिम ५ वर्षों की पैदावार से तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि जिस टुकड़े में कुछ भी खाद नहीं दी गयी उसकी उर्वरा शक्ति का ह्रास ३१.९ प्रतिशत हुआ है जब कि १०० पाउन्ड और २०० पाउन्ड स्तर पर ४२.८ प्रतिशत और ४०.० प्रतिशत हुआ है। गन्ने के बाद गन्ना लेना खेत को बहुत ही कमजोर बना देता है। फिर भी उस खेत में जिसमें कोई खाद नहीं दी गयी उसमें अमोनियम सलफेट दिये हुये खेतों की अपेक्षा पैदावार की गिरावट कम है।

(२) दूसरा बहुत ही लम्बे अर्से का प्रयोग पूसा में हुआ। १९०८,९ से लेकर १९४३,४४ तक भिन्न-भिन्न प्रकार की खादों का पूसा की भूमि पर प्रभाव देखा गया। इनमें से हम यहाँ केवल बिना खाद, गोबर की खाद, अमोनियम सलफेट तथा रासायनिक खादों के मिश्रण से प्राप्त पैदावार के ही आँकड़े उद्धृत करेंगे। इन प्रयोगों में दो प्रकार के फसलों के हेरफेर रक्खे गये। १९०८,९ से

दायक सिद्ध हुआ है। सोडा नाइट्रेट अपना गुण बहुत ही शीघ्र दिखाता है। इसको खेत में डालने से दो या तीन दिन के बाद पत्तों का रंग हरा हो जाता है। इस खाद को देने का सबसे अच्छा समय वह है जब कि पौधे कुछ बढ़ जावें ताकि सारी खाद का ठीक प्रयोग तुरन्त ही कर सकें। इस खाद को डालने के पश्चात् सिंचाई कर देना बहुत आवश्यक है ताकि वह पानी में घुलकर पौधों की जड़ों में होकर पौधे के अन्दर तुरन्त पहुँच जावे। इसमें नाइट्रोजन का परता लगभग १६ प्रतिशत के होता है यानी १ ʃ नाइट्रेट आफ सोडा में लगभग २½ गाड़ी गोबर की खाद के बराबर नाइट्रोजन होता है जो कि पौधे की असली खुराक है। सोडा नाइट्रेट को मटियार, ऊसर की आसपासवाली भूमियों में कभी न डालना चाहिये। अमोनिया सलफेट का प्रभाव इतना शीघ्र नहीं होता जितना सोडियम नाइट्रेट का। किन्तु यह भूमियों में अधिक देर ठहरती है और उतनी जल्दी से घुलकर बह नहीं जाती। इसको मटियार भूमियों में और ऊसर के आसपास के खेतों में भी काम में ला सकते हैं। धान के खेतों में अमोनियम सलफेट का प्रभाव बहुत गुणकारक होता है। इसमें २०.६ प्रतिशत नाइट्रोजन होता है यानी १ ʃ अमोनियम सलफेट में करीब ३ गाड़ी गोबर की खाद के समान प्रभाव रहता है। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि १॥ ʃ प्रति एकड़ अमोनियम सलफेट की खाद डालने से धान की पैदावार लगभग चार मन प्रति एकड़ बढ़ जाती है। यह भी एक मानी हुई बात है कि अमोनियम सलफेट उसी समय गुणकारक होता है जब कि खेत के अन्दर वानस्पतिक भाग भी बहुत परिमाण में मौजूद हो। किसान को केवल बनावटी खादों के भरोसे कभी नहीं रहना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से उसके खेतों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इसका विस्तार से वर्णन आगे किया जायेगा।

खादों का प्रयोग

यह पहिले बताया जा चुका है कि पौधे अपने लिये नाइट्रोजन भूमि से अमोनियम और नाइट्रेट के रूप में लेते हैं। यदि ऐसा है तो रासायनिक खादें जैसे अमोनियम सलफेट या अमोनियम नाइट्रेट फसलों में देने से निःसन्देह लाभ होना चाहिये। बहुत हद तक ऐसा है भी, रासायनिक खाद के खेत में पड़ते ही पौधों का रंग गहरा हरा हो जाता है और वे बहुत शीघ्रता से बढ़ने लगते हैं। यदि पौधों को केवल नाइट्रोजन की ही आवश्यकता होती तो अधिक अन्न उपजाने का प्रश्न बड़ी आसानी से अधिक से अधिक रासायनिक खादों के प्रयोग करने से हल हो जाता। परन्तु कई वर्षों तक ऐसा करने से अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती हैं जिनको हमारे लिये समझना आवश्यक है। आजकल रासायनिक तथा प्रांगारिक खादों के समर्थकों के बीच एक विवाद सा चल रहा है। रासायनिक खादों के समर्थकों का कहना है कि बिना इन खादों के प्रयोग के

लेकर १९२९,३० तक मक्का जई मक्का अरहर का हेरफेर और १९३०,३१ से १९४३,४४ तक मक्का जौ मक्का अरहर मक्का गेहूँ मक्का मटर, का हेरफेर रक्खा गया। निम्नलिखित आँकड़ों में कुल पैदावार जोड़कर रक्खी गई है।

पैदावार प्रति एकड़ मनों में

१९०८,०९ से १९२९,३० तक	कुल पैदावार	१९३०,३१ से १९४३,४४ तक	कुल पैदावार
१. बिना खाद	७१२.२	बिना खाद	२६३.५
२. गोबर की खाद २० पौंड नाइट्रोजन	९९५.०	गोबर की खाद ४० पौंड नाइट्रोजन	६९४.०
३. गोबर की खाद ३० पौंड नाइट्रोजन	१०३४.४	अमोनियम सलफेट ४० पौंड नाइट्रोजन	२४९.५
४. अमोनियम सलफेट २० पौंड नाइट्रोजन	६४४.३	रासायनिक खादों का मिश्रण ४० पौंड नाइट्रोजन, ८० पौंड फासफेट, ५० पौंड पोटाश।	५६४.३
५. रासायनिक खादों का मिश्रण (नाइट्रोजन फासफेट और पोटाश नं० ३ के आधार पर)	१०२१.०		

ऊपर के आंकड़ों से हम देखेंगे कि केवल अमोनियम सलफेट खाद निरन्तर २१ वर्ष देने से पैदावार बिना खादवाले खेत से भी कम होती है। केवल रासायनिक खादों के पूर्ण मिश्रण को देने से ही पैदावार स्थिर रखी जा सकती है, परन्तु ऐसा करने पर भी हम देखेंगे कि १९३०,३१ से १९४३,४४ के बीच पैदावार गोबर की खाद की तुलना में कम हुई। इन प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि केवल अमोनियम सलफेट के लम्बे अर्से तक खेत में डालने से पैदावार उतनी भी नहीं होती जितनी कि उन्हीं खेतों से उसी अर्से में बिना किसी खाद के ली जा सकती है।

३. इसी प्रकार का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रयोग राथेम्स्टेड में हुआ। कुछ खेत के टुकड़ों में १८५२ से लगातार गेहूँ बोया गया। भिन्न-भिन्न टुकड़ों में भिन्न-भिन्न खादें दी गईं। एक टुकड़ा ऐसा भी रक्खा गया जिसे कोई खाद नहीं दी गई। ७० वर्षों तक इन टुकड़ों में जो पैदावार हुई उसे जोड़कर जो औसत निकला उसका फल निम्नलिखित है।

१. बिना खाद वाले टुकड़े की औसत पैदावार	१३ बुशल
२. सलफेट आफ अमोनियमवाले टुकड़े	२१ ,,
३. रासायनिक खादों के मिश्रणवाले	३१ ,,
४. गोबर की खाद	३६ ,,

प्रांगारिक खादों की उत्तमता इन आंकड़ों से भी सिद्ध होती है।

इन सब परिणामों को देखने के बाद अमोनियम सलफेट अवश्य ही एक हानिकर खाद मालूम होती है, परन्तु इसके प्रयोग का विरोध करने के पहले दो बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रथम तो यह कि जो कुछ भी दुष्प-रिणाम ऊपर दिखाया गया है, वह केवल अमोनियम सलफेट के लम्बे अर्से तक प्रयोग का है। यदि अमोनियम सलफेट को प्रांगारिक खादों के साथ मिलाकर दिया जाये तो अमोनियम सलफेट हानिकर होने के बजाय लाभप्रद हो सकता है। दूसरी बात यह है कि हम चाहे जितना भी प्रयत्न करें निकट भविष्य में यह आशा नहीं की जा सकती है कि केवल प्रांगारिक खादों द्वारा भारतीय भूमि में जो नाइट्रोजन की कमी है, उसे पूरा किया जा सकता है। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि किसानों का प्रयत्न यह होना चाहिये कि अधिक से अधिक जितना भी वह प्रांगारिक खाद बना सकें उसे बनाकर अपने खेतों में डालें। परन्तु फिर भी जो कमी पड़े उसे रासायनिक खादों से पूरा करें। रासायनिक खादों से प्रांगारिक खादों के बनाने में भी सहायता ली जा सकती है। रासायनिक खादों के डालने से पुआल और भूसे की उपज अधिक होती है जिनका किसान कम्पोस्ट बना सकता है। इसके अलावा हरी खादों की फसलों में रासायनिक खादें विशेष कर फास्फेट डालने से उपज भी अधिक होती है और उसमें पौधों का पौष्टिक अंश भी अधिक हो जाता है। और इस तरह से हरी खाद (जो एक प्रांगारिक खाद है) की मात्रा तथा गुण दोनों बढ़ाये जा सकते हैं।

निष्कर्ष यह निकलता है कि ऊपर बताई हुई बातों का ध्यान रखते हुये यदि अन्य खादों के साथ मिलाकर रासायनिक खादों का प्रयोग किया जाये तो वे लाभप्रद हो सकती हैं। परन्तु केवल अमोनियम सलफेट का लम्बे अर्से तक प्रयोग अवश्य ही हानिकारक है। रासायनिक खादों के प्रयोग के पहले किसानों को अपने से यह पूछना चाहिये कि क्या मैंने प्रांगारिक खाद बनाने के सभी साधनों का प्रयोग कर लिया है ? यदि इस प्रश्न का उत्तर हाँ है और फिर भी नाइट्रोजन की आवश्यकता पूरी नहीं होती तो रासायनिक खादों का प्रयोग किया जाना चाहिये।

खादों की मात्रा

बहुधा किसान यह पूछते हैं कि अमुक खाद का किस मात्रा में अमुक फसल में प्रयोग किया जाये। इसका उत्तर वास्तव में उनके खेत की उपजशक्ति पर निर्भर है फिर भी साधारणतया यह कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में पैदा होनेवाली मुख्य-मुख्य फसलों को निम्नलिखित मात्राओं में नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है।

गन्ना	१२० पाउन्ड
गेहूँ	५० ,,

धान	५०	पाउन्ड
मक्का	१२०	"
आलू	२००	"
ज्वार बाजरा	५०	"

दलहन की फ़सलों में नाइट्रोजनवाली खादें नहीं दी जातीं।

यह जोड़ने के लिये कि ऊपर लिखी हुई नाइट्रोजन की मात्रायें किस खाद को कितना डालने से पूर्ण हो सकती है यह जानना आवश्यक है कि उस खाद में कितने प्रतिशत नाइट्रोजन होता है। नाइट्रोजन देने वाली खादों में नाइट्रोजन का प्रतिशत निम्नलिखित तालिका से जाना जा सकता है:—

गोबर की खाद	०.४ से ०.५ प्रतिशत तक
कम्पोस्ट	०.८ से १ प्रतिशत तक
हरीखाद	५० पाउन्ड
रेंडी की खली	५ प्रतिशत
मूँगफली (छिली हुई)	७.६ "
नीम	४.४ "
अलसी	५.७ "
महुआ	२.६ "
बिनौला	२.६ "
सोडियम नाइट्रेट	१५.७ प्रतिशत
अमोनियम सलफेट	२०.६ प्रतिशत

जोड़ने की विधि एक उदाहरण देकर समझाई जा सकती है। मान लीजिये कि १ एकड़ गन्ना बोना है। इसके लिये १२० पाउन्ड नाइट्रोजन की आवश्यकता है। यदि खेत में हरी खाद का प्रयोग हुआ है तो ५० पाउन्ड नाइ-ट्रोजन उसमें हरीखाद द्वारा पहुँच चुका। अब केवल ७० पाउन्ड नाइट्रोजन खेत में पहुँचाने की आवश्यकता रह जाती है। यदि इस ७० पाउन्ड को रेंडी की खली के रूप में देना है तो यह आसानी से जोड़ा जा सकता है कि ७० पौंड नाइट्रोजन $\frac{१००\times७०}{५}$ पाउन्ड = १४०० पाउन्ड या १७ मन रेंडी की खली देने से पूरा होगा।

यदि इस ७० पाउन्ड को आधा अमोनियम सलफेट और आधा गोबर की खाद के रूप में देना है तो यह हिसाब लगाया जा सकता है कि ३५ पाउन्ड नाइट्रोजन $\frac{१००\times३५}{२०.६}$ पाउन्ड = लगभग १७० पौंड अमोनियम सलफेट और

$\frac{१००\times ३५}{.४५}$ पाउन्ड = ७७७७ पाउन्ड या लगभग ९५ मन गोबर की खाद से पूरा हो जायेगा।

पोषक तत्वों का पौधों पर प्रभाव

खादों के विषय में किसानों को यह जानना भी लाभप्रद होगा कि किसी पोषक तत्त्व की कमी या अधिकता से पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

नाइट्रोजन के अभाव में पौधों का रंग पीला पड़ जाता है और पत्तियाँ तथा कल्ले कम तथा छोटे हो जाते हैं। नाइट्रोजन की अधिकता में पत्तियाँ और कल्ले बहुत बढ़ जाते हैं और फूल-फल देर में लगता है। पौधों का रंग गाढ़ा हरा हो जाता है और उनके पत्ते बहुत ही मुलायम और कभी-कभी टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। ऐसे पौधों में बीमारियाँ आसानी से लगती हैं इसलिये किसानों को सावधान रहना चाहिये कि नाइट्रोजन आवश्यकता से अधिक न होने पावे। यदि नाइट्रोजन अधिक दिया जाये तो अन्य पोषक तत्वों को भी उसी अनुपात से दिया जाये।

फासफेट के अभाव में जड़ें ठीक से नहीं बढ़ती हैं और पौधों में फलफूल भी देर से आते हैं और बालियों में दाने भी कम बैठते हैं। दानों को समय से या पहले और भरा हुआ लेने के लिये फासफेट खाद का प्रयोग करना चाहिये।

पोटाश हरी पत्तियों द्वारा पौधों में स्टार्च और शकर के संग्रह में सहायक होता है। यह दानों को भरता है और आलू व शकरकन्द जैसी फसलों की गाँठों को बढ़ाता है। इसकी प्रचुरता में पौधे बढ़ते रहते हैं और कमी में पत्तियाँ समय से पहले झड़ जाती हैं और फल-फूल लगाना भी पहले ही समाप्त हो जाता है। पोटाश पौधों को फंगस (फफूँदी) बीमारियों से भी बचाने में सहायक होता है।

इन तीनों प्रमुख पोषक तत्वों को उचित भाग में देने के बाद भी यदि फसलों की उपज ठीक से न हो तो किसी विशेषज्ञ की सलाह लेना चाहिये, क्योंकि अब पता चल रहा है कि खेत में किसी एक तत्त्व की मामूली-सी कमी के कारण भी फसलें अस्वस्थ होती हैं और उनकी उपज कम होती है। इस प्रकार के तत्त्व, जिनका अब तक पता चला है, वे बोरान, कोवाल्ट, तांबा, लोहा, मैगनीशियम, मैंगनीज, गंधक और जिंक हैं। इनकी पौधों को बहुत ही थोड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है और यह प्रायः सभी भूमियों में पाई भी जाती हैं। परन्तु जब इनकी कमी हो जाती है तब इस कमी को बिना पूरी किये अच्छी फसलें नहीं ली जा सकतीं। प्रांगारिक खादों के अधिकाधिक प्रयोग से इन तत्त्वों की कमी की कम सम्भावना रहती है।

---०---

अध्याय ३

कृषि यंत्र

कृषि कार्य के लिये भारतवर्ष में कई एक छोटे-छोटे पुराने यंत्र प्रचलित हैं जिनमें मुख्य देशी हल बक्खर, कस्सी, कुदाली खुरपी, तथा पाटा इत्यादि हैं। जो पुराने यंत्र हैं वह इस देश के किसानों के लिये बहुत लाभदायक हैं। छोटे किसान देशी हल व पाटा से अपने खेतों की तैयारी कर लेते हैं। जो थोड़ा-थोड़ा गन्ना बोते हैं उसकी भी लाइनों के बीच में गुड़ाई कहीं-कहीं देशी हल से कर लेते हैं, इसलिये बहुत छोटे किसानों को, जिनके पास-दो तीन एकड़ ही भूमि है, उनको और किसी यंत्र की आवश्यकता नहीं होती। और घर में बहुत से काम करने वाले होते हैं, वह सब इन्हीं छोटे गाँव के बने हुये यंत्रों द्वारा सब काम कर लेते हैं। छोटे किसान धनाभाव के कारण भी कई प्रकार के यंत्र नहीं रख सकते। इसलिये भी उनको अपने ग्राम के बने हुये यंत्रों का ही सहारा लेना पड़ता है।

बैल से खेती करने वाले किसानों में भी कई श्रेणियाँ हैं और कुछ किसान ऐसे भी हैं जिनके पास अधिक भूमि है और उनकी एक-एक फसलें कई एकड़ में बोई जाती हैं। ऐसे मध्यम श्रेणी के किसान, जिनके बागों और खेतों में ट्रैक्टर तथा मशीनें नहीं इस्तेमाल होते परन्तु खेती कुछ बड़े पैमाने पर होती है, उनके लिये बैल से चलाने वाले कई यंत्र बड़े उपयोगी सिद्ध हुये हैं जैसे छोटे मिट्टी पलटने वाले हलों में मेस्टन हल व वाट हल हैं। इससे बड़े मिट्टी पलटने वाले हल विकट्री हल और टूनरेस्ट हल हैं। मिट्टी पलटने वाले हलों को बरसात में चलाने से यह लाभ होता है कि बरसाती घांस नीचे दब जाती है और उसकी जड़ें ऊपर आकर सूख जाती हैं। इन हलों की जुताई से केवल एक जुताई में इतना घास-फूस का विनाश हो जाता है जितना देशी हल के दो तीन जुताई से होता है। (चित्र १ अगले पृष्ठ पर देखें।)

बड़े मिट्टी पलटनेवाले हल हरी खाद के फ़सल जोतने के काम के लिये बहुत अच्छे होते हैं। इस प्रकार के हल गाँव सभा व सहकारी समितियाँ खरीद के रख लें और किसानों को किराये पर सनई आदि की फ़सल जोतने के लिये दे सकते हैं। (चित्र २ अगले पृष्ठ पर देखें।)
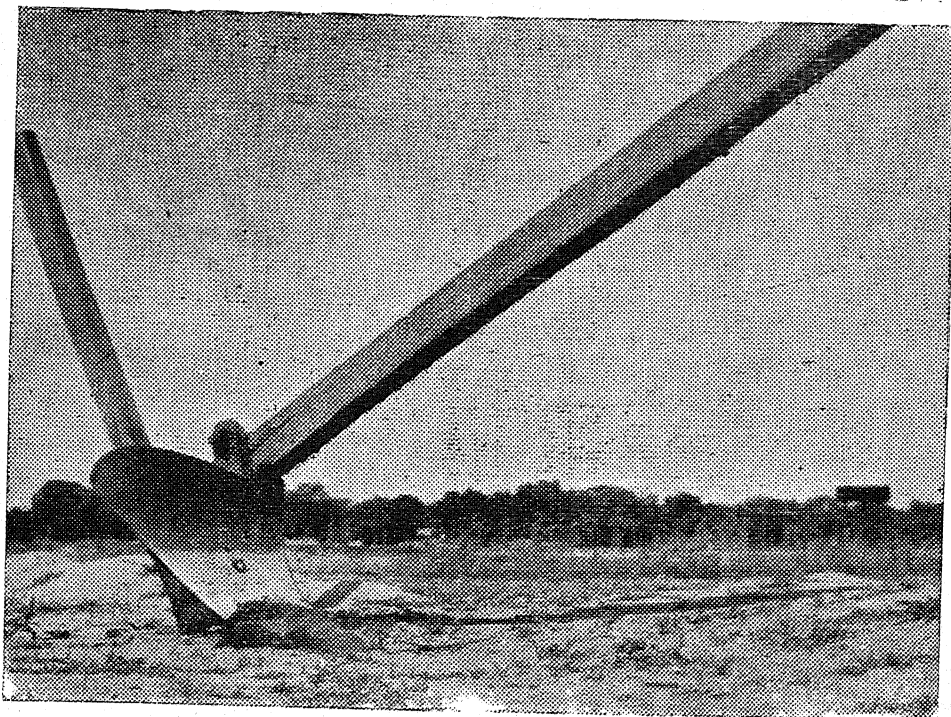
मिट्टी पलटने वाला हल (१)
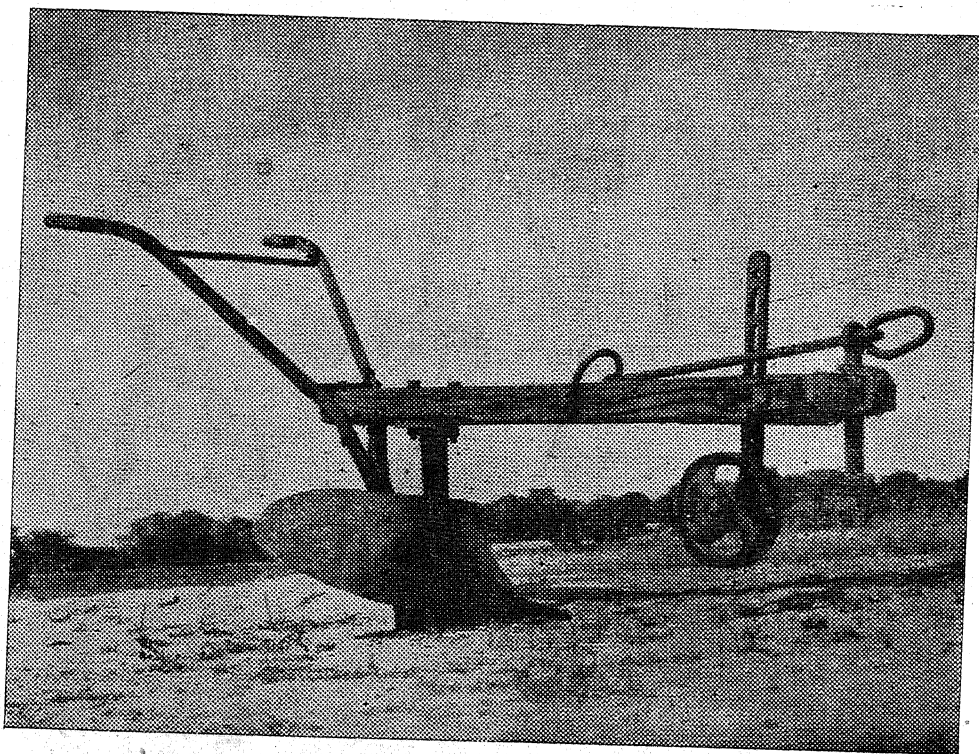
मिट्टी पलटने वाला हल (२)
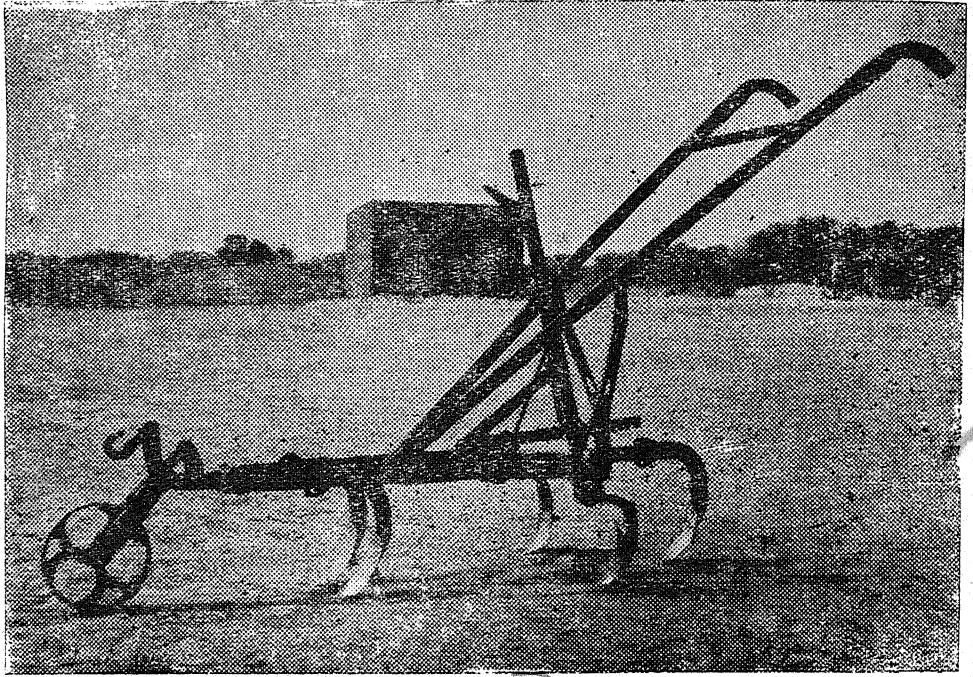
पाँच फाल का कल्टीवेटर
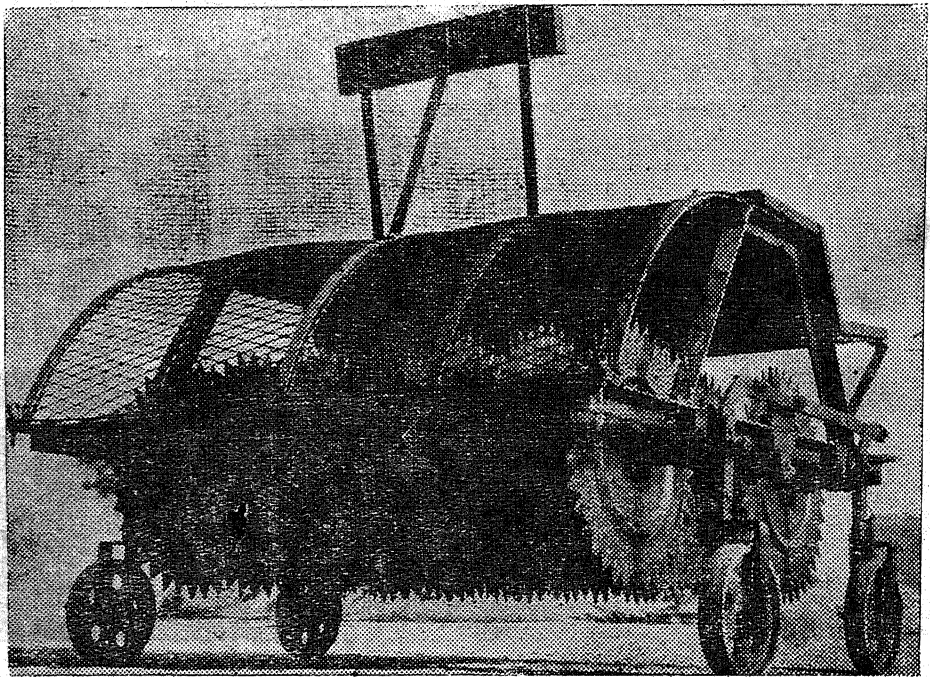
ओलपाड थ्रेशर

इनके अतिरिक्त पाँच फाल के कल्टीवेटर्स गन्ने के लाइन के बीच में गेहूँ के खेत में अन्तिम तैयारी के काम के लिये अच्छे होते हैं। यह गन्ने के लाइन के बीच में हर सिंचाई के बाद दो बार चलाये जाते हैं। इन से घास भी मर जाती है और ऊपर मिट्टी की एक बारीक तह पड़ जाती है जो नमी को रोकती है। गन्ने के बड़े किसानों ने इसे विशेष रूप से अपनाया है। (चित्र बाँये पृष्ठ पर)।

ओलपाड थ्रेशर बड़े किसानों में उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसकी सहायता से एक जोड़ी बैल से उतना दबाई का काम हो जाता है जितना साधारणतयः तीन जोड़ी बैल से होता है। इसमें बहुत से गोल-गोल पहिये लगे होते हैं और उनमें दातें कटे होते हैं। इसको गेहूँ के लाक पर चलाने से भूसा शीघ्र तैयार होता है। (चित्र बाँये पृष्ठ पर देखें)।

अगर कभी हवा न चलती हो तो एक प्रकार का पंखा जिसका आविष्कार लेखक ने किया है वह भूसा उड़ाने के लिए काफ़ी तेज़ हवा पैदा कर देता है। इसका नाम "सिंह विनोवर" है। यह बिजुली के पंखे के समान चलता है तथा साइकिल के तरह चलाया जाता है। (चित्र नीचे देखें)।

सिंह
वनोवर

सिंह हैन्ड हो
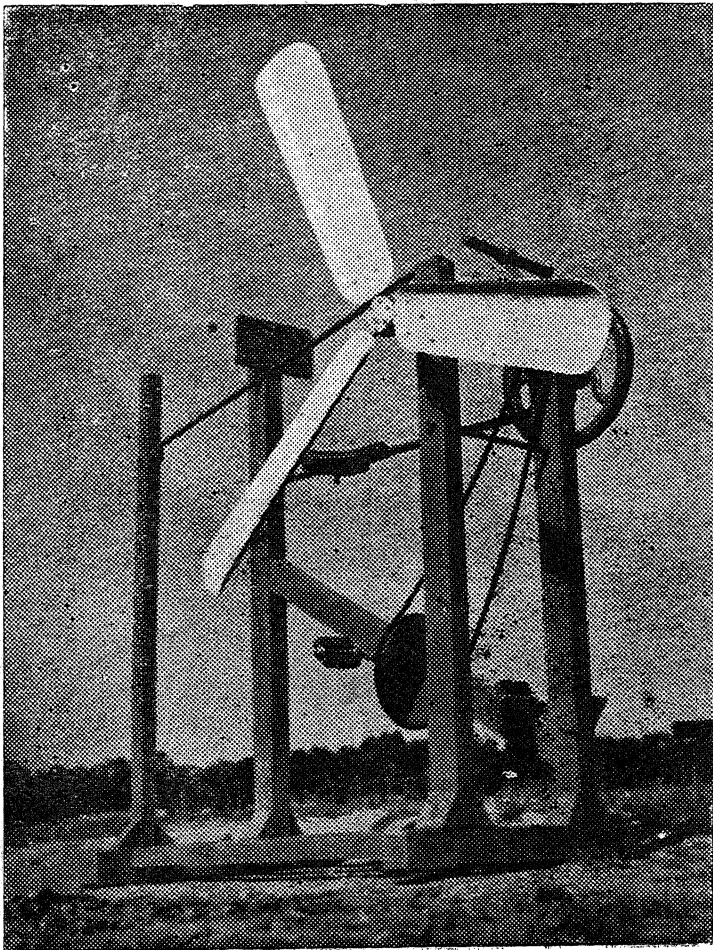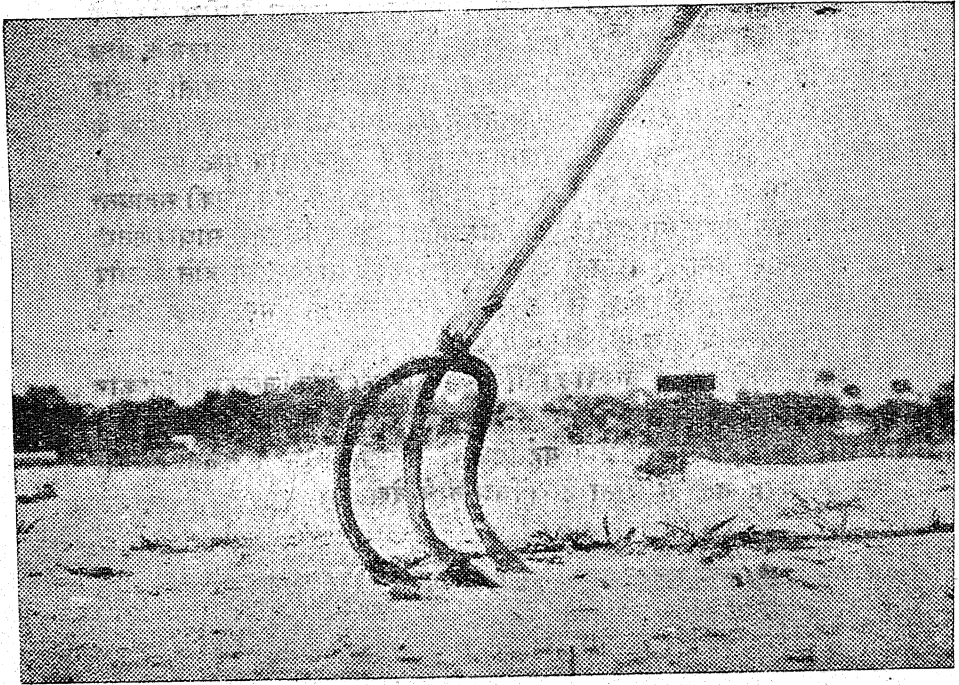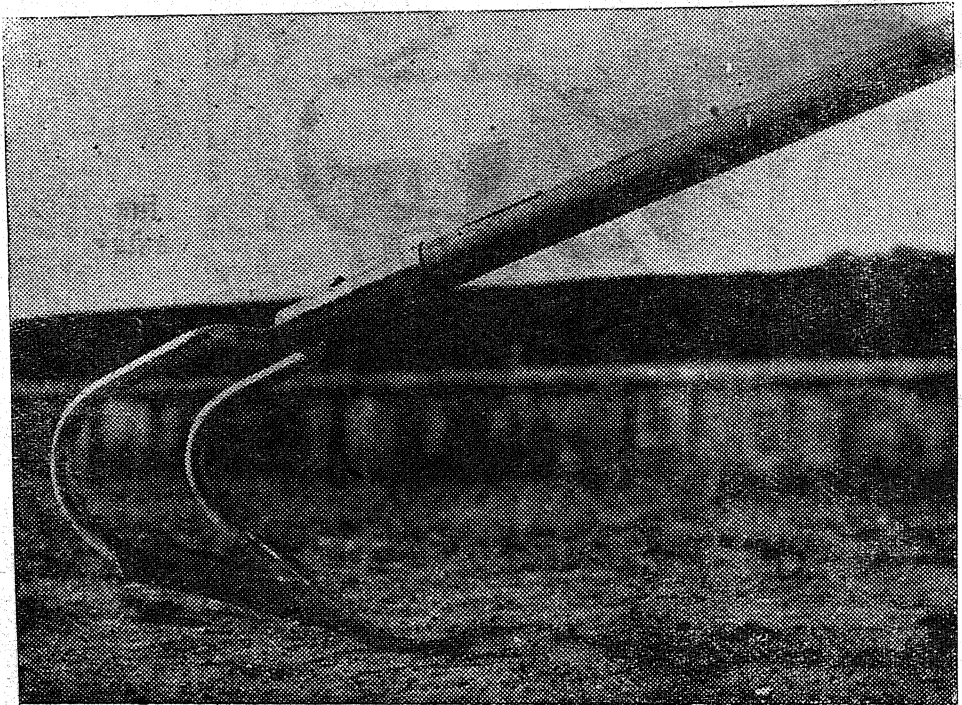
शर्मा हैन्ड हो

एक छोटा सा हाथ से चलाने वाला तीन फाल का कल्टीवेटर "सिंह हैन्डहो" है। यह लेखक का आविष्कार किया हुआ है। यह हैन्डहो गाँव का हर लोहार बना सकता है। लाइन से बोई फसल में खुरपी की तुलना में तीन-चार गुना शीघ्र काम करता है। (चित्र बायें पृष्ठ पर देखें)।

एक छोटा सा यंत्र "शर्मा हैंड हो" कानपुर कृषि कालेज के कृषि के अध्यापक डाक्टर शर्मा ने आविष्कार किया है। यह सस्ता और अच्छा तेज काम करने वाला हाथ का यंत्र है। (चित्र बायें पृष्ठ पर देखें)।

उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में तथा पूर्वी ज़िलों में बड़े किसानों के यहाँ चारा काटने की मशीन चेफकटर का भी बहुत रिवाज हो गया है। जानवरों के लिए चारा गिड़ास से काटने में अधिक समय लगता था परन्तु चेफकटर के कारण सरल हो गया है तथा थोड़े ही समय में अधिक चारा काटा जा सकता है। यह बैल से भी चलाने वाला बनाया गया है। बड़ी-बड़ी डेयरी जहाँ अधिक जानवर हैं, उनके लिये बैल से काटने वाली मशीन बहुत अच्छी सिद्ध हुई है। रहट भी बैल से चलाने वाली बहुत लाभदायक मशीनों में से है। इसका विशेष रूप से वर्णन करने की आवश्यकता इस कारण नहीं है कि लगभग सभी रहट को जानते हैं। उत्तर प्रदेश के ज़िलों में कुवें व नहरों से पानी उठाने के लिये अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। ३० फुट तक गहराई से पानी उठाने के लिये यह बहुत ही अच्छी बैल से चलाने वाली मशीन है। यदि थोड़ी गहराई से पानी उठाना हो तो एक या डेढ़ एकड़ रोज सिंचाई की जा सकती है। पानी जितना गहरे से उठाना पड़ता है उतना ही इसकी उपयोगिता कम हो जाती है। यदि गहराई पैंतीस या चालीस फुट से अधिक हो जाये तो रहट बहुत कम पानी उठाता है।

मामूली मेंड बनाने के लिये एक ऐसी सस्ती चीज़ बनाई गई है जिसको अँग्रेज़ी में "बन्ध फारमर" यानी मेंड बनाने के लिये मशीन कहते हैं। इससे अच्छी मिट्टी तैयार होने पर एक जोड़ी बैल से एक घन्टे में ६००० फुट तक सात इंच ऊँची मेंड बन जाती है। यह मेंड बनाने के लिए सब से सस्ता और अच्छा यंत्र है। बैलों से ज़मीन बराबर करने के लिये एक करहा भी है, जो बैल की सहायता से ऊंची भूमि से मिट्टी निकाल के खेत के नीचे ज़मीन में सरलता से डाल देता है। इस तरह खेत बराबर हो जाता है।

फसलें बोने की मशीन

फसल बोने के लिये बहुत प्रकार की मशीनें बनी हैं। गाँव की सस्ती न्यायी जिसमें एक आदमी हल के पीछे बीज बोता चलता है, उससे लेकर बड़े-बड़े सीडड्रिल जो बैलों व ट्रैक्टर से चलते हैं, बन गये हैं। जिसके पास जितना खेत होता है उसी हिसाब से सीडड्रिल रखते हैं। अधिकतर सीडड्रिल कई लाइनों में एक साथ बोता है और बोवाई का काम शीघ्र समाप्त करता है। इससे यह

लाभ है कि बीज बराबर पड़ता है और खेत की उर्वरा शक्ति व सिंचाई आदि ध्यान में रखते हुये बीज की मात्रा घटाई-बढ़ाई जा सकती है। जिन खेतों की उर्वरा शक्ति अच्छी है तथा खाद की मात्रा पूरी है और सिंचाई के साधन ठीक हैं, उनमें थोड़े बीज से अच्छी फ़सल पैदा होती है।

परन्तु जो खेत कमज़ोर हैं और जिनके पौधे कम बढ़ते हैं तथा व्यांत कम करते हैं, ऐसे खेतों में बीज अधिक मात्रा में डाला जाता है। सीडड्रिल से हम अपनी इच्छानुसार बीज की मात्रा घटा-बढ़ा सकते हैं। जापानी खेती के साथ-साथ एक जापानी घास निकालने वाली हाथ से चलाने के लिये मशीन बनाई गई है। यह धान के लाइन के बीच में चलाई जाती है। यह जापानी ढंग से सीधी लाइन में रोपाई करने के बाद घास निकालने तथा गोड़ाई में बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है।

अध्याय ४

जोताई तथा भूमि-सुधार

जुताई

जुताई का महत्त्व किसानों को जब से खेती का काम प्रारम्भ हुआ है तभी से मालूम है और इसका वर्णन केवल इसलिये इस जगह आवश्यक मालूम होता है कि पढ़े-लिखे किसान इस बात को अच्छी तरह से समझने लगें कि जुताई का भूमि पर क्या प्रभाव पड़ता है और उससे फसलों को क्यों लाभ होता है।

जुताई का सबसे बड़ा लाभ यह है कि भूमि जोतते रहने से उसमें घास नहीं पैदा होती। यह प्रत्येक किसान जानता है कि जिस खेत में घास पैदा हो जाती है उसमें फस्ल अच्छी नहीं पैदा होती। वह इस बात का प्रयत्न भी करता है कि फस्ल के साथ कोई घास पैदा न होने पावे किन्तु कभी-कभी वे इस बात को भूल जाते हैं कि घास खाली फस्ल को उसी समय ही हानि नहीं करती जब कि खेत में फस्ल खड़ी होती है। यदि बहुत सी घास फस्ल से पहिले भी उगी थी तो उसने भी बहुत कुछ नमी और पौधे का भोजन भूमि से खींचकर नष्ट कर दिया है जिसका परिणाम यह होता है कि बाद में जो फस्ल बोई जाती है वह उस भूमि में खूराक की कमी और कभी-कभी नमी की कमी से भी अच्छी नहीं बढ़ती है। घास को अंग्रेजी में खेत-चोर के नाम से पुकारते हैं क्योंकि घास किसी भी दशा में पैदा हो जावे तो जमीन में से पौधे की खूराक अवश्य निकाल लेती है और ज़मीन को कमज़ोर कर देती है। इसलिये किसानों को चाहिये कि खेत की जुताई ऐसी करें कि उसमें घास कभी बढ़ने न पावे। घास प्रायः बरसात में ही बढ़ती है और इसको मारने में देशी हल उतना सफल नहीं होता जितना कि मेस्टन हल या और कोई मिट्टी पलटनेवाला हल। देशी हल जमीन को चीरता हुआ चलता है और घास की जड़ें नीचे भूमि में लगी रह जाती हैं और तने व पत्ती ऊपर रह जाते हैं। बरसात में प्रायः ऐसा होता है कि जोतने के बाद ही बादल आ जाते हैं और हवा में इतनी नमी होती है कि जड़ें फिर से जमीन पकड़ लेती हैं और घास फिर से हरी हो जाती है। बरसात के दिनों में घास बिना कई जुताई किये नहीं दबती। यदि बरसात में मिट्टी पलटनेवाले हल से एक घनी जुताई कर दी जावे तो वह मिट्टी को उलट देता है जिससे जड़ें ऊपर की ओर धूप में आ जाती हैं और तना और पत्ती जमीन में दबकर सड़ जाती हैं और खाद का काम देती हैं। जुताई के बाद यदि तुरन्त

ही बादल और वर्षा हो जावे तो भी जड़ें ऊपर निकल आने के कारण और पौधों के तने और पत्तियाँ जमीन में दब जाने के कारण पौधा फिर से हरा नहीं हो सकता। इस बात का नमूना किसान स्वयं ही बरसात के दिनों में एक खेत के दो टुकड़े करके एक भाग को देशी हल से जोतकर और दूसरे को मिट्टी-पलटनेवाले हल से जोतकर देख सकते हैं। घास मारने के लिये देशी हल की यदि तीन या चार जुताई करनी पड़ेंगी तो मिट्टी पलटनेवाले हल की केवल एक जुताई से घास मर जावेगी।

देशी हल की जुताई
मिट्टी पलटनेवाले हल की जुताई

मिट्टी पलटनेवाले हल की जुताई में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि कूँड़ के बीच में कोई जमीन न छूटने पावे। देशी हल में कुछ जमीन छोड़-छोड़कर जुताई होती है; मिट्टी पलटनेवाले हल से जुताई करने के समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि जुताई कूँड़ से कूँड़ मिलाकर की जावे और एक कूँड़ से दूसरे कूँड़ के बीच में कोई भूमि न छूटने पावे। जब किसान इस हल को देशी हल की तरह प्रयोग करते हैं और थोड़ी-थोड़ी भूमि छोड़कर चलाने की कोशिश करते हैं तो उनको यह हल इतना भारी मालूम होता है कि वे कह उठते हैं कि हमारे छोटे बैलों से यह हल नहीं चलेगा। लेकिन प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि यदि मिट्टी पलटनेवाले हल से जोतने के समय थोड़ी-थोड़ी मिट्टी काटने की कोशिश की जावे तो जो बैल देशी हल जोत सकते हैं, वही मिट्टी पलटनेवाला हल भी अच्छी तरह से जोत सकते हैं।

जुताई का एक यह भी ध्येय है कि जुती हुई भूमि दो-चार बार उलट जावे और उसमें धूप और हवा का प्रवेश हो जावे। विशेषकर बरसात के महीनों में ही मिट्टी पलटनेवाले हल के प्रयोग से आनेवाली रबी की फसल को बहुत लाभ होता है। १५ सितम्बर के बाद जब नमी रोकने की आवश्यकता होती है तो मिट्टी पलटनेवाले हल कदापि प्रयोग में न लाए जायें। उस समय देशी हल या कलटीवेटर से खेत की जुताई करना चाहिये ताकि नीचे की नमी ऊपर आकर नष्ट न हो जावे।

पौधे की जड़ें पोली जमीन के अन्दर बहुत तेजी से बढ़ती हैं। जुताई से जमीन बहुत नरम और पोली हो जाती है जिसके अन्दर दबाने से जिस तरह से लकड़ी घुस जाती है उसी तरह आसानी के साथ पौधों की जड़ें भी फैलती हैं। यदि भूमि कड़ी हो तो उसके अन्दर पौधों की जड़ें नहीं फैल सकती हैं। जड़ों को भूमि के अन्दर बढ़ने में हवा की बड़ी आवश्यकता होती है। जैसे जीवित रहने के लिये हवा की आवश्यकता मनुष्यों और जानवरों को है, वैसे ही जीवित रहने के लिये पौधों की जड़ों के लिये भी हवा की आवश्यकता है। बिना हवा के जड़ भूमि के अन्दर नहीं बढ़ सकती है और पौधे पीले पड़ जाते

हैं या मर जाते हैं। जिन खेतों में पानी लग जाता है उनमें भी जड़ों तक हवा नहीं पहुँच पाती और यही कारण है कि पानी लगने से अरहर, मक्का, मूँगफली, कपास इत्यादि फसलों को हानि पहुँचती है। इस बात को किसान बहुत दिनों से जानते हैं कि हर फसल के उगने के कुछ दिनों बाद तक यदि खेत में गुड़ाई होती रहे तो इससे बहुत लाभ होता है। जुताई और गुड़ाई का दूसरा लाभ यह होता है कि भूमि के अन्दर जितना वानस्पतिक भाग होता है वह सब हवा और शाकाणुओं की सहायता से पौधे की असली खूराक नाइट्रेट बन जाता है। इस काम के लिये भूमि में हवा की बड़ी आवश्यकता है। बरसात के दिनों में जितने बार भी खेत जोता-गोड़ा जावे उतने ही अधिक नाइट्रेट्स तैयार होते हैं। यदि जोताई या गोड़ाई कम की जावे तो शाकाणुओं को काफी औक्सिजन गैस जो हवा में मौजूद होती है न मिलने के कारण पौधे की खूराक अच्छी तरह से नहीं तैयार होती। यही कारण है कि जिस साल बरसात के दिनों में बारिश बहुत अधिक होती है उस साल चौमास की जुताई अच्छी नहीं हो पाती और उसमें पौधे की खुराक या नाइट्रेट्स अच्छे तैयार नहीं होते और इसलिये रबी की फसल भी अच्छी तरह नहीं बढ़ती। पानी जमा होने से सिर्फ यही नहीं होता कि पौधे की अच्छी खूराक तैयार नहीं होती, किन्तु जो पहले से तैयार खूराक होती भी है वह भी नष्ट हो जाती है। इसलिये खेत में बरसात के दिनों में बहुत दिनों तक पानी ठहरने से और उसमें जुताई न होने से रबी की फसल बहुत कमजोर हो जाती है। सर ऐलवर्ट हावर्ड के प्रयोगों से यह मालूम हुआ है कि ऐसी जमीनों में जहाँ पानी रुकता है वहाँ गेहूँ, कपास की पैदावार पानी न रुकनेवाली जमीनों की अपेक्षा कम होती है। इससे स्पष्ट है कि भूमि के अन्दर हवा की कितनी आवश्यकता है और फसलों के लिए जल्दी-जल्दी जुताई और गुड़ाई अति लाभप्रद है। इस प्रयोग का फल नीचे दिया जाता है।

पानी का निकास	कपास की पैदावार फी एकड़ पौंड में	गेहूँ की पैदावार फी एकड़ पौंड में
बहुत खराब	१४५ पौंड	३७० पौंड
अच्छा	३६६ पौंड	६०० पौंड
बहुत अच्छा	५१० पौंड	१००५ पौंड

जुताई-गुड़ाई से यह भी एक बहुत बड़ा लाभ है कि भूमि के नीचे की नमी ऊपर आकर नष्ट नहीं होने पाती। भूमि के ऊपर का भाग सूखकर भुर-भुरा हो जाता है और वह नीचे के भाग को गर्मी से बचाता है। भूमि के नीचे का पानी ऊपर उसी तरह से आता है जैसे लालटेन के अन्दर मिट्टी का तेल बत्ती द्वारा ऊपर चढ़ता है। जैसे यदि बत्ती का ऊपरी भाग नीचे के भाग से काटकर अलग कर दिया जावे तो नीचे का तेल ऊपर नहीं आ सकता है, उसी तरह भूमि

को जोतकर ऊपर भुरभुरा कर दिया जावे तो नीचे की नमी ऊपर नहीं आ सकती है। इस बात को किसान खूब समझते हैं और क्वार और कार्तिक के महीने में जब उनको खेत में नमी रोकने की आवश्यकता होती है तो उन दिनों में शाम को खेत की जुताई करके रात भर खुला छोड़ देते हैं और सुबह धूप तेज होने से पहले पाटा फेरकर सब ढेले फोड़ देते हैं और ऊपर की भूमि बिलकुल भुर-भुरी कर देते हैं ताकि ऊपर की ही मिट्टी धूप से सूख जाय और नीचे की नमी ऊपर आकर हवा में नष्ट न हो सके। क्वार के महीने में जुताई ८, ६ बजे के बाद जब धूप निकल आवे कदापि नहीं करना चाहिये नहीं तो खेत के सूख जाने का डर रहता है।

हर सिंचाई के बाद दो या तीन गुड़ाई गन्ने की गर्मियों में की जाती हैं। उसका अभिप्राय घास दबाने के अलावा यह भी होता है कि खेत की नमी खेत के अन्दर अधिक दिनों तक सुरक्षित बनी रहे।

कुछ फसलें जैसे गन्ना या मक्का की गोड़ाई किसान पहले से करते आये हैं। परन्तु प्रयोगों से सिद्ध होता है कि किसी भी फसल को गोड़ाई द्वारा लाभ पहुँचाया जा सकता है। धान में खुरपी या कुदाली से गोड़ाई न करके देशी हल से ही दूर-दूर जोत दिया जाता है। इसे बिदहनी या धुरदहनी कहते हैं। गेहूँ को भी यदि पहिली सिंचाई के बाद किसी हल्के काँटेवाले हल से जोत दिया जाय तो कल्ले बहुत निकलते हैं और पैदावार बढ़ जाती है।

सुगमता से गोड़ाई करने के लिये फसलों को लाइन से बोना चाहिये। लाइन से बोई हुई फसलों के बीच गोड़ाई का काम बड़ी तेजी और सरलता से किया जा सकता है। यदि लाइनें दूर-दूर हैं जैसे गन्ने में तो बैलों या ट्रैक्टर से भी लाइनों के बीच में गोड़ाई हो सकती है। बिना लाइन से बोई हुई फसलों को मामूली कुदाली से गोड़ने के लिये आठ मजदूर प्रति एकड़ लगते हैं। परन्तु लाइन से बोई हुई फसल "हैन्ड हो" द्वारा, जिसका चित्र आगे दिया जाता है, तीन मजदूर आसानी से एक एकड़ गोड़ सकते हैं और बैलोंवाले कल्टीवेटर की सहायता से एक जोड़ी बैल और एक मजदूर दिन भर में दो एकड़ गोड़ सकता है। परन्तु इन सब यन्त्रों का प्रयोग तभी सम्भव है जब फसलें लाइन से बोई जायें।

फसलों को लाइन में बोने से कुछ मेहनत अधिक लगती है, परन्तु बीज कम लगता है। जितनी बोआई में मजदूरी अधिक लगती है उतनी बीज में बचत हो जाती है।

खेत में लाइनें लगाने के लिये खेत को बिल्कुल तैयार करके उसमें पाटा चलाकर मिट्टी को बारीक और समतल कर लिया जाता है। फिर जितनी दूरी पर लाइनें लगाना है उतने बड़े दो लकड़ी के नाप लेकर दो मनुष्य खेत के किनारों

पर बैठ जाते हैं और रस्सी को तान देते हैं। रस्सी जब सीधी हो जाती है तब एक तीसरा आदमी उस रस्सी पर चलता है, जिससे खेत में सीधी लाइन का निशान बन जाता है।

अब तक जोताई-गोड़ाई से क्या लाभ होते हैं, उनका वर्णन किया गया परन्तु कुछ परिस्थितियों में इन से हानि भी हो सकती है। इन्हें किसान को अच्छी तरह से समझ लेना आवश्यक है जिससे ऐसी गल्ती वह न करे।

बरसात के दिनों में ढलुआ खेतों को बार-बार जुताई करने से खेत की बनी मिट्टी का पानी के साथ बह जाने का डर रहता है। खेतों में ४-५ या ६ इंच तक की मिट्टी उपजाऊ होती है और यदि यह पानी के साथ बरसात में बह जाने दी जाये तो जुताई से जितना लाभ नहीं होगा उससे अधिक हानि हो जायेगी। इस हानि को बचाने के लिये ऐसे खेतों में मूँग, मूँगफली इत्यादि की फसलें बो देना चाहिये। फसलों की लाइन बहाव के लाइन को काटती हुई जाना चाहिये जिससे कि फसलें पानी के बहाव के वेग को रोक सकें। खेतों को चौमस

चित्र हैण्ड हो
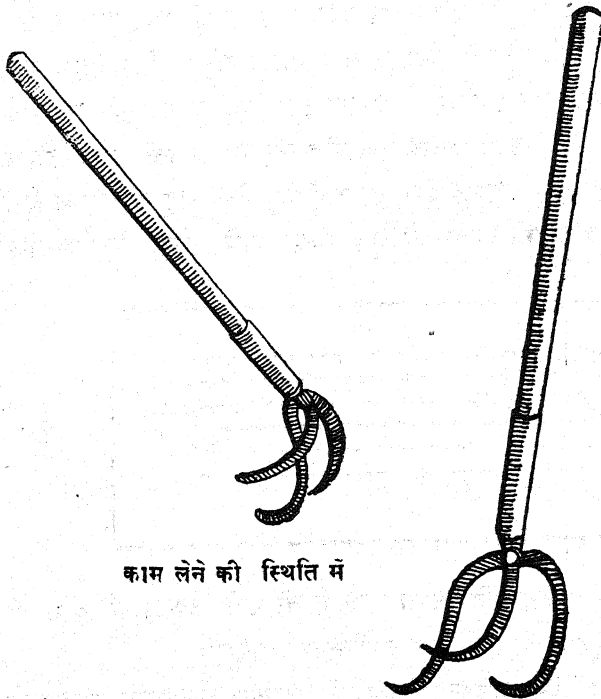
काम लेने की स्थिति में

खड़ी स्थिति में

रखने से केवल इतना ही नहीं होता कि वर्षा ऋतु में खेत से कोई फसल नहीं मिलती बल्कि भूमि बहाव के कारण खेतों की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। इसलिये वर्षा के पहिले दो महीनों में चौमस रखने की प्रथा को समाप्त कर देना

चाहिये। केवल सितम्बर व अक्तूबर में रबी के लिये जोताई करनी चाहिये। जुलाई व अगस्त में सनई, ढेंचा, लोबिया, मूँग, ग्वार आदि की हरी खाद देनेवाली फसलें खेत में रखनी चाहियें।

यह देखा गया है कि जिन फार्मो पर अधिक दिनों से बड़े मिट्टी पलटने वाले हल का प्रयोग असावधानी से होता रहा है उनके खेतों की सतह खराब हो जाती है। खेतों के किनारे-किनारे की सतह ऊँची हो जाती है और बीच में गहरा हो जाता है। इसका फल यह होता है कि वर्षाऋतु में खेत में पानी लगता है और बाकी ऋतुओं में किनारे-किनारे खेतों में नमी की कमी से नुकसान होता है। अनुभवी किसानों का मत है कि खेतों की केवल सतह बिगड़ जाने से पैदावार चौथाई घट जाती है। इसलिये इसकी सावधानी रखना चाहिये कि बड़े हल की जोताई के कारण खेत की सतह न बिगड़ने पावे। यह दो प्रकार से की जा सकती है। एक तो हर खेत की जुताई समाप्त होने पर खेत के चारों ओर किनारे-किनारे उल्टी जोताई कर दी जावे। ऐसा करने से जितनी मिट्टी बाहर की तरफ फेंकी गई है वह उल्टी जोताई के समय अन्दर फिर से पलट आती है। दूसरा उपाय यह है कि खेतों को आँतर से न जोतकर खेत के ठीक बीच से जोताई शुरू करके खेत के किनारे तक जोत डाले। जोताई इस तरह से करना चाहिये कि मिट्टी बाहर फेंकने के बजाय हल मिट्टी भीतर को फेंके। ऐसी जोताई करने से खेत के बीच में केवल एक रीढ़ सी पड़ जाती है, बाकी खेत बिल्कुल समतल रहता है। परन्तु ऐसी जोताई के लिये यह आवश्यक है कि जोताई खेत के ठीक बीच की लाइन से शुरू किया जाये जैसा कि निम्नलिखित चित्र
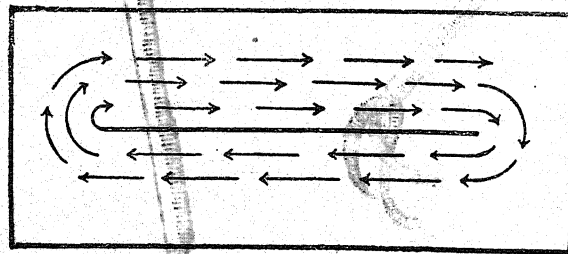
बीच की लाइन

में दिखाया है। खेत यदि बहुत बड़ा है तो उसे टुकड़ों में बाँट लेना चाहिए और प्रत्येक टुकड़े को इसी प्रकार जोतना चाहिए।

जोताई के सम्बन्ध में यह भी जानना आवश्यक है कि खेत में नमी अधिक होने पर केवल उसी सूरत में जोतना चाहिये जब जोताई के बाद कई बारिश होने की सम्भावना हो क्योंकि कच्चा खेत जोतने के बाद यदि वर्षा न हो तो मिट्टी की बनावट खराब हो जाती है। ऐसी गलती करने पर बलुये खेत को तो कई पाटा इत्यादि देकर सम्भव है ठीक भी कर लिया जाये परन्तु यदि

मटियार खेत को कच्चा जोत दिया जाय और फिर वर्षा न हो तो कम से कम साल भर के लिये उस खेत की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जायेगी। इसलिये किसान को सावधान रहना चाहिये कि मटियार खेत को तो कभी कच्चा न जोते।

जोताई के सम्बन्ध में एक गलती यह भी हो सकती है कि खेत को अधिक गहरा जोत दिया जाये। ऐसा करने से खेत की बनी मिट्टी नीचे चली जाती है और नीचे की अनबनित मिट्टी ऊपर आ जाती है। ५ इंच से ६ इंच तक गहरी जोताई प्रायः सभी फसलों के लिये काफी है। इससे गहरा केवल विशेष परिस्थितियों में ही जोतना चाहिये। साधारणतया इससे गहरा जोतने से लाभ के बजाय हानि होती है। खेत के ऊपर जो कुछ भी वानस्पतिक पदार्थ होता है, वह नीचे दब जाता है जहाँ हवा का प्रवेश आसानी से नहीं हो सकता। हवा की कमी से भूमि शाकाणु वानस्पतिक पदार्थ को नाइट्रेट में नहीं बदल पाते बल्कि डर यह रहता है कि जो कुछ पहिले से ही तैयार नाइट्रेट हो वह भी नष्ट हो जाये। दूसरी हानि गहरी जोताई का यह होता है कि खरपतवार के बीज मिट्टी के साथ पल्टे जाने के बाद नीचे चले जाते हैं और वहाँ सुरक्षित हो जाते हैं। यदि खरपतवार के बीज सतह के २, ३ इंच के अन्दर ही रहें तो उन पर गर्मी-सर्दी, बरसात तथा कीड़े-मकोड़ों का असर होता रहेगा और वे या उग आवेंगे और जोताई और गोड़ाई से नष्ट हो जायेंगे या उन्हें कीड़े खा जायेंगे। परन्तु जो बीज नीचे चले जाते हैं वे नष्ट नहीं होते और सुरक्षित बने रहते हैं। इस तरह से खरपतवार का बीज खेत में बढ़ जाता है।

खाद देने तथा गोड़ाई-जोताई करने के अतिरिक्त कुछ उपाय और हैं जिनके द्वारा खेतों की उपज शक्ति बढ़ाई जा सकती है। यहाँ अब हम इन अन्य उपायों का वर्णन करेंगे।

(१) यह एक पुराना अनुभव है कि बलुआ खेतों में यदि मटियार मिट्टी मिला दी जाये और मटियार खेतों में बलुआ मिट्टी मिला दी जाये तो पैदावार अन्य खाद मिलाये बिना भी बढ़ जाती है। ऐसा करने से खेतों की मिट्टी की बनावट सुधर जाती है जिसका अच्छा प्रभाव पैदावार पर पड़ता है। यदि मिट्टी की ढुलाई का खर्च अत्यधिक न हो तो इस सरल उपाय से लाभ उठाना चाहिये।

(२) खेतों की उपज खेतों के सम होने पर बहुत हद तक निर्भर है। जो खेत ऊँचे-नीचे हैं उनमें बहुत खाद देने पर भी अच्छी पैदावार नहीं ली जा सकती। वर्षा ऋतु में नीची जगहों पर पानी लगता है और इस कारण से फसलों को हानि पहुँचती है, और अन्य ऋतुओं में ऊँची जगहों पर सिंचाई का पानी न ठहरने के कारण नमी के अभाव से पौधे को हानि पहुँचती है। खेत की सतह में थोड़ी ऊँच-नीच से भी पैदावार पर बुरा असर पड़ता है।

जिन खेतों पर कई वर्षों से मिट्टी पलटनेवाले बड़े हलों का प्रयोग असावधानी से हो रहा है, उन खेतों के किनारे-किनारे मिट्टी ऊँची हो जाने के कारण गन्ना या रबी की फसलें अच्छी नहीं लगतीं। किसान का प्रयत्न होना चाहिये कि खेत थाली की पेंदी की तरह समतल रहे।

(३) भूमि के बहुत बड़े-बड़े टुकड़ों को समतल बनाना बहुत ही परिश्रम का काम होगा इसलिये भूमि को मेड़ों द्वारा छोटे-छोटे खेतों में बाँट लेना चाहिये। इन मेड़ों के अन्दर भूमि को समतल बना लेना चाहिये। मेड़ों का ध्येय केवल इतना ही नहीं है कि वे खेतों की सीमाएँ ही दिखायें बल्कि खेतों में नमी रोकना और इनकी खादों तथा बनी हुई मिट्टी को बहने से रोकना भी मेड़ों का काम है। जिन खेतों में मेड़ नहीं होती उनकी बनी हुई मिट्टी और जो कुछ खादें दी जाती हैं उनका बहुत बड़ा अंश वर्षाऋतु में बरसाती पानी के साथ बह जाता है। इस हानि को रोकने के लिये खेतों की मेड़ें बनाना और उन्हें ठीक रखना बहुत ही आवश्यक है।

(४) खेतों की उपज शक्ति बनाये रखने का एक पुराना उपाय फसलों को हेर-फेर से बोना है। एक ही फसल बार-बार एक खेत में बोने से खेत की उपजाऊ शक्ति का बड़ी शीघ्रता से ह्रास होता है और उसकी पूर्ति करना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त एक ही फसल बार-बार बोने से उस फसल के साथ उपजने वाले हानिकारक कीड़े-मकोड़े तथा घासें इतनी बढ़ जाती हैं कि फसल को नष्ट कर देती हैं। इसलिये फसलों को बदल-बदल कर बोना आवश्यक है। अधिकतर फसलें ऐसी हैं जो भूमि से नाइट्रोजन लेती हैं, परन्तु दलहन की फसलों के साथ अन्य फसलों का हेर-फेर किया जाये तो नाइट्रोजन की कमी बहुत हद तक बिना बाहर से खाद दिये ही पूरी की जा सकती है। कुछ फसलें ऐसी हैं जिनकी जड़ें भूमि में बहुत नीचे तक चली जाती हैं और वहाँ से खनिज पदार्थों को लेकर ऊपर पौधों में पहुँचाती हैं। और जब इन पौधों की पत्तियाँ तथा अवशेष सड़कर मिट्टी में मिलते हैं तो ऊपर की मिट्टी भी उपजाऊ हो जाती है। इसलिये फसलों के हेरफेर में तीसरे-चौथे वर्ष ऐसी फसलें बोना लाभप्रद होगा जिनकी जड़ें भूमि में नीचे तक जाती हैं। अरहर, गन्ना तथा ढेंचा इसी प्रकार की फसलें हैं।

इस प्रान्त में प्रचलित कुछ फसलों के हेर-फेर निम्नलिखित हैं।

१. गेहूँ, अरहर, ज्वार, या अरहर कोदो, पलिहर गेहूँ।

२. क्वारी धान, चना या मटर क्वारी धान।

३. ज्वार, चना, ज्वार।

४. कपास, गन्ना, गेहूँ, कपास।

५. मूँगफली, गन्ना, पेड़ी, सनई की हरी खाद गेहूँ, मूँगफली।

अन्य लाभप्रद फसलों के हेरफेर का वर्णन "धरती से धन" शीर्षक अध्याय में किया जायगा।

(५) भूमि की उपजाऊ शक्ति इस पर भी निर्भर है कि उसमें तेजाब या खारी अंश अधिक न हो। इनके अधिक होने पर पैदावार अच्छी नहीं हो सकती है। सौभाग्य से अपने प्रदेश में ऐसी भूमि बहुत ही कम है जिसमें तेजाबी अंश अधिक हो। यदि कहीं ऐसा पाया जाये तो उसमें चूना देकर भूमि को ठीक किया जा सकता है। कितना चूना प्रति एकड़ दिया जाये यह भूमि के तेजाबीपन पर निर्भर करेगा और इसका निर्णय किसी विशेषज्ञ की सहायता से करना चाहिये। ऐसी भूमियों में जिनके पानी का निकास ठीक न हो और नमी सदा बनी रहती हो और जिनमें अमोनियम सलफेट का बारबार प्रयोग हुआ हो, उनमें तेजाबी अंश के अधिक होने की सम्भावना रहती है। जहाँ तक खारीपन का सम्बन्ध है, इसके कारण हमारे प्रदेश के बहुत बड़े क्षेत्र में खेती नहीं की जा सकती। ऊसरों की गणना इसी प्रकार की भूमि में की जा सकती है।

उत्तर प्रदेश में लगभग २३ लाख एकड़ भूमि ऊसर है। ऊसर भूमि भी कई प्रकार की है। कुछ में तो साधारण भूमि से थोड़ा सा ही अधिक लवण की मात्रा है और यह सरलता से २ या ३ साल के सुधार से ही ठीक हो सकती है और इनमें फसलें पैदा होने लगेंगी, परन्तु कुछ ऐसे हैं जिनमें लवण की मात्रा इतनी अधिक है कि उनको ठीक करने में बड़े खर्च व परिश्रम और दस-पंद्रह साल का समय लगता है। यह मामूली और कठिन प्रकार के ऊसर कभी-कभी आस-पास और मिले-जुले होते हैं और पूरे ऊसर को उपजाऊ बनाने में और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

ऊसर भूमि इसलिये पैदा हो जाती है कि उस पर जो पानी पड़ता है वह नीचे तक सरलता से नहीं पहुँच पाता। कोई कंकड़ की तह या कड़ी चिकनी मिट्टी की तह थोड़ी गहराई पर होती है जिसके नीचे बरसात का पानी नहीं जा सकता। सब पानी जो ऊसर भूमि पर गिरता है वह या तो ऊपर बह जाता है या भूमि में थोड़ा ही नीचे जाकर रुक जाता है। जितना इस भूमि में लवण की मात्रा है पानी के साथ बरसात में थोड़ा नीचे जाता है और वर्षा बाद फिर ऊपर पानी के साथ आ जाता है। पानी हवा से सूख जाता है और लवण सब का सब भूमि के ऊपरी हिस्से में रह जाता है। पानी नीचे से ऊपर ऐसे आता है जैसे तेल लालटेन की बत्ती में ऊपर चढ़ता है। ऊपर पहुँचकर पानी तो सूख जाता है और नमक का भाग (रेह) इत्यादि वहीं रह जाते हैं। जिस भूमि में नीचे बालू या ऐसे अंश होते हैं जो पानी के नीचे जाने में रुकावट नहीं डालते उनमें का सब घुलनशील लवण नीचे चला जाता है और सब ऊपर ही इकट्ठा नहीं रक्खा रहता जैसा कि ऊसर में होता है। बस यही नमक जो

किसी प्रकार इस भूमि से बाहर नहीं जाता वही ऊसर का मुख्य कारण है।

यह नमक भी कई प्रकार के होते हैं जिनमें मुख्य सोडियम कार्बोनेट और सोडियम बाई कार्बोनेट हैं। यह दूसरे प्रकार के लवण जैसे सोडियम क्लोराइड और सोडियम सलफेट से अधिक मात्रा में होते हैं और कठिनाई से साफ किये जा सकते हैं। इन्हीं लवणों की भूमि के ऊपरी हिस्से में अधिकता के कारण कोई पौधा नहीं उग सकता। इन लवणों में पानी खींचने की पौधे से अधिक शक्ति होती है और ऊसर भूमि में नमी रहने पर भी पौधे सूखने लगते हैं।

ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने का ढ़ंग यही है कि जिस ढ़ंग से भी हो ऊपरी ६ फ़ुट भूमि में इन लवणों की मात्रा कम की जाये। इसके मुख्य-मुख्य ढंग निम्नलिखित हैं।

१. ऊसर भूमि में अच्छी प्रकार मेड़बन्दी की जाय। मेड़ें २ फुट ऊँची होनी चाहियें और नीचे ४ फुट मोटी और ऊपर २ फुट मोटी होनी चाहिये। इन मेंड़ों के अन्दर खेत की जोताई होती रहे और वर्षाऋतु में ऊपर का भरा हुआ पानी कभी-कभी निकाल दिया जाय। यह नमक इत्यादि लेकर किसी नाले में बह जाय तो नमक की मात्रा कम हो जाती है। पानी भरकर उसमें जोताई करने से ऊपर का नमक पानी में घुलकर निकल जाता है। वर्षा में इन खेतों में फिर पानी भर जाने दिया जाय जिससे वह लवण के घोल को पतला कर दे। और इसमें यदि सम्भव हो तो धान की खेती की जाय। यदि पहिले साल नहीं तो बार-बार पानी से मिट्टी धोकर उसे दो, तीन या चार बार निकालने के पश्चात् दूसरे साल अवश्य धान की फसल ली जा सकती है। जब तक खेत में पानी भरा रहता है, धान नहीं सूखता, हाँ, धान ऐसे खेतों में लगाये जायँ जहाँ वर्षा होने पर सरलता से पानी भर लिया जाय। यह तभी सम्भव है जब कि धान के खेत ऊसर के निचले हिस्से में हों जहाँ वर्षा का पानी इकट्ठा हो सके।

ऊसर भूमि में ढेंचा की हरी खाद का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। ढेंचा वर्षा के आरम्भ में बोकर उसकी फसल खेत में ही जोत दी जाती है। उसके पश्चात् उन खेतों में धान की रोपाई कर दी जाती है। गोबर या कम्पोस्ट की खाद भी ऊसर भूमि को उर्वरा बनाने में सहायक होती है। केवल इसका ध्यान रखना चाहिये कि ऊसर का नमक शीघ्रता से घुलकर साफ नहीं हो जाता। उसमें ऊपर बताये ढंग से कई साल खेती करनी पड़ती है तब धान के बाद रबी में भी सरसों, जौ आदि पैदा होने लगती है। ऊसर भूमि को उर्वरा बनाने में चीनी के कारखानों से निकली हुई रस की मैल (प्रेस मड) और शीरा भी अच्छी खाद है। इन वस्तुओं को ३०० मन प्रति एकड़ ऊसर भूमि में डालना चाहिये। चीनी के कारखाने के निकट रहनेवाले किसान इन खादों को प्रयोग कर सकते हैं।

सबसे कठिन ऊसर के टुकड़ों में मेड़बन्दी करके पानी भरने व निकालने का प्रबन्ध कर देना चाहिये जिससे नमक घुलते रहें। और इनमें घास उगने देना चाहिये और पशुओं की चराई बन्द कर देना चाहिये। इन घासों की जड़ें ऊसर भूमि को कुछ दिनों में पोली बना देती हैं फिर इनमें बबूल व बेर का जंगल लगा देना चाहिये। इस प्रकार लगभग ३० साल में खराब और कठिन ऊसर भी धान इत्यादि फसलों के लिये उर्वरा बनाये जा सकते हैं। बड़े-बड़े बबूल व बेर की जड़ें उस धरती के तह को तोड़ देती हैं जो पानी को नीचे नहीं जाने देती और ऊसर का मुख्य कारण है। जब पानी नीचे जाने लगता है तो ऊपरी भूमि का लवण भी घुलकर नीचे चला जाता है और ऊपर की भूमि में धान इत्यादि फसलें पैदा होने लगती हैं।

धरती की वह तह जो पानी को नीचे जाने से रोकती है उसे गढ़े बना कर भी तोड़ी जा सकती है। जगह-जगह ८ से १० फुट गहरे गढ़े बना दिये जाते हैं और ऊपर का सब पानी नमक सहित इन्हीं गढ़ों में होकर नीचे चला जाता है। इसका खर्चा अधिक होता है, क्योंकि गढ़े हर १५, २० फुट की दूरी पर पूरे खेत में बनाने पड़ते हैं। यह ढंग वहाँ सफल नहीं होता जहाँ पानी की तह ऊपर ही होती है। बहुधा ऊसर भूमि में पानी की तह दूर नहीं होती और वह इस खेत के पानी को भी नीचे जाने से रोक देती है। इस वर्ष एक नया अनुभव इस बात का किया जा रहा है कि भूमि को ३ फुट की दूरी पर ३ फुट गहराई तक काट दिया जाता है। यह काम एक बहुत शक्तिशाली ट्रैक्टर करता है और ३ फुट की गहराई तक भूमि पोली कर देता है। ऐसी भूमि में खरीफ की फसलें व धान अच्छे उगे हैं। कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार जिपसम (कैलशियम सलफेट) भी डालकर ऊसर भूमि को उर्वरा बनाया गया है। परन्तु जिपसम दूर से आता है और कई सौ मन प्रति एकड़ डाला जाता है, इसलिये अधिकतर किसान की आर्थिक पहुँच से बाहर हो जाता है।

सारांश यह है कि मामूली प्रकार का ऊसर ही पहिले छाँटना चाहिये। इसके लिये उत्तरप्रदेश की सरकार ने एक योजना ऊसरभूमि के जाँच की बनाई है और कृषि-विभाग के वैज्ञानिकों द्वारा भूमि की जाँच हो रही है, उन्हीं की राय से भूमि लेकर ऊपर बतलाये हुये ढ़ंग से जितना भी ऊसर उर्वरा हो सके उसको कृषि-योग्य बनाना चाहिये। बहुत कठिन ऊसरों के ठीक करने में बड़ा खर्चा व बहुत समय लगता है। और उचित तो यह होगा कि जिनके पास खराब ऊसर हैं उनमें केवल मेड़ें बाँधकर घास इत्यादि उगने दें और जितना भी हो सके, बबूल व बेर लगायें जो कुछ दिनों बाद इस भूमि को भी उर्वरा बना देगी। इस काम में २० या २५ वर्ष लगता है और बहुधा पिता के परिश्रम का लाभ पुत्रों को पहुँचता है।

भूमि रक्षण

उत्तर प्रदेश में छोटी-बड़ी नदियों के किनारे ऊँची-नीची ज़मीन तो सभों ने देखी होगी। यमुना व चम्बल के किनारे ऐसी ज़मीनें बहुत ज्यादा हैं। कम से कम तीस लाख एकड़ जमीन ऐसी हो गई है जो बिलकुल कट गई है और ऊँची-नीची होने के कारण उसमें खेती करना असम्भव है। इस कटी-पिटी

भूमि के ऊपर दरिया और नालों से थोड़े और फासले पर ऐसी जमीनें हैं जो खेती के लिये बिलकुल बेकार तो नहीं हो गई हैं, लेकिन ऊपर की अच्छी मिट्टी बह जाने से बहुत कमजोर हो गई हैं, और कहीं-कहीं तो खाली बालू या पथरीले व कंकरीले चट्टान रह गये हैं जिनपर कोई फसल अच्छी नहीं उगती। किसान भी ऐसी ज़मीनों में बरसात में जुताई करते रहते हैं जिसके फलस्वरूप मिट्टी और-और तेज़ी से कटती और बहती रहती है। इस किस्म की जमीनें जब फसल उपजाने लायक नहीं रह जातीं और उस पर कहीं-कहीं थोड़े से झाड़ या कुछ जंगली घास-फूस उगती है तो उसमें भी बिला रोक-टोक बकरियाँ व जानवर चरते रहते हैं और कोई हरियाली ज़मीन के ऊपर पैदा नहीं होने पाती। इसका फल यह होता है कि बरसात में तेज़ पानी की बूँदें सीधे ज़मीन पर पड़ती हैं और उसको तेज़ी से काटती व बहाती चली जाती हैं। भूमि रक्षण के लिये यह परम आवश्यक है कि ज़मीन की ढाल को देखते हुये ऐसे बन्ध डाले जायें कि पानी तेज़ी से न बह सके, जैसा कि आगे के दो चित्रों में दिखाया गया है।

चित्र नं० १
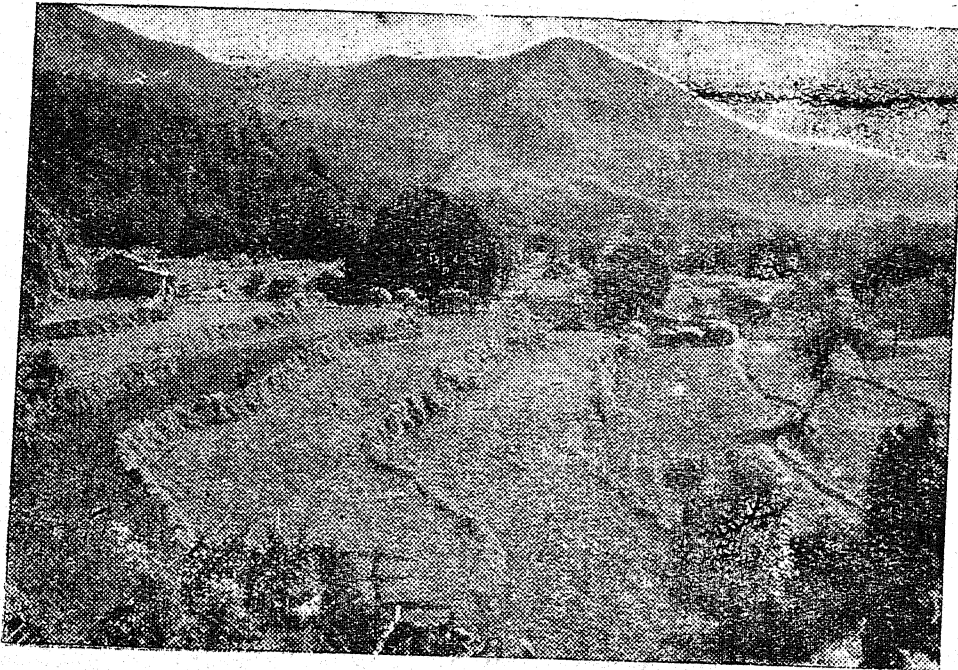
चित्र नं २

इस में बंध बाँधकर भूमि को समतल करके ऐसे खेत निकाले गये हैं कि पानी उसमें तेज़ी से न बहे और मिट्टी न कटे। बरसात के दिनों में ऐसे खेतों में विशेष रूप से घनी फ़सलें लगा दी जाती हैं जैसे कि मूँगफली, सनई, ज्वार, ढेंचा तथा लोबिया इत्यादि ताकि पानी का बूँद पत्ती पर पड़े और तेज़ी से भूमि पर न गिरे और मिट्टी को काट ले जाये। जो ज़मीन फ़सलों से या हरे जंगलों से या घास-फूस से ढकी रहती है वह नहीं कटती। मगर वह ज़मीनें जो बरसात में खाली रहती हैं और तेज़ पानी की बौछार जिनपर पड़ती हैं, वही सब से ज्यादा कटती हैं।

कहीं-कहीं खाली ज़मीनों की मिट्टी धूल होकर हवा में भी उड़ जाती है। ऐसी हवा की तेज़ी में धूल उड़ने से रोकने के लिये यह आवश्यक है कि थोड़ी-थोड़ी दूर पर घने वृक्षों की पंक्तियाँ लगा दी जायें। वृक्षों की पत्तियाँ हवा की तेजी को भी रोकती हैं और धूल को उड़ने से बचाती हैं। इसलिये वह भूमि जो हवा उड़ा ले जाती, वह इन वृक्षों की पंक्तियों से रुक जाती है।

बड़े-बड़े बन्ध जो बाँधे जावें वह नीचे से कम से कम छः या सात फीट चौड़े हों और उनकी ऊँचाई भी ढाई या तीन फीट से कम न हो। ऊपर की चौड़ाई कम से कम दो फीट होनी चाहिये। ऐसे बन्धों पर जमीन को पकड़ने वाली घासें जैसे मूँज या कांस, दूब या कुडज़ू इत्यादि घासें खूब घनी लगा दी जावें तो यह मेड़ें अपनी जगह पर कायम रहती हैं और बरसात में पानी को तेजी से नहीं बहने देतीं। ढलुआ जमीनों में बड़े-बड़े खेतों के अन्दर छोटे खेत भी छोटे-छोटे मेंड़ बनाकर तैयार कर देने चाहियें जिनका रकबा सात-आठ बिसवा से ज्यादा न हो। इन छोटे टुकड़ों के चारों ओर जो मेड़ें होंगी उनकी चौड़ाई व ऊँचाई एक फीट से अधिक रखने की आवश्यकता नहीं है, ऐसा करने से बरसात का पानी छोटे खेतों में रुक जाता है और पूरा जोर लगाकर बड़े बन्धों को नहीं काटता बल्कि नीचे धरती में चला जाता है और नमी को कायम रखता है। ढलुआ भूमि में जहाँ पानी का बहुत जोर हो, दो-एक जगह पानी निकलने के लिये पक्का रास्ता बना देना चाहिए ताकि पानी रुक कर उसके ऊपर से बह जाये और मिट्टी को साथ न ले जाये और न जमीन ही काट सके। ढलुआ जमीन पर जहाँ कहीं भी जुताई हो वह ऐसी होनी चाहिये कि हल उसी सीध में चलाये जायें कि जिधर को ढाल है, और पानी बहता है। ऐसी जमीनों में जितनी जुताई या बुआई हो वह ऐसी होनी चाहिये कि पानी को तेजी से बहने से रोके, वह ढाल को काटता हुआ होना चाहिये। ताकि हल के बनाये हुये हर नाली व मेंड में पानी रुक जाये। जैसा कि आगे के चित्र में दिखाया गया है।
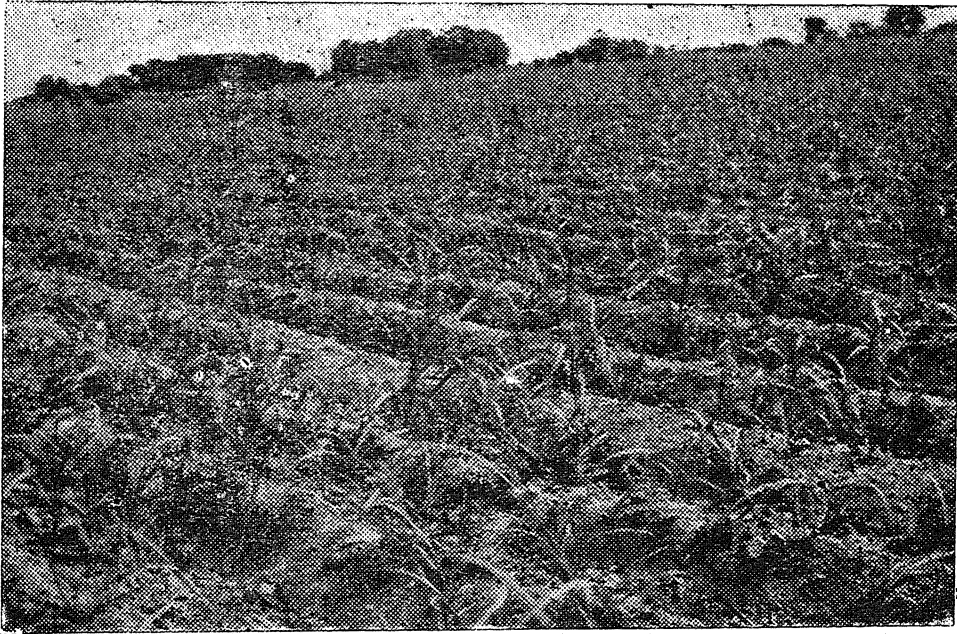
ढलुई कटने वाली जमीनों को बरसात व जाड़े में कभी भी खाली नहीं छोड़ना चाहिये। बरसात में ग्वार, सनई तथा मूँग इत्यादि के फसलों से ढके रहना चाहिये और जाड़े में सेहूँ तारामीरा, चना तथा अलसी आदि फसलें बराबर उगाते रहना चाहिये। सेहूँ या तारा की फसल बलुई ऊँची-नीची जमीन में अच्छी पैदा होती है और जमीन को जाड़े की बरसात व हवा, दोनों से बचाती है। जिन खेतों में फसलें अच्छी होती हैं वह जमीन न हवा से उड़ सकती है, न तेज पानी से बह सकती है। यदि बरसात कम भी हो तब भी किसान को इन फसलों की अच्छी पैदावार होती है।

जिन ढालू जगहों में जमीन कटने का भय हो वहाँ साल दो साल के के लिये चराई रोक देना चाहिये या ऐसी जमीनों को तीन-चार टुकड़ों में करके थोड़े-थोड़े जानवर छोड़ना चाहिये ताकि पौधों तथा जंगली घास को उगने का अवकाश मिले और वह बढ़ के एक बार भूमि को ढक ले। तब उसमें थोड़े जानवर छोड़ना चाहिये। ऐसा करने से जानवरों को चारा अच्छा मिलता है तथा भूमि भी कटने से बचती है। ढलुये खेतों में खेती का एक अच्छा ढंग यह भी है कि ढाल के आरपार ७५ फीट चौड़ी पट्टियों में ज्वार व मक्का आदि की फसल बोई जावे। और हर पट्टी के बीच में २५ फीट चौड़ी मूँगफली, लोबिया, मूँग तथा मोथी अधिक ऊँची न होने वाली बोई जावे। ऐसा करने से यह होता है कि ज्वार व मक्के के खेत से जो मिट्टी बहती है वह मूँग, लोबिया आदि की फसलों में रुक जाती है और मिट्टी बरसात में कट कर नाले तक नहीं पहुँच पाती।

पानी का उचित प्रयोग करने के लिये यह भी आवश्यक है कि गाँवों मे जो पुराने ताल-पोखरे व गड्ढे हैं उनकी खोदाई करके जलाशयों को ठीक रक्खा जावे। यह जलाशय पानी को भी रोकते हैं और जगह-जगह गाँव में फैले होने के कारण बहुत सा बरसात का पानी इन्हीं जलाशयों में रुका रहता है जिसमें मछली व सिंघाड़ा पैदा होता है तथा सिंचाई के भी काम आता है।

जहाँ यह जलाशय नहीं होते हैं या उथले होते हैं वहाँ बरसात का सब पानी पास के नदी-नालों में मिट्टी को काटता चला जाता है। ऐसे गाँव में खेत भी ज्यादा कटते हैं और बाद में जाड़े व गर्मी में पानी की कमी से फसलें भी सूखती हैं। इसलिये भूमि रक्षण के लिये जलाशय होना आवश्यक है। यदि हर दस या पन्द्रह एकड़ में एक पोखरा हो तो बरसात का अधिक पानी उसमें जमा होकर बरसात के बाद जानवरों के पीने व सिंचाई के लिये मिलता रहता है।

बहुत कुछ इन्हीं जलाशयों का पानी बरसात में जो नीचे जमीन में जाता है वही पानी हमारे कुवों व नलकूपों में भी पहुँचता रहता है। यही कारण है कि जहाँ जलाशय अधिक होते हैं वहाँ कुवों व नलों में पानी की कमी नहीं होती। सारांश यह है कि यदि बरसात का सारा पानी खेतों में मेंड़ व बंध बांध कर और बह कर निकलने पर जलाशयों में व फसलों में हम रोक लें, तो हम उसी महाजन की तरह जल में धनी रहेंगे जो अधिक धन पाते ही तुरन्त ही अपनी मूर्खता से उड़ा नहीं देता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जल ही किसानी का सबसे बड़ा धन है। यदि हमारा जल व मिट्टी हमारे पास रहे तो हम हरी खाद उगाकर भूमि की उर्वरा शक्ति व अपनी पैदावार अधिक बढ़ा सकते हैं।

अध्याय ५

उन्नत बीज

अच्छे बीज की आवश्यकता

खेतों की उन्नति और पैदावार बढ़ाने के लिए उन्नतिशील बीज का उपयोग अत्यन्त आवश्यक है । यहाँ पर बीज के सम्बन्ध में कुछ साधारण बातें जान लेना आवश्यक है । बीज में पौधे का लघु आकार निहित होता है । इसके अतिरिक्त उसमें अंकुर के लिए उस अवधि तक के लिए भोजन संगृहीत होता है जब तक कि अंकुर की जड़ें धरती से उसके लिए भोजन न प्राप्त करने लगें । बीज में अंकुर के लिए जो भोजन संगृहीत रहता है वह स्टार्च या प्रोटीन के रूप में होता है जिससे पौधा विकास प्राप्त करता है ।

यह तो हम सभी जानते हैं कि प्रत्येक किस्म के बीज जैसे गेहूँ, जौ, धान या अरहर की अनेक जातियाँ होती हैं । एक किस्म के बीज की अनेक जातियों की परीक्षा करने के बाद जो जाति सबसे अधिक पैदावार देनेवाली पाई जाती है उसे ही उन्नतिशील बीज कहा जाता है । इस प्रकार उन्नतिशील बीज का पता लगाना किसी एक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है, अतएव यह काम राज्य की ओर से किया जाता है । कृषि-विभाग अपने देश और अन्य देशों से बीजों की विभिन्न जातियाँ एकत्र करके उनकी परीक्षा करता है और जो बीज सबसे अच्छा सिद्ध होता है उसे उन्नतिशील बीज की संज्ञा देता है । ये बीज साधारण बीजों से कहीं अच्छे होते हैं ।

अधिकतर किसानों को यह बात मालूम नहीं है कि पौधे भी जीवधारी हैं और बहुत सी बातों में ये पशुओं से मिलते-जुलते हैं । जैसे पशुओं में नर और मादा होते हैं उसी तरह पौधों में भी नर और मादा होते हैं । अन्तर केवल इतना है कि पशुओं में नर और मादा अलग-अलग होते हैं । सिर्फ दो ही चार जीवधारी जैसे केंचुआ इत्यादि ऐसे हैं जिनमें नर और मादा एक ही में होते हैं, परन्तु पौधे प्रायः ऐसे ही होते हैं जिनमें नर और मादा भाग एक ही पेड़ में होते हैं । केवल कुछ पौधे ऐसे हैं जिनमें नर-मादा अलग-अलग होते हैं जैसे पपीता, परवल इत्यादि । इनकी पहिचान यह है कि जो पौधे नर होते हैं उनमें केवल फूल लगते हैं, फल नहीं लगते । अधिकतर पौधों के फूल में नर और मादा दोनों किस्म के हिस्से मौजूद होते हैं और जब मक्खियों के फूलों के अन्दर आने-जाने के कारण से, जो फूलों का रस चूसने आती हैं या

हवा से उड़कर इनके नर व मादा भाग आपस में मिल जाते हैं तब फल पैदा होते हैं। इसलिये दो जाति के पौधे के नर व मादा भाग को आपस में मिला देने से यह किया जा सकता है कि एक तीसरी जाति का बीज पैदा किया जावे। आप खच्चर को लीजिये, फौज में बोझ ढोने के लिये ऐसे पशु की आवश्यकता हुई जो काफी बोझ भी उठा सके और तेज भी चल सके। गदहे में बोझ उठाने की अधिक ताकत है किन्तु तेज नहीं चल सकता है और घोड़ा तेज चलता है लेकिन अधिक बोझ नहीं ले जा सकता है, इसलिये इन दोनों का जोड़ा मिलाकर एक तीसरी नस्ल खच्चर की पैदा की गई जिसमें दोनों गुण हैं अर्थात् यह तेज भी चलता है और बोझ भी अधिक ले जाता है। इसी प्रकार दो किस्मों के जोड़े मिलाकर एक तीसरी किस्म का अनाज पैदा किया जा सकता है जिसमें दोनों जातियों की अच्छाइयाँ हों। दूसरी बात यह है कि जिस नस्ल का बीज बोया जावेगा उसी का पौधा पैदा होगा। जैसे हिसार बैल और हिसार गाय के बच्चे हिसार ही नस्ल के पैदा होते हैं और मुर्रा नस्ल की भैंस का बच्चा भी मुर्रा नस्ल का होता है। उसी तरह से मुंडे गेहूँ का बीज बोने से मुंडा गेहूँ ही पैदा होता है और सींकुरदार गेहूँ बोने से सींकुरदार गेहूँ पैदा होता है। यह समानता इस दरजे तक पहुँची हुई है कि जैसे एक ही किस्म का चारा दाना होने पर भी हिसार बैल और खैरीगढ़ नस्ल के बैल की लम्बाई-चौड़ाई में हमेशा अन्तर होता है, उसी प्रकार से अच्छे गेहूँ जैसे पूसा नं० ४ कानपुर नं० १३ पूसा नं० ५२ और पंजाब ५९१ और देशी गेहूँ की बनावट और पैदावार में अन्तर होता है, चाहे खाद पानी जुताई इत्यादि समान ही हों। अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि जुताई, पानी, खाद सब एक समान रहते हुये भी अच्छी किस्म का बीज खेत में बोने से पैदावार में सवाया-ड्योढ़ा या किसी दशा में जैसे गन्ना इत्यादि में दुगुना अन्तर हो जाता है।

यह प्रायः देखा गया है कि किसान लोग सरकारी गोदामों से अच्छा बीज ले जाते हैं। एक साल या दो साल या कभी-कभी चार या पाँच साल तक उसको बोते हैं और उसके बाद फिर खराब बीज बोना आरम्भ कर देते हैं और पूछने पर यह जवाब देते हैं कि बीज सरकारी गोदाम से नहीं मिला था या और कोई ऐसा ही मामूली सा कारण बतला देते हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि किसान अच्छे बीज के गुण और उनसे जो लाभ पहुँचते हैं, उनको अच्छी तरह से नहीं समझते हैं; नहीं तो वह ऐसी-ऐसी छोटी कठिनाइयों के कारण अच्छा बीज छोड़कर खराब बीज कभी न बोते। किसानों के खेतों में उत्तम गेहूँ के बीज जो प्रदर्शन किये गये उनके चार जिलों से प्राप्त हुये आँकड़े आगे दिये गये हैं।

उन्नतिशील बीज से गेहूँ की पैदावार में बढ़ोत्री
१९४९-५० रबी फसल में

जिला	खेतों की संख्या	पैदावार प्रति एकड़		प्रति एकड़ पैदावार में बढ़ोत्री	
		उन्नतिशील बीज से मन	घटिया बीज से मन	मन	प्रतिशत
मेरठ	४४	२४.२६	१८.९९	५.२७	२७.७२
मुरादाबाद	४८	१७.९७	१५.१३	२.८४	१८.८१
इटावा	५०	१३.३१	१०.०९	३.२२	३१.९४
फैजाबाद	४८	१४.१०	८.५८	५.५२	६४.३०

यह आँकड़े उत्तरप्रदेश में केवल इन्हीं चार जिलों से एकत्रित किये गये थे।

दो या एक ही प्रतिशत ऐसे किसान होंगे जिनके पास फसलों की पैदावार के आँकड़े साल के बाद साल कई वर्ष तक रखा जाता हो। ऐसी दशा में बीज की अच्छी परख के लिये किसान को चाहिये कि पहिले वर्ष वह किसी नये बीज को अपने एक खेत के आधे भाग में बोवें। उस खेत के बाकी हिस्से में अपना पुराना बीज बोवें और फसल तैयार होने पर पैदावार को तौलकर नये अच्छे बीज की पैदावार की अपने पुराने देशी बीज से तुलना करें और यदि वह पैदावार में बढ़ जाय और अधिक कीमती होने से उनको स्वयं लाभदायक ज्ञात हो तो वे नये बीज का प्रयोग करें। और नये बीज की पैदावार यदि कम होती है तो वह कृषि-विभाग के कर्मचारियों से इस बात को स्पष्टतया बतलावें। आरम्भ में इन छोटी-छोटी तुलनाओं का यह भी परिणाम होता है कि यदि कोई ऐसी बात किसान को बतलाई गई है जो कि उसकी धरती में या उनके गाँव में हानिकर है तो वह पहिले साल प्रगट हो जावेगी और किसान और उन्नत खेती का प्रचार करनेवाले सावधान हो जावेंगे। कृषि-विभाग सर्वदा इस बात का प्रयत्न करता है कि वही उन्नत बीज और उन्नत खेती का ढंग बताया जावे जिसमें पूर्ण सफलता की आशा हो और जो सरकारी फार्मों पर प्रयोगों के बाद लाभदायक सिद्ध हो चुके हों। इसलिये बतलाये हुये नये बीज के असफल होने का डर बहुत कम होता है। किन्तु कभी-कभी ऐसा धान के फसल में होता है कि जिस जाति का बीज एक जिले में सफल होता है वह दूसरे जिले में उतना सफल नहीं होता। या जो बीज एक बलुए खेत में बहुत अच्छा पदा

होता है, कभी-कभी अधिक पानी इकट्ठा होनेवाले खेत में उतना सफल नहीं होता। इसलिये यह आवश्यक है कि किसान नये बीज की उपरोक्त रीति से पुराने बीज से तुलना कर लें और स्वयं पूर्ण रूप से निश्चित कर लिया करें और इसका भी सही-सही अनुमान लगा लें कि उन्नत बीज और पुराने बीज के पैदावार में कितना अन्तर है। ऐसा कर लेने पर वह अच्छा उन्नत बीज छोड़कर कदापि पुराना बीज न बोवेंगे। यदि कभी ऐसा हुआ कि नया बीज उनके गाँव में या खेतों के लिये उत्तम सिद्ध नहीं हुआ तो ऐसी दशा में थोड़े ही रकबे में उनको ज्ञात हो जावेगा और किसान को कोई बड़ी हानि नहीं पहुँचेगी।

बहुत से लोग इस बात को नहीं समझते कि उन्नत बीज क्या चीज है। गेहूँ उनकी निगाह में सब एक प्रकार का दिखाई देता है। यहाँ यह बतलाना उचित होगा कि कृषि विभाग उन्नत किया हुआ बीज कहाँ से लाता है और यह कैसे पैदा किया जाता है। उदाहरण के तौर पर धान ले लिया जावे। इसकी हजारों जातियाँ जो उत्तरप्रदेश में पैदा होती हैं या और बाहर मुल्कों से मँगाकर इकट्ठा की गई, इन सबको अलग-अलग सरकारी फार्म में बोया गया और इनकी तुलना की गई। जो पैदावार और कीमत को देखते हुए बहुत अच्छे सिद्ध हुये उनको अलग कर लिया गया। पहली छटाई के बाद यह मालूम हुआ कि कुछ बढ़िया धान थोड़े दिन पिछड़ जाने के कारण खराब हो जाते हैं क्योंकि २५ सितम्बर के पूर्व जो धान पूर्णतया पककर तैयार नहीं होते उनमें गंधी मक्खी लग जाती है। यह धान के दाने में जब कि वह दूध की दशा में होता है उसमें से सब दूध चूस लेती है और धान के अंदर चावल नहीं पड़ता। नतीजा यह हुआ कि बहुत से अच्छे धान जैसे देहरादून की बाँसमती या टाइप नं० १ या और भी देर में पकनेवाले धान पूर्वी जिलों में गंधी मक्खी के कारण सफल नहीं हुये। इसलिये उत्तर-प्रदेश के पूर्वी भाग के लिये शीघ्र से शीघ्र पकनेवाले धान जैसे नगीना २२, टाइप १३६, टाइप ३२, टाइप २७, ६४ ए और चाइना १० इत्यादि छाँटे गये।

टाइप १३६ दो जाति के धानों का जोड़ा मिलाकर निकाला गया। यह टाइप १०० और टाइप १ का बच्चा है। इसमें टाइप एक की बारीकी है और टाइप १०० की अधिक पैदावार देने की शक्ति है। टाइप १०० मोटा और अधिक पैदावार देनेवाला धान है और टाइप १ बहुत बारीक और उत्तम चावल-वाला धान है। इनका जोड़ा मिलाने से दोनों के अच्छे गुण टाइप १३६ में आ गये। वह बारीक भी है और सब धानों से अधिक पैदावार देता है। अधिक पैदावार लेने के लिए टाइप १३६ के पौधे की रोपाई आर्द्रा नक्षत्र के पहिले सप्ताह में कर देना चाहिये। देर में रोपाई करने से गंधी मक्खी इसको बड़ी हानि पहुँचाती है। इसका बीज रोहिणी नक्षत्र आरम्भ होते ही मई के अन्तिम सप्ताह में ही सिंचाई करके बो देना चाहिये।

टाइप १३६ केवल एक उदाहरण है। इसी तरह के दो जातियों के गुणों को मिलाकर गेहूँ और गन्ने में बहुत से उन्नत बीज पैदा किये गये हैं।

इसका सदा प्रयत्न किया जाता है कि यदि एक किस्म के गेहूँ और गन्ने में एक गुण है और दूसरे किस्म के गन्ने और गेहूँ में दूसरा गुण है तो आपस में उनका जोड़ा मिलाकर दोनों के अच्छे गुण इकट्ठा कर दिये जावें। ऐसी नई किस्में दोनों से अच्छी होती हैं। यह काम बराबर चलता रहता है और अच्छी-अच्छी नई किस्मों के गन्ने, गेहूँ, धान, अलसी, सरसों इत्यादि इसी प्रकार से पैदा किये जाते हैं। जो पैदावार में बहुत सफल होते हैं वे किसानों को दिये जाते हैं। इस किस्म के काम पर हमारी सरकार लाखों-करोड़ों रुपये भारतवर्ष में खर्च करती है और खेती करनेवालों को यह सुनकर आश्चर्य नहीं करना चाहिये कि हमेशा नये-नये और उन्नत जाति के बीज कृषि-विभाग पैदा किया करता है। ये बीज उन्हीं किस्मों के हैं जिनमें कि बड़े-बड़े वनस्पति शास्त्रकारों ने अच्छी-अच्छी जातियों का जोड़ा लगाकर जहाँ तक हो सका है सारे अच्छे गुण इकट्ठा कर दिये हैं।

उन्नत बीज की एक यह भी खूबी है कि उसको जब कभी अच्छी जुताई, खाद, पानी इत्यादि मिल जाती है तो उसकी फसल बढ़ती है और पैदावार बहुत अधिक होती है। उदाहरण के तौर पर अच्छे जाति के गन्ने ४२१ या ४५३ की पैदावार प्रायः १००० मन गन्ना या १०० मन गुड़ प्रति एकड़ या इससे भी अधिक हो जाती है, किन्तु यदि ज्यादा खाद, पानी और जुताई का प्रबन्ध करके देशी गन्ने से भी इतनी पैदावार लेने की कोशिश की जाती है तो गन्ना गिरकर खराब हो जाता है और उतनी भी पैदावार नहीं देता है जितनी कि मामूली खेत में पैदा होता था। यही दशा गेहूँ की है। यदि पूसा नं० ४, कानपुर १३, पंजाब ५९१ और पूसा नं० ५२ की खेती अच्छी तरह से की जाये और खाद, पानी का पूरा प्रबन्ध हो तो ५० मन प्रति एकड़ तक पैदावार पहुँच जाती है। यदि उतनी ही बड़ी फसल देशी गेहूँ से लेने का प्रयत्न किया जावे तो फसल गिर जाती है और पैदावार बढ़ने के बदले कम हो जाती है। अच्छे बीज की लगभग वही दशा है जो बड़ी नसल के बैल की होती है जो बड़े-बड़े हल और गाड़ियाँ खींच सकता है किन्तु यदि वही खिलाई छोटे जाति के बछड़े की की जावे तो वह बढ़ने के बजाय या तो बीमार हो जावेगा या बहुत मोटा होकर बेकार हो जावेगा। नतीजा यह होगा कि मेहनत और पैसा जो अधिक खिलाई में खर्च होगा वह किसान को और छोटे बैल को हानिकर सिद्ध होगा।

अच्छे बीज की विशेषता इतने पर ही नहीं समाप्त हो जाती है कि उसकी पैदावार प्रति बीघा अधिक होती है। किन्तु बाजार में उसका दाम भी अधिक मिलता है। अनुभव से सिद्ध हुआ है कि उन्नत गेहूँ देशी गेहूँ से लगभग २० प्रतिशत

अधिक पैदा होता है। अब यदि यह ७ प्रतिशत महँगा बिक जावे जैसा प्रायः होता है तो प्रति एकड़ आमदनी में बहुत बड़ा अन्तर पड़ा जावेगा जैसे देशी गेहूँ की पैदावार १२ मन प्रति एकड़ हुई तो १५) प्रति मन की दर से इसकी कीमत १८०) हुई और उसी खेत में एक उन्नतिशील गेहूँ बोने से १४½ मन पैदावार हुई जिसकी कीमत कम से कम १६) मन के हिसाब से २३२) होगी। गेहूँ की खेती में जब किसान अपने हाथ से करते हैं तो खर्चा करीब १५०) प्रति एकड़ तक पहुँच जाता है। इस खर्चे को ध्यान में रखते हुये यह प्रत्यक्ष है कि देशी गेहूँ बोनेवाले किसान को यदि गेहूँ से १८०) प्रति एकड़ आमदनी होती है तो उसको ३०) मुनाफ़ा होता है और जो किसान उन्नत बीज का प्रयोग करते हैं उनको गेहूँ से २३२) प्रति एकड़ की आय होती है और बजाय ३०) प्रति एकड़ के उनका मुनाफ़ा ८२) प्रति एकड़ तक पहुँच जाता है अर्थात् किसान यदि उन्नत गेहूँ बोवें तो उनकी आमदनी इतनी अवश्य बढ़ जावेगी जितना कि उस खेत का पाँच या छः वर्ष का लगान होगा। केवल अच्छा बीज ही बोने से किसान का लाभ लगभग तीन गुना हो जाता है।

बीज साफ रखने का ढंग

प्रायः यह देखा गया है कि कुछ किसान जो उन्नत प्रकार के शुद्ध बीज सरकारी गल्ला गोदामों से ले जाते हैं वे उन्हें देशी बीज से मिलवाँ करके खराब कर देते हैं इसलिये हर साल उन्नत और साफ बीज की उनको आवश्यकता होती है। हरएक जिले में हर साल तीन से चार लाख मन तक बीज बोया जाता है और सरकारी गल्लागोदाम हरएक जिले में हर साल बीस या पच्चीस हजार मन से अधिक शुद्ध बीज नहीं बाँट सकते। यदि किसान हर साल इसी प्रकार उन्नत बीज को असावधानी के कारण अपने खलियानों और गोदामों में देशी बीज से मिलवाँ करते रहेंगे तो किसी जिले की पूरी तो क्या आधी माँग भी उन्नत बीज की पूरी नहीं की जा सकती। अतएव सब किसानों को स्वयं बीज शुद्ध रखना चाहिये और अपने उन्नत बीज की पूँजी को बढ़ाना चाहिये। बीज को साफ़ रखने का सरल ढंग नीचे वर्णन किया गया है। प्रत्येक बीघा पीछे आधा विस्वा या अपने कुल खेत का चालीसवाँ हिस्सा उत्तम बीज पैदा करने के लिये रख छोड़ना चाहिये। उदाहरण के रूप में जिस किसान को ५ बीघा गेहूँ की खेती करना है उसको २½ बिस्वे का छोटा टुकड़ा बहुत उत्तम और शुद्ध बीज पैदा करने के लिये अलग रख छोड़ना चाहिये। इस छोटे टुकड़े में अच्छी तरह खाद देना चाहिये और यह टुकड़ा कुएँ या तालाब या नहर के पास होना चाहिये जिससे फसल को सिंचाई की कमी से हानि न हो। इस टुकड़े की उपज दूसरे टुकड़ों की उपज से अलग दाईं जाय और रक्खी जाय क्योंकि बीज के मिलवाँ होने का सबसे अधिक डर खलियान में ही होता है। इस चुने हुए टुकड़े

में किसी और किस्म का एक भी बीज पैदा न होने देना चाहिये । इस प्रकार जो शुद्ध बीज इस नं० १ के टुकड़े से प्राप्त हो उसे टुकड़े नं० १ व २ में बोना चाहिये जिसका रकबा प्रति बीघा ३ बिस्वा यानी ५ बीघे में १५ बिस्वा होगा । टुकड़े नं० २ यानी १५ बिस्वे की उपज सारे खेत के बीज के लिये क़ाफी होगा । बाक़ी खेत यानी लगभग ४ बीघा की उपज फिर कभी स्वयम् बीज के काम में नहीं लाना चाहिये । उसको या तो बाजार में बेच दिया जाय या खाने के काम में लाया जाय या दूसरे किसानों को बीज के लिये दे दिया जावे ।

ऐसा करने से किसान को प्रत्येक बीघा पीछे केवल आधे बिस्वा की उपज को ही साफ श्रौर शुद्ध रखना पड़ेगा बाकी खेत की उपज आप से आप ही शुद्ध रहेगी क्योंकि हर दो साल में ही आधे बिस्वे की पैदावार पूरे पाँच बीघे के लिये काफी होगी । टुकड़ा नं० १ जिसका रकबा ५ बीघे पीछे केवल २।। बिस्वा है उसकी पैदावार को सदा अत्यन्त सावधानी से शुद्ध रखना चाहिये और उसी बीज को टुकड़े नं० २ में जिसका कि रकबा ५ बीघे में केवल १५ बिस्वा होगा बोना चाहिये श्रौर इस टुकड़े नम्बर २ की पैदावार बाकी खेत में बोना चाहिये । यदि हमेशा यही ढंग रक्खा जावे तो किसान नं० २ वा ३ के टुकड़ों के बारे में जिनका कि रकबा कुल खेत का लगभग ६८ प्रतिशत है चाहे जितना भी असावधान रहे परन्तु बीज अशुद्ध श्रौर मिलवाँ नहीं हो सकता । जो किसान इस नियम का पालन करेंगे वह कम से कम लागत और मेहनत में उत्तम से उत्तम बीज प्राप्त कर लेंगे । प्रति बीघा आधा बिस्वा की पैदावार शुद्ध रखने के लिये उन्हें उतना भी खर्चा और मेहनत नहीं करनी पड़ेगी जितनी कि बुवाई के समय सरकारी गल्ला गोदाम से बीज लाने और फसल कटने पर गोदाम पर पहुँचाने में पड़ती है ।

किसान अपना बीज इस तरह शुद्ध रक्खेंगे तो गोदाम से शुद्ध बीज लेकर दूसरे किसान भी लाभ उठा सकेंगे । यदि किसान केवल सरकारी गल्ला-गोदाम के ही भरोसे रहेंगे तो उनका बीज कभी साफ नहीं रह सकता और उनको बुवाई के समय उत्तम व शुद्ध बीज प्राप्त करने के लिये हर तरह की कठिनाइयाँ उठानी पड़ेंगी । कृषि-विभाग सूबे भर के किसानों की शुद्ध बीज की माँग को पूरा नहीं कर सकता । किसानों को ऊपर लिखा हुआ बीज उत्तम और शुद्ध रखने का साधन उपयोग में लाना ही पड़ेगा । उनको यह प्रण कर लेना चाहिये कि हर साल टुकड़ा नं० १ की पैदावार टुकड़े नं० १ व २ में और टुकड़ा नं० २ की पैदावार टुकड़ा नं० ३ में बोना है । जब कि उसको तीनों टुकड़ों की पैदावार पूर्णतया शुद्ध दिखाई दे तब भी उसे टुकड़े नम्बर १ को शुद्ध रखने का नियम क़ायम रखना चाहिये । ऐसा करने से बीज कभी मिलवाँ नहीं हो सकता और किसान को १ बीघा पीछे केवल आधा बिस्वा ही खेत की सफाई का ध्यान रखना पड़ेगा ।

उन्नतिशील बीज की कमी को पूरा करने के लिये कृषि-विभाग ने पिछले कुछ वर्षों में अरहर (और लोबिया नम्बर १ का बीज ३००० से ४००० गुना) और मूँग नं० १ का बीज १ साल के अन्दर ही ४०० से ५०० गुना तक पैदा करके रास्ता दिखा दिया है। गेहूँ का उत्तम बीज भी आसानी से १०० से २०० गुने तक पैदा करने का ढंग पूरा-पूरा सफल हो चुका है। यदि साल भर के अन्दर १ मन से ४०० या ५०० मन तक या १०० से २०० मन तक बीज पैदा हो सकता है तो कोई कारण नहीं है कि बीज की कमी से कोई उत्तम बीज न बो सके। इस तरह जल्दी बीज बढ़ाने के ढंग नीचे चित्रों में दिखलाये गये हैं। यदि हाथ से इस तरह बीज बोया जाय, तो अवश्य पैदावार उसी तरह होगी जैसा कि ऊपर बताया गया है।

इस काम के लिये एक नया और सस्ता लकड़ी का यंत्र लेखक ने बनाया है, उसका चित्र नीचे देखिये। इसे अंगरेज़ी में डिबलर कहते हैं।
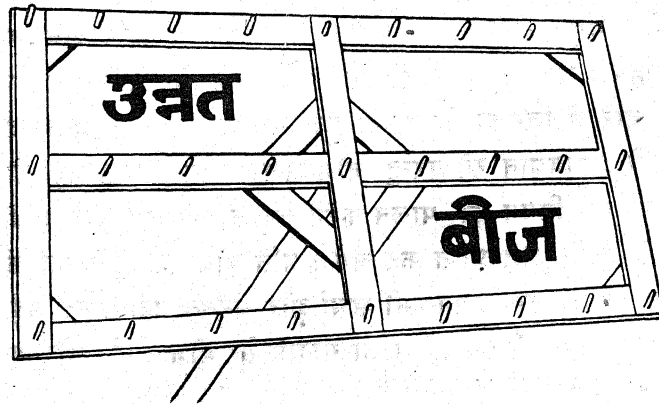
इस यंत्र से एक आदमी बड़ी आसानी से झुरमुठ की तरह ठप्पे मारकर २७-२७ छेद खेत में बनाता चला जाता है और उसके पीछे दो या तीन औरतें या लड़के इन छेदों में दाने डालते चले जाते हैं। इस प्रकार ७ या ८ आदमी एक दिन में एक एकड़ बो लेते हैं। इह प्रकार बोने से केवल ६ सेर गेहूँ का बीज एक एकड़ में लगता है। साधारण खेती में जो १। मन प्रति एकड़ गेहूँ का बीज डाला जाता है, उसमें से ४४ सेर प्रति एकड़ की बचत हो जाती है, जिसकी कीमत ८ आदमियों की एक दिन की मजदूरी से लगभग दुगुनी रहेगी। इस तरह बोने से पैदावार में कमी नहीं होती, परन्तु निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये:—

१. बोते समय खेत में नमी काफी हो, ताकि सब दाने उग आयें। अच्छा तो हो कि पलेवा करके बोया जाय।
२. कोई बीज घुना या खराब न होना चाहिये।

३. बीज बराबर सवा इंच की गहराई पर पड़े, ताकि कोई बहुत नीचे पड़कर सड़ न जाय।

४. खेत में खाद-पाँस काफी हो, ताकि गेहूँ के पौधों से कल्ले खूब निकलें व खेत अच्छी तरह भर जाय और अच्छी उपज हो।
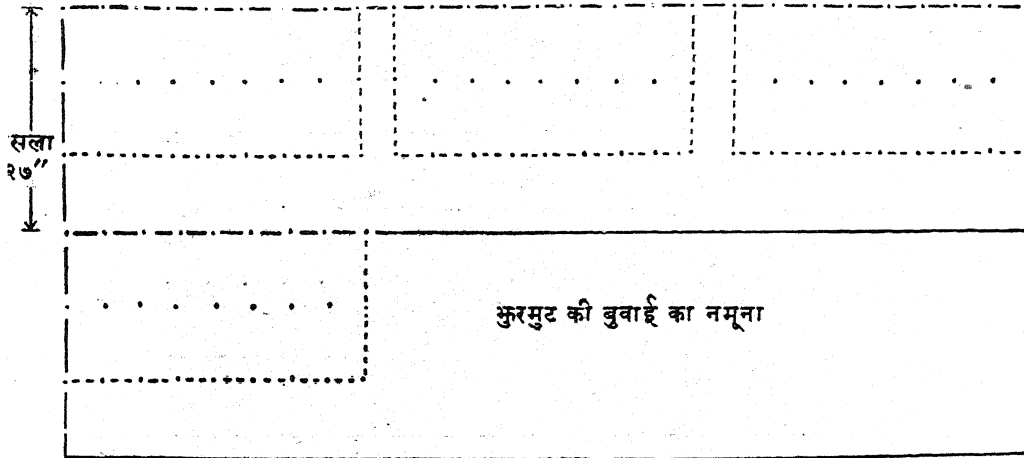
इस तरह की बोवाई में गेहूँ लाइन से बोया जाता है। लाइन से लाइन का अन्तर ९ इंच होता है और दाने से दाना ४½ इंच के फासले पर पड़ता है जैसा कि ऊपर के चित्र में दिखाया गया है। ऐसा बोया हुआ गेहूँ मोटा होता है और मामूली गेहूँ से पैदावार में बहुधा बढ़ जाता है।

इस रीति से बोये हुये बीज ऐसे मोटे, सुडौल और भारी होते हैं।
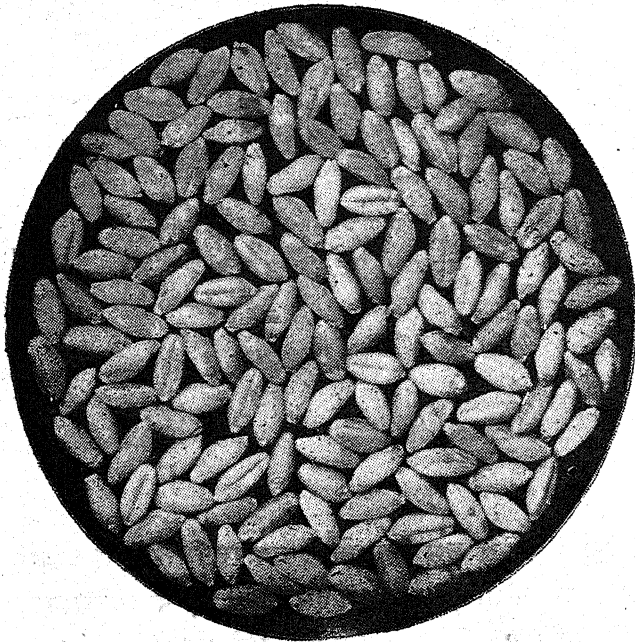
डिबलर से बोये खेत की तुलना साधारण गेहूँ की फसल से नीचे के चित्र में दिखलाया गया है। दोनों फसलें एक समान दिखलाई पड़ती हैं और पैदावार में भी कोई विशेष अन्तर नहीं होता।
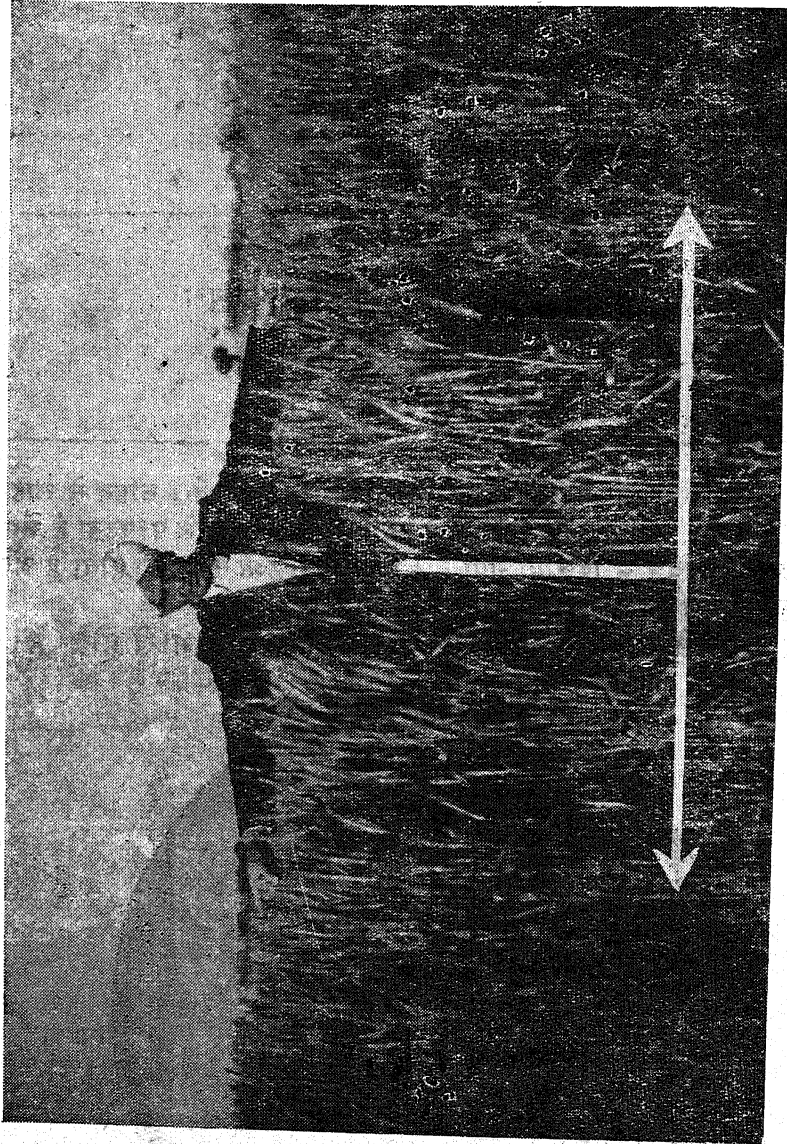
४० सेर प्रति एकड़ बीज से

५ सेर प्रति एकड़ बीज से

डिबलिंग के ढंग से कुछ किसानों ने बनारस जिले में जो बाबा राघवदास एम. एल. ए. व श्री अक्षयकुमार करण एम. एल. ए. के आदेशानुसार गेहूँ की बोआई की थी, उनके आँकड़े अगले पृष्ठ पर दिये गए हैं।

डिवलिंग का विवरण — केन्द्र मटुका (सेवापुरी)

क्र० सं०	नाम किसान	गाँव	क्षेत्र फल एकड़ में	क्षेत्र फल बिस्वे में	व्यय जो पड़ा खली की खाद जो दी गई	व्यय जो पड़ा मजदूरी	बीज की मात्रा जो डाली गई	उपज की मात्रा प्रति एकड़	उपज की मात्रा बोये हुए क्षेत्रफल में	विशेष विवरण
१	श्री तेजबहादुरसिंह	कतबारूपुर	१।६४	१।२	ऽ७	।।)	२ छ०	४४ मन	।।ऽ७	चार आदमी आधे घंटे में बोये
२	श्री हरिमूरतसिंह	,,	१।३२	१	।ऽ२	१)	४ छ०	३६ मन	१ऽ५	चार आदमी एक घंटे में बोये
३	श्री सत्यनारायण उपाध्याय	बबुआपुर	१।६४	१।२	ऽ५	।।)	२ छ०	३२ मन	।।ऽ	२ आदमी एक घंटे में बोये
४	श्री सीताराम कुरमी	मटुका	१।६४	१।२	ऽ५	।।)	२ छ०	३० मन	।ऽ८।	२ आदमी एक घंटे में बोये
५	श्री राजाराम कुरमी	,,	१।६४	१।२	ऽ४	।।)	२ छ०	३२ ,,	।।ऽ	दो आदमी एक घंटे में बोये
६	श्री अंगनू कुरमी	,,	१।६४	१।२	ऽ५	।।)	२ छ०	३२ ,,	।।ऽ	४ आदमी आधे घंटे में
७	श्री द्वारिका कुरमी	,,	१।६४	१।२	ऽ५	।।)	२।।छ०	३२ ,,	।।ऽ	चार आदमी आधे घंटे में
८	श्री गिरजाशंकर कुनवी	,,	१।६४	१।२	ऽ६	।।)	२ छ०	३६ ,,	।।ऽ२।।	चार आदमी आधे घंटे में
९	श्री ठाकुर कुनवी	,,	१।६४	१।२	ऽ६	।।)	२ छ०	३६ ,,	।।ऽ२।।	दो आदमी एक घंटे में
१०	श्री मनोहरसिंह	नरायनपुर	१।६४	१।२	ऽ५	।।)	२ छ०	३६ ,,	।।ऽ२।।	दो आदमी एक घंटे में
११	श्री महादेवसिंह	,,	१।६४	१।२	ऽ५	।।)	१।।। छ०	३२ ,,	।।ऽ	ो आदमी एक घंटे में
१२	श्री शुकदेवसिंह	जिवरामपुर	१।६४	१।२	ऽ६	।।=)	२ छ०	४० ,,	।।ऽ५	एक आदमी २।। घंटे में
१३	श्री सीताराम लोहार	,,	१।६४	१।२	ऽ४	।।)	२ छ०	२८ ,,	।ऽ७।।	दो आदमी एक घंटे में
१४	श्री रजवंतसिंह	अर्जुनपुर	१।३२	१	ऽ६	।।)	३।।छ०	४५ ,,	१।ऽ५।।	दो आदमी ३ घंटे में
		योग	१।४	८।वि०	२ऽ१	७।।=)	३१।।।छ०		८ऽ८।।	

मैंने इस परिणाम को देखा। इसका बीज भी बहुत बड़ा-बड़ा है, यह भी स्मरण रखने योग्य है। राघवदास ३०-५-५१

अक्षयकुमारकरण एम० एल० ए०,
संचालक, सेवापुरी आश्रम

कृष्णसेवक द्विवेदी
सं० कृ० नि० मटुका सेवापुरी
३०–५–५१

यह बोवाई खुरपी से की गई थी इसलिये इसमें मजदूरी बहुत लग गई थी। इसके बाद लकड़ी का सस्ता यंत्र डिबलर (झुरमुट) बनाया गया और उस यंत्र की सहायता से अब मजदूरी का खर्चा केवल एक तिहाई रह गया है।

उन्नत बीज किसानों को सरकारी व सहकारी गोदामों से प्रायः सवाई पर दिया जाता है। इसकी माँग उत्तर प्रदेश में बहुत है। गोदामों में बीज तभी साफ रह सकता है जब हरएक कृषक गोदाम में अच्छा बीज लौटाये। यदि असावधानी के कारण गोदाम में बीज मिलवाँ हो जाता है तो वैसा ही बीज किसान को मिलता है और उनको पैदावार में हानि पहुँचती है। इसलिए किसानों को चाहिए कि वे अपने और दूसरे किसानों के लाभार्थ केवल शुद्ध बीज ही गोदामों में जमा करें। किसान को चाहिए कि वे अपना बीज स्वयं साफ़ रक्खें और अपनी सोसाइटियाँ बनावें और अपने गोदाम रक्खें। जब कभी उनको आवश्यकता हो अच्छा बीज सरकारी गोदामों से ले लें। उसी साफ़ बीज की पैदावार अपने गल्ला-गोदामों में रक्खें क्योंकि हर साल उधार से गल्ला लेना किसानों को लाभदायक नहीं होता।

प्रायः सवाई या उधार बीज लेने से किसानों को बहुत अधिक खर्च पड़ जाता है। जब वे गोदाम पर बीज लेने आते हैं तो उनके औसतन ३ दिन खर्च होते हैं, एक रोज आने का, एक रोज जाने का और एक रोज गोदाम पर। यदि एक दिन का खर्च एक बैलगाड़ी और एक गाड़ीवान का ४) भी रख लिया जावे तो तीन दिन का खर्च १२) हुआ। इस तरह बीज गल्ला-गोदाम से ले जाने और गल्ला वापिस लाने का खर्च यदि वह १०ↄ ले जाता है तो करीब २४) हुआ और उसने १०ↄ गेहूँ गोदाम से लिया था तो उसको २॥ↄ गेहूँ सवाई का जिसकी कीमत लगभग ४०) हुई और देना पड़ा। इस तरह से उसको १ↄ बीज पर लगभग ६।≈) हानि हुई। साथ ही साथ यदि वह नकद भी बीज खरीदे तो भी उसे हानि ही होगी क्योंकि प्रायः फसल के समय अनाज की कीमत सस्ती रहती है और बुवाई के समय मँहगी रहती है और लाने और ले जाने का खर्चा भी पड़ता है। इसलिए लाभ उसी किसान को होगा जो अपना बीज स्वयं रक्खेगा। अपना बीज स्वयं रखने से एक और लाभ यह भी है कि वह बहुत हद तक अपनी फ़स्लों को बीमारियों से बचा सकता है। फ़स्लों की बीमारियों के विषय का अध्ययन करने से मालूम होगा कि अधिकांश बीमारियाँ बीजों से ही फैलती हैं। स्वस्थ तथा दूषित बीज को केवल देखकर ही पहिचानना कठिन है इसलिए बाहर से बीज लाकर बोने से इसका डर रहता है कि बीजों के साथ-साथ बीमारियाँ भी आ जाँय। इसी प्रकार से बीजों के साथ हानिकर घासों के बीज भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं। इसलिये किसान का सदैव यही प्रयत्न होना चाहिए कि

वह स्वयं अपने लिए उन्नतिशील बीज पैदा करे। किसी नये प्रकार के बीज के आविष्कार होने पर उसको थोड़ी मात्रा में ही बीजगोदामों से लेकर अपने खेतों में पैदा करके बढ़ा लेना चाहिए।

बीज बोने का समय

फसल के बोने का ठीक समय जानना अच्छी पैदावार लेने के लिए बहुत आवश्यक है, क्योंकि इसका पैदावार और उपज, दोनों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

उदाहरण के लिये धान की बोवाई का समय लीजिये। २० जून के लगभग या आर्द्रा नक्षत्र के आरम्भ में जो धान बोया जाता है उसकी उपज अच्छी होती है। इससे दो-एक सप्ताह पहले भी धान बोने से बहुत अच्छी फसल होती है परन्तु जहाँ सिंचाई का साधन नहीं है वहाँ वर्षा आरम्भ होते ही बोना चाहिए। लेखक को अपने निजी फार्म का यह अनुभव है कि टाइप १३६ धान केवल वही अच्छा पैदा होता है जिसकी रोपाई २५ जून के लगभग हो जाती है। १ जुलाई के बाद का रोपा हुआ १३६ धान गंधी मक्खी लगने के कारण कम पैदा होता है।

५ जुलाई के बाद का रोपा हुआ तो कुछ भी नहीं पैदा होता। ५ या ६ दिन का पिछड़ना यों तो साधारण सी बात जान पड़ती है परन्तु पैदावार देखने पर तो यह किसान और फ़सल, दोनों के जीवन-मरण का प्रश्न हो जाता है। इसीलिये पुराने किसान कहते हैं कि—

'तेरह कातिक तीन अषाढ़'

यानी कार्तिक में सारी बोवाई का काम तेरह दिन में समाप्त कर देना चाहिये, परन्तु अषाढ़ में तो इतनी जल्दी रहती है कि तीन दिन में ही सारी बोवाई कर देना चाहिये नहीं तो पिछड़ जाने से अत्यन्त हानि की सम्भावना है।

देर के बोए धान में गंधी मक्खी का बड़ा प्रकोप होता है। यह मक्खी लगभग ७ सितम्बर के बाद बढ़ती है और जो धान १५ सितम्बर व १५ अक्तूबर के बीच में दुद्धा दशा में रहते हैं उनका सब दूध चूस लेती है और चावल नहीं पड़ता। इसीलिये किसान जल्दी पकनेवाले कुआरी धान जो लगभग ९० दिन में पक जायें उन्हीं को बोना चाहते हैं। बाकी जड़हन या अगहनी धान बोते हैं जो २० नवम्बर के आसपास पकता है। अगहनी धान पर गंधी मक्खी का असर नहीं होता। वह ठंड पड़ते ही १५ या २० अक्तूबर के बाद मर जाती है।

दूसरा उदाहरण गेहूँ का है। यदि गेहूँ के बोवाई में ३१ अक्तूबर से देर होती है तो उसमें गेरुई से नुकसान होता है और पैदावार घट जाती है। गेरुई का जोर फरवरी के अन्त में होता है। जो जल्दी का बोया हुआ गेहूँ है उसमें दाने इस समय तक कुछ कड़े हो जाते हैं और गेरुई के असर से बच जाते हैं। परन्तु जो दाने दूध की दशा में होते हैं उनको नीचे से आहार नहीं मिलता और वह पतले और कमजोर हो जाते हैं और गेहूँ की पैदावार बड़ी लांक होने पर भी

कुछ नहीं या बहुत कम होती है। गेहूँ भी चित्रा नक्षत्र के अंत में या स्वाती लगते ही अक्तूबर २३ और ३१ के बीच अवश्य बो देना चाहिये। बहुत जल्दी २० अक्तूबर से पहिले बोने से गेहूँ का पौधा कभी-कभी गरमी से मर जाता है इस लिये अक्तूबर के अन्तिम १० दिन ही गेहूँ बोने के लिये उचित हैं।

इसी विषय पर पुराने किसान घाघ ने भी लिखा है कि--

चित्रा गेहूँ आर्द्रा धान, न इन के गेरूई न उन के घाम।

यह भी ऊपर लिखे धान व गेहूँ के बोवाई के समय का पूर्णतया समर्थन करता है। इसी प्रकार गन्ने की हालत है। समय पर बोया हुआ गन्ना पिछड़े हुये गन्ने की तुलना में डेवढ़ा सवाई पैदा होता है। जाड़ा अन्त होते ही गन्ना बो देना चाहिये ताकि गर्मी में लू चलने के पहले उसकी जड़ें धरती में नीचे चली जायें और जब गरम व शुष्क हवा में नमी की आवश्यकता हो तो नीचे की नमी पर गन्ना जीवित रहे, जल्दी सूख न जाये। देर के बोये हुये गन्ने में दीमक का भी अधिक असर होता है और उसका बढ़ाव रुक जाता है। इसलिये समय पर ही गन्ना, गेहूँ व धान इत्यादि सब फसलें बोना चाहिये, देर में बोने से हर फसल को बड़ी हानि होती है

फसल बोने का समय ठीक अंग्रेजी तारीखों या हिन्दी नक्षत्रों के ऊपर निर्भर रखना चाहिये क्योंकि हिन्दी महीने चाँद की चाल पर होते हैं। वह ३० या ३१ दिन के नहीं होते इसलिये हर तीसरे साल एक महीना अधिमास और लगाकर हिन्दी के महीने ठीक किये जाते हैं। वे गर्मी, सर्दी का ठीक और सही अन्दाजा नहीं देते हैं और अंग्रेजी महीने और हिन्दी नक्षत्र सही और ठीक गर्मी, सर्दी का अंदाज देते हैं क्योंकि ये पृथ्वी और सूरज की चाल पर निर्भर होते हैं।

उदाहरण के रूप में लीजिये कि बहुत से किसान दीपावली को ही गेहूँ के बोने का निश्चित समय मानते हैं। यह उनकी बड़ी भारी भूल है। यह देखा गया है कि किसी-किसी वर्ष दीपावली नवम्बर के मध्य तक पड़ती है और दूसरे वर्षों में १८ अक्टूबर को ही होती है। कभी चित्रा में, कभी विशाखा या अनुराधा नक्षत्र में दीपावली पड़ती है। इस तरह से इन दोनों में लगभग ३ सप्ताह का अन्तर हुआ। गाँव के कुछ किसान इस बात के आदी हैं कि वे दीपावली से १ सप्ताह पहले गेहूँ बोते हैं। इस प्रकार १९५२ ई० में जब कि दीपावली १८ अक्टूबर को थी तो ऐसे किसानों ने अपने स्वभाव के अनुसार गेहूँ १२ अक्टूबर को ही बोना आरम्भ कर दिया होगा। इतनी जल्दी बोना ठीक नहीं है क्योंकि उस समय इतनी गर्मी रहती है कि गेहूँ के बहुत से पौधे उगते ही मर जाते हैं। इसी प्रकार जब दीपावली १२ नवम्बर को पड़ती है जैसे १९४७ में थी, तो वे गेहूँ बोने में बहुत पिछड़ जाते हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि किसान अपना एक नियम अंग्रेजी महीनों या हिन्दी नक्षत्रों के अनुसार

बीज बोने का बना लें। अनुभव से सिद्ध हुआ है कि नीचे लिखे समय फसलों के बोने के लिये सबसे उचित हैं।

नाम फसल	बोने का समय
चना, मटर और तेलवाले रबी के बीज	७ अक्टूबर से १५ अक्टूबर तक अर्थात् हथिया में और चित्रा नक्षत्र के शुरू में ये बोने चाहिए।
जौ और जई	१५ अक्टूबर से २० अक्टूबर तक अर्थात् चित्रा के अन्त तक।
गेहूँ	२० अक्टूबर से ३० अक्टूबर तक अर्थात् चित्रा के अन्त में या स्वाति नक्षत्र के आरंभ में बोना चाहिये।
गन्ना	उत्तर-प्रदेश के पूर्वी भाग में २० जनवरी से १५ फरवरी, मध्य भाग में फरवरी के महीने में, पश्चिमी भाग में मध्य फरवरी से मध्य मार्च तक बोना अच्छा होता है और अप्रैल और मई का बोया हुआ गन्ना कमजोर होता है और पैदावार बहुत कम होती है।
धान	धान बरसात शुरू होने पर जल्दी से जल्दी बोना चाहिए किन्तु १० जुलाई के बाद का बोया हुआ धान ठीक पैदा नहीं होगा। इसको आर्द्रा नक्षत्र में बोना चाहिये। १० से ३० जून का बोया हुआ धान अच्छा होता है।
मक्का, कपास, तिल, मूँग, लोबिया, मूँगफली और अरहर इत्यादि	खरीफ की सब बुवाई साल जून से ३० जून तक खत्म हो जाना चाहिये। २० जुलाई के बाद बाजरा व उर्द की बुवाई की जाती है।

यदि फसलों को ऊपर के लिखे समय पर ठीक तौर से बोया जावे तो किसान चना, जौ और तेलहन के बीज अक्टूबर के तीसरे सप्ताह तक बो कर

निवृत्त हो सकेंगे और वे गेहूँ ठीक समय पर बो सकेंगे। उत्तर-प्रदेश में प्रायः गेहूँ की फसल पाँच महीने पकने को लेती है। यदि गेहूँ की फसल देर में बोई जाती है तो उसको गेरुई और गर्म हवा से हानि पहुँचती है। बोते समय किसानों को ध्यान रखना चाहिये कि खेत में नमी ठीक हो और प्रायः सब किसान इस विषय में जानते भी हैं कि जिस वर्ष सितम्बर में पानी कम बरसे उस साल किसानों को चाहिये कि वे फसल बोने के पहले खेत की सिंचाई कर लें ताकि बीज अच्छी तरह से जमे और पैदावार अच्छी हो।

बीज बोने के समय यह प्रश्न उठता है कि प्रति एकड़ या एक बीघा में कितना बीज बोया जाये। इस विषय में किसान जैसी स्थिति में होते हैं, वैसा ही बीज डालते हैं। दरियाओं के खादर में, जहाँ नमी अधिक होती है और खेतों की उर्वराशक्ति भी अच्छी होती है, बीज की मात्रा आधी कर दी जाती है। एक ही किसान ऊँचे और सूखनेवाले खेत में अधिक बीज डालता है और नीचे तरीवाले उपजाऊ खेत में कम बीज डालता है। यदि अच्छी नमी हो और खेत में खादपाँस अच्छी पड़ी हो तो जैसा पहले बतलाया गया है, ६ सेर गेहूँ बोने से वैसी ही उपज होती है जैसा ५० या ६० सेर प्रति एकड़ गेहूँ बोने से होती है। यही हाल धान का भी है। यदि पानी वा खाद का अच्छा प्रबन्ध हो तो मन भर धान प्रति एकड़ बोने के बजाय ६ सेर धान की पौधे लगाने से वैसी ही पैदावार हो सकती है। गन्ने के बीज में भी बचत हो सकती है यदि केवल ऊपर का एक तिहाई गन्ना बोया जाये। यह अगोला हल्का होता है और जड़ के गन्ने से दूना घना उगता है। यदि ऊपर का ही गन्ना कुछ कम घना बोया जाये तो ५० मन बीज के बजाय एक एकड़ में केवल २५ या ३० मन गन्ने का बीज लगेगा। यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है कि यदि खेत उपजाऊ है व पानी का अच्छा प्रबन्ध है तो थोड़े बीज से भी फसल अच्छी होगी, परन्तु यदि पानी की कमी है व खाद भी कम पड़ी है तो खेत में अधिक बीज डालना पड़ेगा नहीं तो कल्ले कम निकलेंगे व खेत खाली रह जायेगा।

गोदामों में बीज रखने का ढंग

जिस समय किसान खलियान से अनाज घर को लावें तो उन्हें चाहिये कि उसमें से अच्छा बीज छाँट लें और उसे तेज धूप में खूब सुखावें क्योंकि सुखाने से बीज का छिल्का कड़ा होगा तो उसमें छोटे-छोटे कीड़ों का असर कम होगा। फिर उस सूखे हुए बीज को बोरों में भरकर बोरों का मुँह बन्द कर दिया जावे। बोरों को गोदाम में रखने से पहिले गोदाम को तारकोल से पुतवाना चाहिये ताकि जो कुछ कीड़े अथवा उनके अण्डे दीवार और धरती अथवा छत पर हों, मर जावें। फिर उन बोरों के नीचे भूसा बिछाकर रखना चाहिये और बोरों को ऊपर से और चारों तरफ़ से कम से कम एक-एक फीट मोटी भूसे

की तह से ढक देना चाहिये जिससे कि बरसात की नम हवा बोरों तक किसी तरह भी न पहुँच सके। भूसे की तह में यह गुण होता है कि बरसात की हवा में जो कुछ नमी होती है वह सोख लेता है और भूसे के बीच में जो अनाज के बोरे रहते हैं वहाँ तक नमी नहीं पहुँचने पाती।

गाँवों में जो लोग बोरों में रबी का बीज नहीं रख सकते उनको चाहिये कि गेहूँ का बीज मोटे भूसे की तह पर रक्खें। जैसे-जैसे गेहूँ का ढेर ऊँचा हो उसे भूसे के बीच में करते चलें। बाहरी दीवाल या टट्टी व गेहूँ के बीच में कम से कम १ फुट मोटी भूसे की तह होनी चाहिये। उससे भी अच्छा यह होगा कि बीज के बखार या डहरी के चारों तरफ एक हाथ (डेढ फुट) मोटी भूसे की तह और देकर बाहर टट्टी से कस दें और ऊपर से भी काफी मोटी भूसे की तह देकर उसे मिट्टी से पोत दें। ऐसा करने से बरसात की नम हवा व छोटे कीड़े सब भूसे में ही रुक जाते हैं और रबी का बीज सुरक्षित रहता है।

ख़रीफ़ के बीज के लिये यह आवश्यक है कि उसके बीज को गर्मी आरम्भ होने के पहिले अर्थात् १५ फरवरी से १५ मार्च के बीच में फिर धूप में अच्छी तरह सुखा लें।

खरीफ के बीज में यदि नमी है तो गर्मी आरम्भ होने पर बीज का अँखुवा उगने लगता है जो बाद में रुक जाता है, इसलिये उसकी बरसात में उगने की शक्ति मर जाती है। धान का बीज प्रायः इस वजह से भी खराब हो जाता है कि काटने के बाद जब पौधे नम रहते हैं, उसी हालत में बड़ा खरहा या ढेर लगा देते हैं और नमी के कारण उसके अन्दर गर्मी पैदा हो जाती है। ऐसे बड़े खरहे के अन्दर का बीज प्रायः खराब हो जाता है। इसलिये जब धान काटने के बाद ख़ूब सूख जावे तो उसकी छोटी-छोटी खरही खलियान में लगानी चाहिये और जल्दी-जल्दी दबाई कर लेनी चाहिये ताकि खरहे के अन्दर धान का बीज गरम होकर ख़राब न हो जावे।

अध्याय ६

चारा

प्रत्येक मनुष्य इस बात से परिचित है कि हर प्रकार के जीव को खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है। भिन्न-भिन्न जातियों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन होता है। जैसे मनुष्य जाति के लिये अन्न, फल, फूल इत्यादि और पशुओं के लिये हरे और सूखे चारे की आवश्यकता होती है। कुछ जंगली जानवरों को ईश्वर ने दूसरे जानवरों को मारकर खाने पर ही निर्भर कर दिया है। मनुष्य अपने खाने की चीज़ों को कृषि, बाग़ और जंगली और पालतू पशुओं इत्यादि से प्राप्त करता है, किन्तु बिना पशुओं की सहायता के कोई भी मनुष्य अपने जीवन को सफलता से व्यतीत नहीं कर सकता है। अब यह प्रत्यक्ष है कि खेती के लिये पशुओं अर्थात् गाय, बैल, भैंस इत्यादि की आवश्यकता है, किन्तु खाद्य पदार्थ पशुओं को भी चाहिये, इसलिये उनका खाना प्राप्त करने के लिये प्रत्येक किसान को उनके वास्ते चारा अवश्य बोना चाहिये। यदि कोई किसान अपने पशुओं के खाने-पीने का सुप्रबन्ध नहीं रखता है तो उसके पशु कमज़ोर और निरुत्साही हो जावेंगे और वह मनुष्य अपने खेती के काम को अच्छी तरह नहीं कर सकेगा।

यदि मान लिया जायें कि एक किसान के पास १० बीघा भूमि है और वह सब खेतों में अन्न ही बोता है और पशुओं के लिये हरा चारा नहीं बोता है तो वह बैल, गाय, भैंस इत्यादि अधिक संख्या में तो क्या, थोड़े भी न रख सकेगा, और दूध देनेवाले पशुओं के न रखने से किसान को और उसके बाल-बच्चों को दूध, दही, मट्ठा इत्यादि नहीं मिल सकेगा और साथ ही साथ उसके खेतों को खाद न मिल सकेगी। दूध न मिलने से वह और उसके बालबच्चे कमज़ोर होंगे और कमज़ोर मनुष्य कुछ भी काम न कर सकेगा, क्योंकि खेती का काम बिना शारीरिक स्वास्थ्य के पूरा नहीं हो सकता है। यदि उस किसान के गाँव के पास कोई क़सबा अथवा शहर भी है और दूध खाने-पीने से बचता है तो वह दूध बाजार में बेचकर अपनी आर्थिक दशा भी सुधार सकता है, क्योंकि बाजार में दूध की अच्छी कीमत मिल जाती है। और दूसरे जब उसके खेतों को खाद न मिलेगी तो कुछ ही दिनों में उसके खेतों की उपजाऊ शक्ति नष्ट हो जावेगी और फ़सल कमजोर होगी। खाद की कमी से अनाज कम पैदा होगा जैसा कि इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में बतलाया जा चुका है। इसलिये खाद और दूध इत्यादि को प्राप्त करने के लिये पशुओं का रखना आवश्यक ही है और जब किसान के पशु हैं तो उसे चारा बोना भी आवश्यक है। चारे के

लिये इस प्रांत में जो फसलें प्रायः बोई जाती हैं उनका तथा अन्य नई उन्नतिशील फसलों का बयान नीचे किया जाता है।

ज्वार—यह इस प्रान्त की मुख्य फसल हरे और सूखे चारे के लिये है। यह बरसात के प्रारम्भ में अथवा मध्य जून के लगभग बोई जाती है। गरमी के दिनों में जिस खेत में इसे बोना होता है पहिले उसे सींचते हैं, तब फिर उसमें हरे चारे के लिये १० से १३ सेर तक प्रति एकड़ के हिसाब से ज्वार बोते हैं और जब इसे दाने के लिये बोते हैं और इससे सूखा चारा प्राप्त करना होता है तो इसको पहिली बरसात होने पर बोते हैं और इसका बीज केवल आठ, दस सेर तक प्रति एकड़ बोया जाता है। यह जानवरों के लिये बहुत ही पौष्टिक भोजन है। यदि सूखे चारे को बारीक कुट्टी करके दाने और खली के साथ जानवर को खिलावें तो जानवर खूब स्वस्थ रहेगा और यदि दूध देनेवाला पशु है तो अधिक दूध देने लगेगा।

ज्वार हरे चारे के लिये बोने से लगभग ६ सप्ताह बाद पशुओं को खिलाने योग्य हो जाता है, इस चारे के विषय में एक विशेष बात यह है कि जब इस चारे को सिंचाई करने के बाद गर्मी में बोते हैं तो इसमें गर्मी के कारण एक प्रकार का ज़हर पैदा हो जाता है परन्तु बारिश हो जाने पर वह जहर मिट जाता है। इसलिये ज्वार को वर्षा होने से पहिले कभी पशुओं को नहीं खिलाना चाहिये। यदि पौधे में भुट्टा निकल आवे तो इस विष का डर नहीं रहता। जब इसमें दाना पड़ जावे और पौधा सूख जावे तो इसको काटकर सुखा ले और दाना अलग करके फिर अपने पशुओं को खिलाने के काम में लावे।

बाजरा—हरे चारे की कमी पूरी करने के लिये बाजरा भी बोया जाता है। इसकी फसल १५ जुलाई के बाद बोई जाती है। इसका बीज लगभग दस सेर प्रति एकड़ के हिसाब से बोना चाहिये। इसका चारा जानवरों के लिये अधिक अच्छा नहीं होता। इसकी खेती हल्की ज़मीनों में अच्छी होती है। इसका सूखा चारा जब और कोई चारा नहीं होता है तब पशुओं को खिलाते हैं, क्योंकि यह पशुओं को ताकत पहुँचानेवाला चारा नहीं है।

मक्का—यह बहुत जल्द तय्यार होने वाली फसल है। यदि इसको भुट्टा निकलने से पहिले ही जानवरों को खिलाया जाता है तो इसको जानवर बड़े चाव से खाते हैं। किन्तु जब यह पकाकर काट लिया जाता है तो इस चारे को और दूसरे चारे के अभाव में ही पशुओं को खिलाते हैं। यह चारा पौष्टिक नहीं है। इसका बीज चारे के लिये २० सेर से २५ सेर तक प्रति एकड़ बोया जाता है। इसकी फसल भी बरसात शुरू होने पर ही बो दी जाती है। साधारणतया यह फसल चारे के लिये नहीं बोई जाती है, किन्तु इसको दाने के लिये ही बोते हैं।

ग्वार-कुरथी——ग्वार भी पशुओं के लिये बहुत अच्छा चारा है। यह हल्की दोमट जमीन में अच्छी तरह पैदा होता है। यह दूसरी किस्म की जमीनों में भी पैदा किया जा सकता है, किन्तु इसकी फसल में पानी नहीं रुकना चाहिये, क्योंकि इसकी जड़ों में पानी रुकने से फसल को हानि पहुँचती है। इसको ज्वार के साथ मिलाकर अथवा बरसात के प्रारम्भ में ही अलग बो देते हैं। इसका बीज यदि इसे हरे चारे के लिये बोना है तो १५ सेर प्रति एकड़ बोना चाहिये और यदि बीज के लिये बोना है तो १० सेर प्रति एकड़ बोना चाहिये। इसकी बुवाई भी ज्वार की तरह की जाती है। इसके चारे को जानवर बड़े चाव से खाते हैं, किन्तु इसको फूल आने पर ही खिलाना आरम्भ कर देना चाहिये, क्योंकि यदि पौधे में फली पक जाती है तो इसका डंठल कड़ा हो जाता है फिर इसको जानवर नहीं खा सकते हैं। इसकी कच्ची फली बाजार में भी बिकती हैं और इसको मनुष्य शाक की तरह प्रयोग करते हैं। इसका सूखा दाना केवल पशुओं के ही खिलाने के काम आता है, किन्तु इसके दाने को खिलाते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि पशु को अधिक मात्रा में न खिलाया जावे नहीं तो जानवर का पेट फूल जाता है और उसको बहुत तकलीफ होती है।

जई——खरीफ की फसल कटने के बाद रबी की फसल में जई भी एक ऐसी फसल है जो हरे चारे के काम में लाई जा सकती है। इसको जौ और मटर की तरह बोते हैं। इसका बीज लगभग ५० सेर प्रति एकड़ बोया जाता है और जब इसमें बाल निकल आवें तब इसको काटकर पशुओं को दूसरे चारे के साथ मिलाकर खिलाना चाहिये। यों तो इसको सभी जानवर अच्छी तरह खाते हैं, किन्तु घोड़े इसको अधिक पसन्द करते हैं। इसका सूखा दाना भी पशुओं के लिये ही खाने के काम में लाया जाता है।

सरसों——सरसों भी हरे चारे के काम में लाई जाती है, किन्तु इसको दूसरे चारे के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाते हैं। इसकी फ़सल अलग नहीं बोते हैं, किन्तु गेहूँ, जौ, जई और मटर इत्यादि के साथ मिलाकर बोते हैं। यदि इसकी फ़सल अलग बो दी जावे तो इसमें कीड़े लग जाने का डर रहता है। जो सरसों लाइन में बोई जाती है उसका बीज पैदा किया जाता है और जो खेत में अनाज के साथ मिलाकर बोते हैं उसको उखाड़कर पशुओं को खिलाते हैं। इसका बीज १½ सेर प्रति एकड़ बोया जाता है।

लूसर्न (रिजका)——रिजका भी बहुत अच्छी हरे चारे की फ़सल है। इसको दूसरे चारे के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाया जाता है। इसकी फ़सल १५ अक्टूबर से १५ नवम्बर तक बोई जा सकती है। यह दोमट ज़मीन में अच्छी तरह पैदा होता है। इस फ़सल के लिये घोड़े की लीद बहुत

अच्छी खाद है। गोबर और मेंगनी की खाद भी बहुत लाभदायक है; किन्तु सड़ी हुई खाद डालनी चाहिये।

इसके बोने के लिये ज़मीन उसी प्रकार तैयार की जाती है जिस प्रकार रबी की फ़सल बोने को तैयार करते हैं। जब खेत की जुताई ठीक हो जावे तो उसमें खाद अच्छी तरह डालकर मिलावे और दो तीन बार जोते फिर खेत में क्यारियाँ और पानी जाने की नालियाँ तैयार कर ली जावें। इसके बाद उन क्यारियों में रिजका का बीज हाथ से बखेर दिया जावे। उसको फिर हैन्ड हो या भौरनी से मिलाकर उसी दिन पानी देना चाहिये। दूसरा ढंग रिजका बोने का यह भी है कि खेत में २ फीट के फ़ासले पर २ फीट चौड़ी डौल या मेड़ बनाई जावे और इसकी ऊँचाई ८ इंच से अधिक न हो। फिर हर डौल पर रिजके की दो लाइनें बोना चाहिए और बीच की नाली में पानी उसी दिन चला देना चाहिए। बाबूगढ़ के तजुर्बों से, जो मेरठ के ज़िले में है, मालूम हुआ है कि डौलों पर बोने का तरीक़ा सबसे अच्छा है।

जब इसका पौधा जम आवे तो इसको प्रत्येक पन्द्रहवें दिन पानी देना चाहिए। यदि इसकी भी गन्ने की तरह गुड़ाई की जावे तो पानी देने में कुछ बचत हो सकती है। एक बार फ़सल काटने के बाद डौलों पर से घास इत्यादि निकाल डालना चाहिये और ज़मीन को मुलायम करना चाहिये और डोलों पर मिट्टी फिर चढ़ाना चाहिए। जाड़े के दिनों में एक प्रकार का कीड़ा लगता है जिसको चेंपा कहते हैं। यह फ़सल को बढ़ने नहीं देता। इस बीमारी को रोकने के लिए पौधे को जमीन से मिलाकर काट डालना चाहिये और दूर ले-जाकर जला डालना चाहिए और खेत में चूना मिली हुई राख बिखेरकर पानी देना चाहिए। यदि प्रत्येक वर्ष रिजका में खाद दिया जावे और उसकी निकाई होती रहे तो यह ४-५ साल तक अच्छी फ़सल देता है। इसको प्रत्येक वर्ष अक्तूबर में काटकर खाद डालना चाहिए ताकि गर्मी और जाड़ों के लिए हरा चारा पशुओं को मिलता रहे।

हाथी घास या नेपियर घास—हाथी घास या नेपियर घास भी जानवरों के लिए बहुत अच्छा चारा है। इसको और चारे के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाते हैं।

इस फ़सल के लिए जून से पहिले अथवा अप्रैल और मई में सात-आठ जुताइयाँ करनी चाहिए और फिर वर्षा आरम्भ होने पर इसकी जड़ें लगा देनी चाहिए। जड़ों का फ़ासला आपस में १ फुट और क़तारों से कतारों का फ़ासला ५ फीट होना चाहिए। इसका पौधा काफ़ी बड़ा होता है और गर्मी के दिनों में जब कोई हरा चारा नहीं होता है तो इसका चारा पशुओं को खिलाने को मिल जाता है। इसकी फ़सल में भी काफ़ी खाद देने की आवश्यकता पड़ती है। जब

इसका पौधा ४ फुट का हो जावे तभी इसको काटकर खिला लेना चाहिये नहीं तो इसका पौधा इतना कड़ा हो जाता है कि फिर पशुओं के खाने के योग्य नहीं रहता है।

बरसीम की खेती——बरसीम एक प्रकार की घास है जो मिस्र देश से हमारे देश में लाई गई है। यह रबी की फ़सल में जानवरों के लिये हरे चारे के लिए बोई जाती है। इसका हरा चारा अत्यन्त पौष्टिक होता है और चूँकि यह दलहन किस्म की फ़सल है, इसके बोने से खेत की उर्वराशक्ति बढ़ती है। बरसीम के बाद की ली हुई खरीफ की फसल अच्छी लगती है। इस प्रकार इसको बोने से खेतों की उर्वराशक्ति ही नहीं बढ़ती बल्कि जानवरों को पौष्टिक चारा भी मिलता है और कृषक की पैदावार भी बढ़ जाती है, इसलिए कृषि में इस घास का विशेष महत्त्व है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि बरसीम रबी की फसल है। इसकी बुआई पहली अक्टूबर से १५ नवम्बर तक की जाती है। इसकी बुआई तीन प्रकार से होती है——

१. खेत में लेवा लगा कर
२. खेत की मिट्टी को भुरभुरी बनाकर, या
३. अगहनी धान के खेतों में छिटुआ बोकर

१. खेत में लेवा लगाकर——इस विधि से बोने के लिए खेतों में पानी भरकर देशी हल से जोताई करके लेवा लगाया जाता है। लेवा लग जाने पर पाटा चलाकर खेत को बराबर कर लिया जाता है और बाद में कुवारी धान की तरह बरसीम का बीज बो दिया जाता है। इस तरह बोने में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बीज बोने के १२ घंटे बाद खेत में पानी न लगा रहे, क्योंकि अधिक समय तक पानी लगा रहने से बीज के सड़ जाने का डर रहता है।

२. खेत की मिट्टी को भुरभुरी बनाकर——इस विधि से बरसीम उन जगहों में बोई जाती है जहाँ लेवा लगाने के लिये पानी की सुविधा नहीं पायी जाती। खेत की जुताई करके मिट्टी को खूब भुरभुरी कर लिया जाता है और जब मिट्टी काफ़ी बन जाती है तब खेत में नमी पैदा करने के लिये पलेवा किया जाता है। पलेवा के बाद ज्यों ही खेत उखड़े उसे जोतकर और पाटा देकर बीज बोने लायक तैयार कर लिया जाता है। इस तरह से बने हुये खेत में बरसीम का बीज अन्य फसलों के बीज की तरह छींटकर बो दिया जाता है।

बोने के बाद अरहर या किसी दूसरे चीज की झाड़ी से खेत में झाड़ू सा लगा दिया जाता है। बीज को खेत में मिलाने की यह विधि इसलिए प्रयोग में लायी जाती है जिससे कि बीज मिट्टी में तो मिल जाय, परन्तु बहुत नीचे न जाय। बरसीम का बीज बहुत छोटा होता है और यदि जमीन में नीचे चला

जायगा तो उगने में कठिनाई होगी। इस तरह झाड़ू लगाने के बाद खेत में पाटा लगा दिया जाता है।

३. छिटुआ बोने की विधि––इस विधि का प्रयोग उन स्थानों में किया जाता है जहाँ बरसात के बाद पानी जल्दी से नहीं हटता और खेत की तैयारी के लिए समय नहीं मिलता। जब अगहनी धान के बाद बरसीम की फसल लेनी होती है तब इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। खड़ी अगहनी धान की फसल में बरसीम का बीज शुरू नवम्बर में चटरी-मटरी या छिट्टा की भाँति बो दिया जाता है। फसल उग आने के बाद अगहनी धान की कटाई हो जाती है और बरसीम का विकास शुरू हो जाता है। धान की कटाई के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि धान के साथ बरसीम के पौधे न काटे जायें।

एक एकड़ खेत के लिए ८-१० सेर तक बीज की आवश्यकता होती है। यदि बीज लेना हो तो ८ सेर बीज बोना चाहिए। लेकिन यदि केवल चारा लेना है तो १० सेर बीज बोना चाहिए।

बरसीम एक दलहन किस्म की फसल है इसलिये इसकी सफलता के लिये यह आवश्यक है कि जिस खेत में यह बोई जाय उसमें इसकी जड़ों में रहनेवाले शाकाणु उपस्थित हों।। हमारे देश की पुरानी दलहन की फसलें जैसे अरहर, मटर, चना इत्यादि की जड़ों में रहनेवाले शाकाणु प्रायः हमारे सभी खेतों में मौजूद हैं। परन्तु बरसीम हमारे देश के लिये नई फसल होने के कारण इसकी जड़ों में रहनेवाले शाकाणु हमारी भूमि में नहीं पाये जाते। इसलिये जिन खेतों में बरसीम की खेती पहिले नहीं हुई है उनमें इसकी खेती प्रारम्भ करने के समय इसके शाकाणुओं को पहुँचाना आवश्यक है, परन्तु जिन खेतों में एक साल बरसीम की खेती हो चुकती है उनमें फिर शाकाणु पहुँचाने की आवश्यकता नहीं रह जाती। बरसीम के शाकाणुओं का कल्चर निम्नलिखित पते से मुफ्त मँगाया जा सकता है।

प्लान्ट पेथालेजिस्ट, यू० पी० सरकार,
कानपुर कृषिकालेज, कानपुर

कल्चर के प्रयोग की विधि––यह बहुत ही सरल है। एक डिब्बा कल्चर की मिट्टी जो कि एक एकड़ के लिये काफी होती है, थोड़े से गुड़ या चीनी के शरबत में घोलकर पतली लेई की तरह बना लिया जाता है। इस लेई को बीज के उपर छिड़क-छिड़क कर ऐसा साना जाता है कि थोड़ी-बहुत कल्चर की मिट्टी हर दाने में चिपक जाये। सनाई के बाद बीज को साये में सुखा लिया जाता है और जब वह बोने लायक सूख जाता है तब बो दिया जाता है।

दूसरा तरीका खेतों में शाकाणु पहुँचाने का यह भी है कि जिस खेत में बरसीम की खेती हो चुकी है उसकी मिट्टी एक गाड़ी प्रति एकड़ के हिसाब से नए खेत में डाल दी जाये।

बोने के ६ सप्ताह के बाद जब बरसीम लगभग ९ इन्च की हो जाये तब इसकी पहिली कटाई करनी चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि फसल को जड़ से न काट लिया जाये। एक से दो इंच तक जड़ से छोड़कर काटने से बरसीम तेज़ी से बढ़ती है और लगभग एक मास बाद फिर काटने योग्य हो जाती है।

शुरू में आवश्यकतानुसार और बाद में हर कटाई के बाद एक सिंचाई करना चाहिये। यदि बीज न लेना हो तो मई तक में ४-५ कटाई मिल जाती हैं और यदि फसल अच्छी लगी है तो कुल मिलाकर ५००, ६०० मन तक हरा चारा मिल जाता है।

बरसीम का पौधा शुरू-शुरू में बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है और पहिले कटाई के समय बहुत थोड़ा चारा मिलता है। परन्तु यदि बोते समय इसके बीज के साथ सरसों का बीज मिलाकर बो दिया जाय तो सरसों शीघ्र बढ़कर पहिली कटाई के समय चारे की कमी पूरी कर देगा।

यह चारा इतना पौष्टिक है कि जानवरों के दाने का तीन चौथाई भाग बन्द करके यदि इसे खिलाया जाये तो न तो जानवरों की हालत पर और न दूध पर ही कोई बुरा असर पड़ेगा। बरसीम में यही एक मुख्य विशेषता है कि यह केवल चारों का ही काम नहीं देती बल्कि दाने का भी स्थान ले लेती है। किसान यदि बरसीम की खेती करे तो जानबरों के दाना देने का खर्च तीन चौथाई तक घटाया जा सकता है। अनुमान लगाया गया है कि ६ सेर बरसीम के हरे चारे में उतना ही पौष्टिक पदार्थ होता है जितना कि एक सेर चने के दाने में। आजकल अन्न की इतनी कमी है कि जानवरों को दाना देना कठिन हो रहा है। यदि किसान थोड़ी मेहनत करके बरसीम पैदा कर ले तो उसका अन्न भी बचेगा और उसके जानवरों की दशा भी नहीं बिगड़ेगी।

यदि बरसीम का हरा चारा आवश्यकता से अधिक पैदा हो गया हो तो उसको सुखाकर भी रखा जा सकता है। सुखाये हुये चारे का पौष्टिक गुण लगभग वैसा ही होता है जैसा कि हरे चारे का। सुखाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बरसीम की पत्तियाँ कम से कम टूटें। सुखाने के लिये साफ जगह और कड़ी धूप में बरसीम पतली तह में फैला दिया जाता है और प्रातः काल जब यह ओस से मुलायम रहती है तभी इसे पलटा जाता है। दो तीन पलटाई के बाद जब नमी बिल्कुल निकल जाये तब इसको किसी सुरक्षित स्थान में रख देना चाहिए। हरे चारे को सुखाने के बाद एक चौथाई सूखा चारा तैयार होता है।

बरसीम दलहन फसल होने के नाते स्वयं हवा से नाइट्रोजन लेकर अपनी जड़ों में इकट्ठा करती है इसलिये नाइट्रोजनवाली खाद जैसे गोबर की खाद, रेंडी की खाद या अमोनियम सलफेट का इस पर कोई विशेष असर नहीं पड़ता। और जब तक कि खेत खास तौर से कमज़ोर न हो तब तक ऐसी खादों को देने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु स्फुर पूरक खाद्य पदार्थों से फसल को लाभ पहुँचता है। इन खादों को देने से न केवल हरे चारे की मात्रा बढ़ जाती है, बल्कि चारे में स्फुर की मात्रा बढ़ जाने से जानवरों और विशेषकर दूध देनेवाले जानवरों के लिये अत्यंत लाभप्रद हो जाती है। प्रयोगों से यह भी सिद्ध हुआ है कि स्फुर पूरक खाद्य पदार्थ देने से बरसीम की जड़ों में रहनेवाले शाकाणुओं की हवा से नाइट्रोजन इकट्ठा करने की शक्ति बढ़ जाती है। इसका फल यह होता है कि जिस खेत में स्फुर पूरक खाद्य पदार्थ दी गई हो उसकी उर्वराशक्ति बिना ऐसी खाद दिये हुये बरसीम के खेत से अधिक बढ़ जाती है।

बरसीम का यदि बीज लेना हो तो फरवरी के तीसरे हफ्ते तक दो तीन कटाई लेकर फिर कटाई बन्द कर देना चाहिये, सिंचाई आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिये। अप्रैल माह में बरसीम में फूल लगते हैं और मई के मध्य तक दाना पक जाने पर फसल काटकर दायँ ली जाती है। बीज की पैदावार दो से पाँच मन तक प्रति एकड़ होती है।

साइलेज (दबाया हुआ चारा)

किसान को अपने और अपने पशुओं के पालन-पोषण का सदा ध्यान रखना पड़ता है। ऋतुओं के परिवर्तन के कारण ग्रीष्म ऋतु भी आती है और उस समय पशुओं को हरा चारा नहीं मिलता है इस कारण पशु कमजोर हो जाते हैं। इस कमी को पूरा करने के लिये बड़े-बड़े अनुभवी व्यक्तियों ने कृषि फार्म पर प्रयोग करके दबाकर चारा रखने का उपाय निकाला है जिसका नीचे वर्णन किया जाता है।

यह देखना चाहिये कि जिस भूमि पर चारा भरने के लिये गड्ढा खुदवाया जावे वह ऊँची और कड़ी हो और जमीन के अन्दर पानी का सोता नीचा हो ताकि गड्ढा खोदने पर ऊपर ही नमी न निकले। यदि मिट्टी बलुही है तो वहाँ पर गड्ढा ठीक नहीं खोदा जा सकता है इसलिये उस गड्ढे की दीवारें और फर्श पक्की ईंटों की बनाना चाहिये। माधुरी कुण्ड के फार्म पर यह अनुभव किया गया है कि गड्ढे की गहराई ८ फीट से अधिक न होनी चाहिये। यदि गड्ढा खेत ही में बनाया गया है तो और भी अच्छा है क्योंकि उसके भरने में लागत कम लगेगी। गड्ढे की लम्बाई-चौड़ाई खेत के हरे चारे की मात्रा पर निर्भर है। जितना चारा आपके पास है उस हिसाब से गड्ढा बनाया जावे। यदि बिना कुट्टी की हुई ज्वार की फसल रखनी है तो उसके लिये १० सेर फी घनफुट की

आवश्यकता होती है। गड्ढे के खोदने के समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उसकी दीवारें सीधी हों ताकि चारा दबाने के समय आसानी रहे और अच्छी तरह चारा दबाया जा सके।

गड्ढों में चारा उस समय भरना चाहिये जब फसल पर भुट्टा आना शुरू हो जावे। कटाई और भराई में बहुत जल्दी करनी चाहिये ताकि चारे की नमी नष्ट होकर हानि न पहुँचाये। यदि फसल पक गई हो तो उसमें नमी कायम रखने के लिये थोड़ा पानी डाल देना और कुछ हरा चारा मिला देना चाहिये। चारे को गड्ढे में भरते समय खूब दबाते रहना चाहिये और यहाँ तक दबाना चाहिये कि चारे के अन्दर किसी तरफ भी हवा न रह जावे। गड्ढे के किनारों को दबाने के समय विशेष ध्यान रखना चाहिये। यदि हवा चारे में अन्दर रह जावेगी तो चारे के सड़ जाने की बहुत संभावना है। जब गड्ढा ऊपर तक भर जावे तो उसको फिर खूब दबाकर छोड़ देना चाहिये। कुछ समय बाद दबकर थोड़ा बैठ जायेगा। इसको फिर ऊपर से दबा कर चारे से भर देना चाहिये और ६" मोटी मिट्टी की तह से ढक देना चाहिये। यदि दबाते समय १ सेर नमक प्रतिमन चारे पर मिलाते जावें तो और भी अच्छा साइलेज तैयार होगा।

इस प्रकार जो गड्ढा सितम्बर में बन्द किया जाय, वह नवम्बर में तैयार हो जाता है। किन्तु उस चारे को गर्मी के मौसम में, जब कि हरे चारे की आवश्यकता पड़ती है, खोलना चाहिये। इसे सब जानवर बड़े चाव से खाते हैं। यह दूध देनेवाले पशुओं के लिए भी बड़ा लाभदायक है। पहले तो पशु उसको कम खाते हैं परन्तु जब उनको भूसे के साथ खिलाते हैं तो अच्छी तरह खाने लगते हैं। यह चारा प्रति पशु २० सेर काफ़ी होता है। जिन पशुओं को खुरपका का रोग होता है अथवा मुँह में छाले पड़ जाते हैं तो उनके लिये यह चारा अच्छा होता है। ज्वार बाजरे का बनाया हुआ साईलेज साबुत खा लिया जाता है। इस तरह से किसान कुट्टी करने की मेहनत से भी बच जाता है। जिन खेतों की फसलों का साईलेज बनाया गया है, उन खेतों में रबी के लिये चना, मटर बोने को खेत जल्दी खाली मिल जाता है और दाने की कमी भी इस तरह पूरी हो जाती है। साईलेज बनाने से किसानों को अपने पशुओं के लिए हरा चारा गरमी के दिनों में मिल जाता है।

चारे के विषय में यहाँ एक प्रचलित भ्रम का खंडन कर देना आवश्यक मालूम होता है। प्रचलित सम्मति यह है कि पुवाल अन्य सूखे चारों से कम पौष्टिक है परन्तु कृषि-विभाग के भरारी फार्म पर किये गये प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि पुवाल अन्य चारों के मुकाबले अधिक पौष्टिक है। गेहूँ के भूसे से जिससे प्रायः इसकी तुलना की जाती है पुवाल निश्चय ही अच्छा

चारा है। भरारी के जिन प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है उसका सार नीचे दिया जाता है:—

भिन्न-भिन्न सूखे चारों पर कृषि-विभाग के भरारी फार्म पर किये गये प्रयोगों का फल

प्रयोग	बढ़ाव का वेग या दूध की पैदावार	नस्ल	किस्म चारा				
			गेहूँ भूसा	जौ भूसा	ज्वार सूखा	बाजरा सूखा	धान का पुआल
बढ़ाव के वेग का प्रयोग १९४५-४६	औसत साप्ताहिक बढ़ाव का वेग पाउन्ड में	हरियाना	७.९३	७.९५	८.३३	८.३३	७.६६
		मुर्रा भैंस	५.२२	६.३५	५.९४	७.७४	८.११
दूध की पैदावार १९४५-४६	१६ हफ़्ते भिन्न-भिन्न चारा खिलाने के बाद दूध की पैदावार में कमी	मुर्रा भैंस	३०.५	—	२६.५	२१.९	११.६
१९४६-४७	दूध की पैदावार औसत पाउंड में प्रतिदिन	हरियाना	७.५१	७.४४	६.८९	७ ०१	८.२४

अध्याय ७

सिंचाई

किसानों को यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि पानी के बिना कोई जीवधारी, पशु या पौधा जीवित नहीं रह सकता है। पशु खाना खाकर मुँह से पानी पी लेता है किन्तु पौधा कोई ठोस चीज़ के बिना पानी में घुले हुए नहीं खा सकता। उसकी सारी ख़ूराक पानी में घुलकर जड़ों से तने और पत्ती में पहुँचती है। इसी कारण से खेत में चाहे जितनी खाद डाली जावे या जुताई की जावे किन्तु बिना पानी के फ़सल पैदा नहीं की जा सकती। बिना पानी में घुले हुए ज़मीन से पौधा कोई ख़ूराक नहीं ले सकता है। इसी लिये मनुष्य सदा से ही अपनी फसल को पानी पहुँचाने के लिये उपाय निकालता रहा है।

यह बात कही जाती है कि गंगाजी को भगीरथ महाराज पहाड़ से निकाल कर लाए थे। आजकल भी उसी गंगा में से नहरें निकाली गई हैं जो लाखों एकड़ भूमि की सिंचाई करती हैं। तालाब और कुएँ बनाकर उन पर बाग लगाना और सिंचाई के साधन पैदा करना तो सदा से ही पुण्य के कार्य समझे गए हैं। कोई गाँव ऐसे नहीं हैं जिनमें पहिले के बने हुए कुछ कुएँ और तालाब न हों। तालाब तो पानी के बैंक के समान हैं जिनमें अधिक वर्षा का बचा हुआ जल-कोष इकट्ठा रहता है और जब बरसात की कमी होती है तो किसान इस बैंक के जल-धन से फसलों की सिंचाई करते हैं। पूर्वी जिलों में तो ताल पोखरों से ही अधिक सिंचाई होती है। बड़े-बड़े तालों से किसानों ने कुलाबा या छोटी-छोटी नहरें निकाल रक्खी हैं जिनसे सिंचाई का काम बराबर चलता रहता है। खेतों के चारों ओर मेड़ बाँधकर और जगह-जगह बड़े बन्ध बनाकर सदा से खेतिहर स्वयं अपना जल-धन इकट्ठा करने व नीचे धरती में सम्हालकर रखने का प्रयत्न करते रहे हैं। पहाड़ों पर झरनों का पानी भी किसान खेतों में सँभालकर ले जाते और अपनी फसलें सींचते हैं। नए चलन के पाताल कुएँ (ट्यूबवेल) भी बनने लगे हैं जो सिंचाई के बहुत बड़े साधन बन गये हैं। उत्तरप्रदेश की सरकार ने तो पिछले तीन-चार वर्षों में बंधे बाँधकर बहुत सी नहरें निकालीं व बहुत से नलकूप (ट्यूबवेल) बनवाये जिसका फल यह हुआ कि १३ या १४ लाख एकड़ भूमि जिसमें सिंचाई का कोई साधन नहीं था उसमें अब सिंचाई का प्रबन्ध हो गया। सिंचाई के साधन बढ़ाने में शासन आजकल बहुत प्रयत्नशील है। किसानों वा गाँव-सभाओं को भी चाहिए कि पुराने तालाब व कुएँ जो पट

कर खराब हो गये हैं, उनको फिर से ठीक कर लें जिससे उनके गाँव का जल-धन बढ़ जाय और उनके पौधे पानी को न तरसें। यही सबसे बड़ा पुरुषार्थ और पुण्य का कार्य है और सदा से ऐसा ही माना गया है।

सिंचाई के यंत्र बहुत से हैं जो थोड़ी या अधिक गहराई से पानी उठाने के काम आते हैं।

छोटे किसानों को जिनको १ बीघा या २ बीघा सिंचाई करनी रहती है यदि नहर या ट्यूबवेल से दूर हैं तो वह दुगला, ढेंकली अथवा नारमोट से सिंचाई करते हैं, किन्तु बड़े किसानों को, जिनको ज़्यादा रकबे में सिंचाई करनी होती है, उनको ट्यूबवेल या इंजन लगाना पड़ता है अथवा यदि पास में नहर हो तो नहर से सिंचाई करनी होती है। मध्यम श्रेणी के किसानों का मामूली कुएँ में जिनमें बोरिंग पाइप गलायी गयी हो और पानी की कमी न हो उसमें रहट लगाने से काम चल जाता है। रहट बैलों से या ऊँट से अच्छा चलता है।

भारतीय किसान के लिये कृषि के यंत्रों में पानी उठानेवाले यंत्रों का विषय बड़े महत्त्व का है, क्योंकि उन थोड़े स्थानों को छोड़कर जहाँ नहर से तोड़ सिंचाई होती है या पहाड़ों पर जहाँ पानी ऊँची जगह से बहता है, पानी की सतह उन खेतों से जिनमें पानी ले जाने की आवश्यकता होती है प्रायः नीची होती ही है इसलिये पानी को खेत तक उठाने की आवश्यकता पड़ती है। इस कार्य के लिये भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में कई प्रकार के यंत्र बहुत दिनों से उपयोग में लाये जाते हैं। कृषि-विभाग ने कृषकों की सुविधा के लिए कई यंत्रों का आविष्कार भी किया है जो कि प्राचीन यंत्रों से कम परिश्रम और कम व्यय में अधिक पानी उठाते हैं। इन नवीन यंत्रों का अनुभव लेखक के निरीक्षण में परतापगढ़ फ़ार्म पर किया गया था। यह सब यंत्र फार्म के तालाब में लगाये गये थे और उनका पानी एक टब में, जिसकी पानी की समात ३० गैलन थी, डाला गया और उस टब के भरने में जो समय लगा उससे हिसाब लगाया गया कि एक एकड़ भूमि की सिंचाई कौन यंत्र कितने समय में करेगा? जो यंत्र लगाये गये थे, उनका विवरण आगे की तालिका में दिया गया है।

रहट—कुओं से पानी निकालने का यह एक प्रसिद्ध यंत्र है जिसको कि प्रत्येक किसान भली प्रकार जानता है। यह लगभग ३० फीट की गहराई से पानी उठा सकता है। इसको सारे दिन चलाने के लिये एक आदमी और दो जोड़ी बैल की आवश्यकता होती है। यह प्रति घंटा ७२०० गैलन पानी १० फीट की गहराई से उठा सकता है और एक एकड़ की सिंचाई दस घंटे में कर सकता है। जैसे-जैसे गहराई बढ़ती जाती है, पानी की मात्रा, जो ऊपर आती है, कम होती जाती है; यहाँ तक कि २५ फीट की गहराई से २५०० से ३००० गैलन तक फी घंटा रहट पानी उठा सकता है।

चेन पम्प——यह जंजीर में छोटे-छोटे तवों की माला है जो एक पहिये पर लोहे की नली के अन्दर से चलती है। यह चार से पन्द्रह फीट की ऊँचाई तक पानी उठा सकती है। २½ इंच चौड़ी नलीवाली चेन पम्प ५ फ़ीट की गहराई से चार हज़ार गैलन पानी प्रति घंटा उठा सकता है और लगभग १७ घंटे में एक एकड़ खेत की सिंचाई कर सकता है। एक एकड़ सिंचाई करने के लिये लगभग ७०००० गैलन पानी चाहिये।

बलदेव बाल्टी——इसमें दो लम्बी परनाली की तरह की बाल्टी होती हैं जो रस्सी से घरारी पर चलती हैं। यह एक के बाद दूसरी उठती है और नीचे जाती है। इसको चलाने के लिए दो जोड़ी बैल और एक आदमी की आवश्यकता होती है। यह एक घंटे में २५०० गैलन पानी उठाती है। इससे एक एकड़ सिंचाई के लिए लगभग २८ घंटे लगते हैं। यह तीन फ़ीट से ज़्यादा की गहराई होने पर काम नहीं दे सकती है।

इजिप्शियन स्क्रू——यह लकड़ी के ढोल के आकार का होता है और अन्दर से पेंच के बनावट की भाँति पोला होता है। यह एक घंटे में २५०० गैलन पानी उठाता है। इससे एक एकड़ की सिंचाई में तीन दिन लगते हैं। इसको पूरे दिन चलाने के लिए ४ आदमियों की आवश्यकता होती है। यह यंत्र भी २½ या २ फ़ीट की गहराई से पानी उठा सकता है।

जल-चक्र——पानी उठाने का एक नया यंत्र है। इसका लेखक ने आविष्कार किया है। यह बड़ी झीलों के किनारे पर लगाया जा सकता है जिसमें पानी बड़ी मात्रा में सदैव भरा रहता है। यह नहर के किनारे के उन खेतों के लिए भी बहुत उपयोगी है जिनमें सिंचाई के लिए लगभग २½ फ़ीट

तालिका

यन्त्रों के नाम	पानी की गहराई फ़ीट में	पानी जो प्रति घंटा निकला गैलन में	एक एकड़ भूमि की सिंचाई का समय घंटों में	एक एकड़ की सिंचाई का व्यय	परिश्रम
रहट	१०	७२००	१०	६)	एक आदमी दो जोड़ी बैल
गहरी रहट	२५	३०००	२३	१५)	एक आदमी दो जोड़ी बैल ढाई दिन तक
चेन पम्प	५	४३००	१७	१०)	चार आदमी
बलदेव बाल्टी	३	२५००	२९	१२)	दो आदमी एक जोड़ी बैल तीन दिन तक
इजिप्शियन स्क्रू	२	२५००	२८	१५)	चार आदमी तीन दिन तक
जल-चक्र	३	१४०००	५	५)	आठ आदमी

या ३ फ़ीट से पानी उठाने की आवश्यकता पड़ती है। यह यंत्र एक घंटे में लगभग १४००० गैलन पानी उठाता है और प्रति-दिन लगभग दो एकड़ की सिंचाई कर सकता है। इसकी पानी उठाने की शक्ति अधिक होने के कारण इससे धान के बड़े-बड़े खेतों की सिंचाई सुगमता से हो सकती है। थोड़ी ऊँचाई तक पानी उठाने में इंजिन के अलावा और कोई यंत्र इसकी बराबरी नहीं कर सकता। इसके चलाने के लिए आठ आदमियों की आवश्यकता होती है। एक समय में चार आदमी २० मिनट तक चलाते हैं और बारी-बारी से प्रत्येक २० मिनट पर बदलते रहने पर ८ आदमी सारे दिन चला सकते हैं। उन स्थानों में जहाँ दैनिक वेतन कम है, कम व्यय में अधिक सिंचाई हो सकती है। इस यंत्र को गाँव में ही अच्छे बढ़ई और लोहार आसानी से बना सकते हैं।

अधिक गहराई से पानी निकालने के ढंग इस देश में बहुत से हैं। इसमें से अधिकतर रहट, चरसे या मोट से काम लिया जाता है। ३५ से ४० फ़ीट की गहराई तक रहट अच्छा काम देता है, किन्तु उसके बाद ज्यों-ज्यों गहराई बढ़ती जाती है त्यों-त्यों रहट और चरसे की पानी उठाने की शक्ति बराबर होती जाती है। चरसे (नारमोट) से औसतन चार बिस्वा रोज़ सिंचाई हो सकती है।

गहराई से पानी निकालने का दूसरा ढंग इंजिन और पम्प का है जिसमें ज़मीन के अन्दर २०० से ३०० फ़ीट तक बोरिंग की जाती है। ६ इंच, ८ इंच, १० इंच या १५ इंच के नल ज़मीन के अन्दर डाले जाते हैं। फिर चाहे जितनी गहराई से पानी ज़मीन के अन्दर निकलता है वहीं से पानी इंजिन और सेंट्रीफ़्यूगल पम्प से निकाला जाता है। इस तरह के पम्प बहुत अधिक पानी देते हैं और किसी-किसी हालत में ५०,००० गैलन प्रति घंटा से अधिक पानी एक ट्यूबवेल से निकाला जाता है यानी एक दिन में बड़े ट्यूबवेल से ६ से ७ एकड़ जमीन तक की सिंचाई हो सकती है, किन्तु साधारण ट्यूबवेल से ३, ४ एकड़ की सिंचाई होती है। इनमें ट्यूबवेल इंजिन और पम्प मिलाकर करीब १५,०००) से २०,०००) तक खर्चा होता है।

यदि मामूली कुओं में पानी जल्दी टूट जाता है, किन्तु गर्मी के दिनों में कुएँ के अन्दर १० फीट पानी रहता है तो ऐसे कुओं में ५० या ६० फीट सीधा पाइप गला देने से पानी की मात्रा बढ़ जाती है और कुआँ पानी अधिक देने लगता है। पहिले यदि एक मोट से कुआँ सूखने लगता था तो अब बोरिंग होने के बाद उसमें ३ या ४ मोट का पानी हो जाता है। बोरिंग के पहिले गर्मी के दिनों में १० फीट पानी कुओं में होना इसलिए आवश्यक है कि जिस तेज़ी से पानी पाइप से कुएँ के अन्दर आता है वह इस बात पर निर्भर है कि कुएँ के अन्दर और बाहर पानी की सतह में क्या अन्तर है। यदि गर्मी के दिनों में पानी दो या तीन फीट ही कुएँ में

रहता है तो पानी अधिक से अधिक दो या तीन फीट नीचे जा सकता है। इसके बाद कुआँ सूख जावेगा और बाहर और भीतर के पानी की सतह में दो या तीन फीट का ही अन्तर हो सकता है जो कि इतना नहीं है कि नल के अन्दर होकर पानी इतने जोर से चढ़े कि जितना पानी कुएँ से निकले उतना पानी पाइप से कुएँ में आ जावे। ऐसे कुओं में बोरिंग करने से कोई लाभ नहीं होता। जब गर्मी में कुएँ में १० फीट पानी रहता है तो उसमें पानी सात या आठ फीट तक बाहर के पानी की सतह से नीचे जा सकता है जिसका फल यह होता है कि पाइप में पानी उसी तेजी के साथ कुएँ के अन्दर आता है जिस तेजी के साथ पानी बाहर निकाला जाता है और कुएँ का पानी नहीं टूटता और कुआँ बराबर पानी देता रहता है।

अध्याय ८
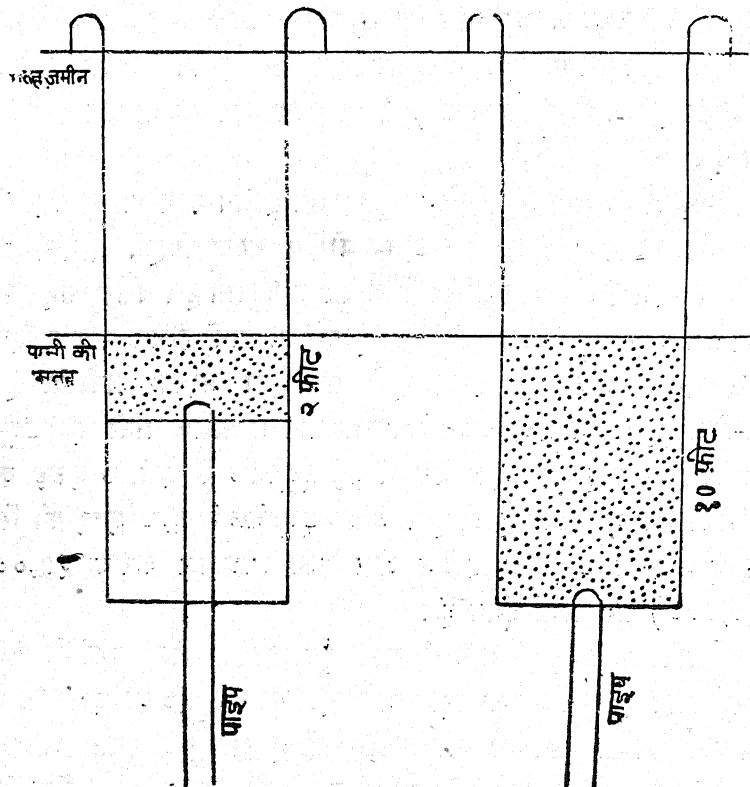
गन्ने की खेती

कुछ वर्ष पहले भारतवर्ष में पतली ईख बोने की प्रथा थी। कहीं पर भी मोटे गन्ने दिखाई नहीं पड़ते थे। जावा और सुमात्रा में पहले ही से उन्नतशील गन्नों का प्रचार था।

हमारी सरकार ने प्रत्येक प्रकार की कृषि की उन्नति के विचार से भारतवर्ष में कृषि के फार्म बनाए हैं और उनमें सदा अलग-अलग फसलों पर अलग-अलग अनुसंधान होते रहते हैं; जैसे कोयमबिटूर और शाहजहाँपुर में गन्ने के और पूसा, कानपुर और दिल्ली में गेहूँ के अनुसंधान फार्म खुले हुये हैं। गन्ने का बीज दो प्रकार का होता है, एक तो गन्ने के छोटे-छोटे टुकड़ों का होता है और दूसरे गन्ने पर फूल आकर और पककर बारीक जीरे के समान बीज होता है। कोयमबिटर की जलवायु बीज पकने के लिये ठीक है इसलिये वहीं पर वह बीज गन्नों से लेकर इकट्ठा किया जाता है और फिर एक प्रकार के गन्ने के फूल से दूसरे प्रकार के गन्ने के फूल में जोड़ा लगाया जाता है। इस प्रकार एक नई जाति के गन्ने का बीज तैयार किया जाता है; फिर उस बीज को गेहूँ और धान की तरह बोते हैं। इस बारीक बीज से पहले बहुत पतला और छोटा गन्ने का पौधा पैदा होता है। धीरे-धीरे वह गन्ने का छोटा पौधा बढ़कर गन्ने की तरह हो जाता है। इन्हीं गन्नों में से जो पैदावार में सबसे बढ़िया मालूम होता है वह उत्तरी भारतवर्ष के सूबों में लाया जाता है और शाहजहाँपुर आदि फार्मों पर उसका प्रयोग किया जाता है। जो नई जातियाँ इन सरकारी फार्मों पर बहुत अच्छी निकलती हैं वही गन्ने की जातियाँ किसानों को दी जाती हैं। अब गन्ने के बारीक बीज शाहजहाँपुर में भी बोये जाते हैं और उनसे नई-नई गन्ने की जातियाँ वहीं पैदा होती हैं। इन गन्ने की जातियों को कोयमबिटूर--शाहजहाँपुर के नाम से पुकारा जाता है।

गन्ने के खेत की तय्यारी--यदि गर्मी के दिनों में थोड़ी बहुत वर्षा हो गई हो अथवा किसी प्रकार की सिंचाई मुमकिन हो तो सिंचाई करके पंजाब हल, विक्टरी हल, टर्नरेस्ट हल या और किसी मिट्टी पलटनेवाले हल से जमीन को जोतना चाहिए। गर्मी में जुताई करने से और धूप की तेजी से तरह-तरह के नुकसान देनेवाले कीड़ों के अण्डे नष्ट हो जाते हैं। यदि जुताई न हो तो जमीन के अन्दर धूप का कुछ भी असर न होगा और कीड़े जमीन में अधिक संख्या में

हो जावेंगे; इससे आगामी फसल को बड़ी भारी हानि होगी। वे कीड़े फसल को नष्ट कर देंगे इसलिये गर्मियों में अवश्य खेत जोतना चाहिये। खाली खेत में भी किसी प्रकार का खर-पतवार न बढ़ने देना चाहिये।

गर्मी की जुताई के बाद वर्षा प्रारम्भ हो जाती है और बरसात में गन्ने के खेत में सनई, ढेंचा, गुआर या लोबिया की हरी खाद जोत देना चाहिए। उसके २५ रोज बाद देशी हल से उस जमीन को जोतना चाहिए। जितनी अधिक खेत की जुताई होगी उतनी ही पैदावार अधिक होगी। यदि कोई किसान इस प्रकार नहीं कर सकता है तो उसे चाहिए कि रबी की फसल काटने के बाद जमीन को अच्छे हलों से जोतकर और सिंचाई करके उसमें कपास की फसल ले और फिर उस फसल को काटकर ईख के लिए खेत को तैयार करे, किन्तु इस प्रकार बोने से गन्ने की फसल उतनी अच्छी नहीं होती। जब रबी की फसल बोकर किसान छुट्टी पा जावें तब गन्ने की जमीन को फिर से जोतना शुरू कर दें और उसको कम से कम ७ या ८ बार जोतें।

कभी-कभी किसान गन्ने के खेत की अच्छी जुताई नहीं करते, क्योंकि वे गन्ने की फसल से पहले खरीफ और रबी की फसल जैसे धान और मटर लेने का प्रयत्न करते हैं। इन फसलों के बाद गन्ने की जुताई अच्छी नहीं हो सकती।

गन्ने को तीन ढंग से बोते हैं--(१) नालियों में बोना (२) सीधी लाइन में बोना और फिर बरसात में मिट्टी चढ़ाना। (३) हल के पीछे बोना और फिर बरसात में मिट्टी न चढ़ाना।

नाली बनाना--रबी की बोवाई समाप्त करने के पश्चात् ईख के खेत को फिर जोतना चाहिए और उसको जोतकर और पाटा लगाकर ठीक करना चाहिए। फिर उस खेत में जिसमें नालियाँ बनानी हैं सिरे के मेंड़ पर दो आदमी रस्सी के सिरे पकड़कर खींचते हैं और तीसरा आदमी उस रस्सी पर चलता है जिससे खेत में लाइन का चिह्न बन जाता है। जब एक लाइन का चिह्न बन जावे तब फिर दूसरी लाइन १½ फीट के फासले पर बनाई जाती है और इसी प्रकार कुल खेत में ऐसी लाइनों के निशान बनाये जाते हैं। जब खेत में इस क़िस्म की लाइनों के चिह्न बन जावें तो १½ फीट की मिट्टी दोनों तरफ की खाली जगह में ६ इंच की गहराई तक कस्सी से उठाकर रखना चाहिए ताकि बोने के लिए १½ फीट चौड़ी नाली हो जावे और उतनी ही चौड़ी मेंड़, जैसा कि नक्शे में दिखाया गया है।
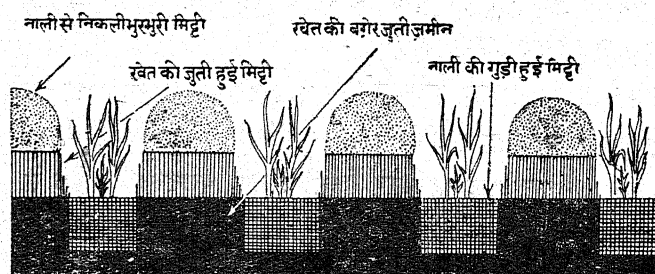
जब सब नाली तैयार हो जावें तो उन नालियों को कस्सी से अथवा कुदालों से गोड़ना चाहिए और उस मिट्टी को इतना गोड़ना और भुरभुरा करना चाहिए कि खोदी हुई मिट्टी ६ इंच तक पोली और बारीक हो जावे ताकि जड़ों के बढ़ने

के लिए अच्छी जगह मिल सके। इस काम को नवम्बर के अन्त तक अथवा दिसम्बर के पहले सप्ताह में समाप्त कर देना चाहिए। इन नालियों में खाद डालकर फिर दो तीन गुड़ाई आवश्यक है। बुवाई से ८ सप्ताह पहिले खाद डालकर अच्छी तरह से नालियों में गुड़ाई कर दी जावे ताकि वह मिट्टी में मिल जाय। नाली बनाने का ढंग रेतीली, सूखी और भूड़ जमीन के लिए ठीक है। रेताली जमीनों में नमी कम ठहरती है इसलिए नाली बनाने से उसमें नमी कायम रहेगी और नालियों में पानी आसानी से अधिक दिन तक ठहर सकेगा। दूसरे रेतीली भूमि में पौधों के गिरने का डर रहता है। इसलिए मिट्टी चढ़ा देने से भी पौधे गिर जाने से बच जाते हैं। जब नालियाँ तैयार हो जावें और खाद मिला दी जाय तो बोने के समय तक उनको यों ही पड़ा रहने देना चाहिए। अगर जनवरी के महीने में वर्षा नहीं हुई और नालियों में नमी नहीं है तो नालियों में सिंचाई करके बुवाई कर देनी चाहिये। देर का बोया हुआ गन्ना उतना अच्छा नहीं होता जितना कि फरवरी का बोया हुआ गन्ना।

दूसरा ढंग खेत में बिना नाली बनाये पंक्तियों में बोने का है और बरसात में पौधों पर मिट्टी चढ़ाने का है। यह आसान और सस्ता ढंग है। जमीन की तैयारी अक्टूबर के महीने तक एक ही जैसी दोनों की होगी, किन्तु मटियार भूमि में और ऐसे खेतों में जहाँ कि नमी अधिक है वहाँ नाली बनाने की आवश्यकता नहीं है। जाड़े के दिनों में खेत में खाद डालकर खूब जुताई करना चाहिये और बुवाई से १५ दिन पहिले ही खेत को जोतकर और पाटा लगाकर तैयार कर लेना चाहिये और फिर उस खेत में ३, ३ फीट या ३½, ३½ फीट पर रस्सी से चिन्ह बनाकर लाइन में फसल बोना चाहिये। जिन खेतों में खाद, जुताई और पानी की पूरी मात्रा पहुँचाई जा सके उनमें लाइनों की एक दूसरे से दूरी ३½ फीट

रखने से फ़सल अच्छी होगी किन्तु बहुत किसानों के खेत कमजोर होते हैं और वे उतनी खाद, पानी और जुताई का प्रबन्ध नहीं कर सकते हैं, इसलिये ऐसे खेतों में गन्ने की लाइनों का फ़ासला ३ फीट से अधिक रखने में फ़सल के हल्के हो जाने की सम्भावना है।

तीसरा ढंग हल के पीछे बिना लाइन के बोने का है जैसा कि किसान प्रायः अपने खेतों में गन्ना बोते हैं। यह ढंग अच्छा नहीं है, क्योंकि पौधों के छिटकवाँ होने से फ़सल की गोड़ाई में बड़ी कठिनाई पैदा होती है। फ़सल के बढ़ने पर पौधों के बीच की मिट्टी उनकी जड़ों पर नहीं चढ़ाई जा सकती और फसल प्रायः बढ़कर गिर जाती है। इस किस्म के बोये हुये गन्ने में किसी किस्म का कल्टीवेटर या बैलों से चलानेवाला गुड़ाई का यंत्र प्रयोग नहीं किया जा सकता और हाथ से ही पौधे बचाकर गुड़ाई करनी पड़ती है।

गन्ने के खेत में खाद——हर फ़सल के लिये खाद की आवश्यकता होती है, परन्तु गन्ने को खाद की अधिक आवश्यकता होती है। खाद दो प्रकार की होती है। १——वानस्पतिक, २——बनावटी। वानस्पतिक खादों में——(१) गोबर की खाद। (२) शहर का कूड़ा-करकट और मैले की खाद। (३) कम्पोस्ट की खाद। (४) खली की खाद। (५) सनई इत्यादि की हरी खाद हैं और बनावटी खादों में (१) ऐमोनियम सल्फेट (२) सोडियम नाइट्रेट अमोनियम नाइट्रेट (३) सुपर फॉस्फेट (४) पोटाश इत्यादि हैं।

अब यह देखना है कि कितनी खाद गन्ने की फसल के लिये काफी होगी। प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि गन्ने की अच्छी फसल के लिये करीब १२० पौंड नाइट्रोजन प्रति एकड़ काफी होता है। उसकी कमी पूरी करने के लिये खेत में सनई, ढेंचा, लोबिया या गुआर कीफसल जोतना चाहिये जैसा कि हरी खाद के विषय में बताया गया है। फिर अक्टूबर के मध्य से लेकर १५ नवम्बर तक गोबर की खाद डालना चाहिये। यदि खेत में नाली बनानी है तो नालियाँ बनाने के पश्चात् नालियों में खाद डालना चाहिये और नाली नहीं बनानी है तो खेत में करीब दो सौ मन प्रति एकड़ खूब सड़ी हुई पाँस डालना चाहिये।

इसके साथ ही साथ खेतों में खली की खाद भी गन्ने की फसल के लिये दी जाती है जैसे रेंड़ी, मूँगफली, नीम और महुए की खली। इनको बीज बोने से कुछ पहले या बीज के साथ ही डाला जा सकता है। महुवे की खली और खलियों से भिन्न है। इसमें केवल २३ प्रतिशत नाइट्रोजन होता है और यह करीब ४, ५ महीने में खेत में मिलकर पौधे के लिये खुराक बन सकती है। यह नीम और रेंड़ी की खली के बराबर लाभदायक नहीं है।

इन खादों के पश्चात् बनावटी खादों का वर्णन आवश्यक है। यद्यपि बनावटी खादों में नाइट्रोजन, पोटाश इत्यादि की मात्रा अधिक है किन्तु फिर

भी ये खाद बिना वानस्पतिक खादों के खेत में डाले हुये पूरा लाभ नहीं देतीं। इन खादों को सूखी मिट्टी अथवा पिसी हुई खली के साथ मिलाकर खेत में देते हैं। इन खादों के देने में किसान को सावधानी से काम लेना चाहिये। ये फसल को कभी-कभी लाभ के बजाय हानि भी पहुँचा देती हैं। इनको खेत में गन्ना बोने के पश्चात् तुरन्त ही डालते हैं या पौधे उगने के बाद डालते हैं अथवा खेत में जिस समय कल्ले नये निकलने लगते हैं तब डालते हैं। जहाँ पर पानी का ठीक प्रबन्ध न हो वहाँ पर इन खादों को बरसात के आरम्भ में डालना चाहिये अथवा पानी देने के कुछ पहले डाला जाय। बनावटी खाद डालने के बाद सिंचाई अति आवश्यक है।

गन्ना बोने के समय बीज की छँटाई——अच्छी फसलें पैदा करने के लिये गन्ने की अच्छे फसल से बीज लेना आवश्यक है। यह तो प्रत्येक किसान जानता है कि गन्ने की अच्छी जातियों के बीज बोने से फसल अच्छी होती है किंतु यह सम्भव है कि किसान अच्छे गन्ने की किस्म बोये परन्तु उनकी फसल बहुत अच्छी न हो। उसका कारण यह हो सकता है कि उस बीज में किसी प्रकार की बीमारी लगी हो और उस गन्ने के बोने से वह बीमारी बढ़ जावे। नीचे उन बीमारियों का वर्णन किया जाता है जो कि बीज से फैल सकती हैं और जिनका गन्ने की बुवाई के समय ध्यान रखना आवश्यक है।

अगोले में सूराख करनेवाली सूँडी या कंसुआ——इसका कीड़ा गन्ने के पत्तों पर अंडे देता है। जब अंडों में से सूँडी निकल आती है तो यह गन्ने के बढ़ते हुए कल्लों में छेद करके अन्दर जाती है और कल्ले को अन्दर से खा डालती है और कल्ला सूख जाता है। फिर नीचे से कई और कल्ले फूट आते हैं जिनको कनफरी कहते हैं। गन्ने का बढ़ना रुक जाता है। बोआई के समय ऐसे सिरे के टुकड़ों को जिनमें ये कल्ले निकले हुए हों ध्यानपूर्वक अलग कर दिया जावे और उनको या तो खाद के गड्ढे में डाल दें या जला दें। यदि इन टुकड़ों को बोया जावेगा तो सूँडी जो उसमें रहती है तितली के सूरत में बदल कर बाहर निकल आवेगी और पत्तियों पर फिर अंडे दे देगी जिसमें नई सूँडियाँ पैदा होंगी और फसल को हानि पहुँचायेंगी।

बरसात में जिन गन्नों में ऊपर कल्ले निकल आये हों उनकी २-३ ऊपर की गाँठें काटकर चारे में खिला देना चाहिये। यदि किसी खेत में यह कीड़ा अधिक लगा हो तो उस खेत को जनवरी में ही काट लेना चाहिये ताकि कीड़े नष्ट हो जायँ व आनेवाली फसल बच जाय। गर्मी के दिनों में इनके अंडे पत्तियों से ढूँढ़-ढूँढ़कर नष्ट कर देना चाहिये।

पिहिक तने में सूराख करनेवाली सूँडी——इसका कीड़ा भी गन्ने पर अंडे देता है। जब सूँडियाँ अंडों में से निकल आती हैं तो वे अँखुए के करीब

सूराख करके तने में बैठ जाती हैं और अन्दर ही अन्दर उसको चबाती हैं। इससे गन्ने का वजन और शक्कर का परता कम हो जाता है इसलिये बोने के समय गन्ने के टुकड़ों के दोनों सिरे ध्यान से देख लें। अगर कोई छेद दिखाई पड़े तो उस टुकड़े को अलग करके या तो जला देना चाहिए या खाद में डाल दें। यदि इस टुकड़े को बो दिया जावेगा तो उसमें जो सूँडी मौजूद है तितली की सूरत में बदल कर बाहर निकल आयेगी और गन्ने की पत्तियों पर अंडे देगी। इन अंडों से नई सूँडियाँ पैदा होगी जो फसल को हानि पहुँचायेंगी। यह कीड़े गरमी में अधिक हानि करते हैं। बरसात लगने पर यह कम हो जाते हैं। इसी प्रकार जड़ का पिहिक जड़ में पहुँच कर बहुत से कल्लों में छेद करता रहता है और वह सूख जाते हैं।

कीड़े लगे हुए गन्ने के बीज कभी न बोने चाहिये। पेड़ी के लिये जो गन्ना रखना हो उसमें आग लगाकर सब पत्ते जला देना चाहिये। ऐसा करने से सब कीड़े मर जाते हैं। जिन खेतों में पेड़ी न रखना हो उनके सब ठूँठ निकालकर जला देना चाहिये ताकि सब कीड़े मर जायँ। खेतों में पानी भर देने से भी कीड़े धरती के नीचे ही मर जाते हैं। यदि ऊपर से कल्ले काटकर पूरी फसल डुबा दी जाये तो कीड़े दम घुटकर मर जाते हैं। यदि इतना करने पर भी किसी नये कल्ले की चोटी सूखी दिखाई दे तो उसे धरती से डेढ़ इंच नीचे से काट दिया जाये जिससे कीड़ा भी निकल आवे और मार दिया जाये।

काना की बीमारी—इस बीमारी को अंग्रेजी में रेड राट कहते हैं। यह कठिन बीमारी है और करीब-करीब हर देश में जहाँ गन्ना बोया जाता है पाई जाती है। यदि बीमारी हल्की हो तो बाहर से बीमारी का पता नहीं चलता, परन्तु गन्ने के अन्दर लाल-लाल धारियाँ होती हैं और इन लाल धारियों के बीच-बीच में सफेद धब्बे होते हैं। जब बीमारी बढ़ जाती है तो तना कमजोर हो जाता है और पत्तियाँ सूखने लगती हैं। जिन गन्नों में यह बीमारी लगती है उनका शक्कर का परता कम हो जाता है। यह बहुत कठिन छूत की बीमारी है और एक गन्ने से दूसरे गन्ने में लगती है। इसकी सबसे अच्छी दवा यह है कि जिस खेत में इस बीमारी का कुछ भी असर हो तो उसका बीज न बोया जावे। दूसरी जगह से जहाँ यह बीमारी न लगी हो बीज मँगाकर बोना चाहिये और दूसरे यह कि जिस समय गन्ने के टुकड़े बीज के लिये काटे जायँ, तो उनके दोनों सिरों को देख लिया जाय। यदि लाली दिखाई देवे तो उन टुकड़ों को जला दिया जावे। जिस खेत में यह बीमारी लग चुकी हो उसमें दो साल तक फिर गन्ना नहीं बोना चाहिये। बीमार गन्ने की जड़ें व पत्ती इत्यादि जला देना चाहिए।

गन्ने की बुवाई—बीज की अच्छी छँटाई के बाद गन्ने को बोना चाहिये। गन्ने में से १½-१½ बालिश्त के ऐसे टुकड़े काटने चाहिये कि उनके अन्दर कम

से कम ३ अँखुए हों ताकि यदि एक आँख का कल्ला न उग सके तो दूसरे का अवश्य उग आवे । एक एकड़ के लिये करीब ६००० से ८००० तक टुकड़े काफी होते हैं । जब नाली बनी हों और एक नाली के बीच से दूसरी नाली के बीच तक ३½ फीट का फासला हो तो छिला हुआ मोटे गन्ने या पौंड़ा जैसे मोरीशस १६ और वारवेडोज ६३०८ का बीज ६० मन और मामूली ईख का ४० से ५० मन प्रति एकड़ काफी होता है ।

इसके बोने के भी दो ढंग होते हैं (१) अँखुआ से अँखुआ मिलाकर (२) पैंड़ा से पैंड़ा मिलाकर । अँखुआ से अँखुआ मिलाकर बोने से मजदूरी और बीज दोनों अधिक खर्च होता है और साधारणतः इस ढंग को काम में कम लाते हैं । इस ढंग से बोया हुआ गन्ना बहुत घना उगता है । दूसरा ढंग टुकड़ा से टुकड़ा मिलाकर बोने का है और जहाँ नमी काफी है और दीमक का डर कम है वहाँ अधिक बीज डालने की आवश्यकता नहीं है । एक आदमी नाली में हल चलाता है फिर उसी कूँड़ में दूसरा हल चौड़ा करके चलाते हैं ताकि कूँड काफी चौड़ी व गहरी हो जावे और बीज ठीक जगह पर पड़ जावे । उसके बाद एक आदमी हाथ से या पैर से कूँड को बराबर करता है । बराबर जमीन में बोने पर और सब काम तो उसी प्रकार होते हैं केवल बोने के पश्चात् पाटा और फेरा जाता है । गन्ने के बोने में यह विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि बीज मिट्टी से बाहर न निकला रहे, क्योंकि बाहर निकला हुआ बीज सूख जाता है ।

गन्ने के बोने का अच्छा समय उत्तर-प्रदेश के पूर्वी भाग में २० जनवरी से १५ फरवरी, मध्य भाग में फरवरी का पूरा महीना, पश्चिमी भाग में १५ फरवरी से १५ मार्च तक है । गन्ने की पिलाई और बोने के लिये खेतों की तैयारी साथ-साथ चलनी चाहिये । जो गन्ना उचित समय पर खेत में बोया जाता है वह बाद की बोई हुई फसल से बहुत ज्यादा अच्छा होगा और अच्छा माल देगा । यह बात याद रखनी चाहिये कि फसल को बोने का एक समय है और उसकी पैदावार ठीक समय की बोआई पर बहुत निर्भर रहती है। एक पुरानी घाघ की कहावत है "अगाई सो सवाई" यानी आगे बोई हुई फसल सवाई पैदावार देती है । देर में बुंवाई से एक हानि और भी है कि जो लोग नहर के पानी से पलेवा करते हैं उन्हें याद रखना चाहिये कि १५ मार्च के बाद कुछ दिनों के लिये नहर में पानी की कमी हो जाती हैं और यदि इस बीच में पानी की माँग बढ़ गई तो बहुत लोगों को पानी नहीं मिल सकता और बुआई का समय निकल जाने से बड़ी हानि होती है और बाद को अच्छी फसल की आशा नहीं हो सकती ।

जल्दी बोई हुई फसल की जड़ें मई-जून तक बढ़कर नीचे धरती में फैल जाती हैं जिससे उस फसल में जेठ की गरम हवा और लू का बहुत कम असर होने का भय रहता है । देर में बोई हुई ईख की जड़ें ऊपरी सतह पर रहेंगी

और इस फसल को ठीक उस समय पानी की अधिक आवश्यकता होगी जब कि पानी कम मिल सकता है और ठीक समय पर पानी न मिलने और गन्ने में खुदाई और गुड़ाई न होने से पैदावार में बहुत कमी हो जावेगी।

गन्ने की गुड़ाई और उसके फ़ायदे—गन्ने की खेती में गुड़ाई का एक बहुत बड़ा महत्त्व है। पौधे की जड़ों को खाद और पानी के अलावा नरम जमीन और उचित मात्रा में हवा की आवश्यकता है और फसल की बढ़ाव सबसे अधिक जड़ों के फैलाव पर निर्भर है। इसलिए यह आवश्यक है कि बरसात के पहिले गर्मी के दिनों में जमीन को पोली और नरम रक्खा जाय ताकि इसमें फैलती हुई जड़ों के लिए काफी जगह मिले और आक्सीजन हवा जड़ों तक पहुँचती रहे। गन्ने में कई महीने तक नई-नई जड़ें और कल्ले फूटते रहते हैं। यदि जमीन नरम न रहे तो उसमें कल्ले कम फूटेंगे। नालियों में बनावटी खाद डालने के बाद सिंचाई व गुड़ाई कर देना बहुत आवश्यक है क्योंकि बिना ऐसा किये हुए खाद मिट्टी में नहीं मिल सकती। कुछ खादें ऐसी भी होती हैं जो खेत में डालने के कुछ अर्से बाद सड़ती हैं और यदि धरती कड़ी हुई तो वह शाकाणु जो इन खादों को घुलनशील बनाते हैं अपना काम न कर सकेंगे। गुड़ाई से न केवल जमीन में हवा (आक्सीजन) ही मिलती है बल्कि इससे नाइट्रोजन इकट्ठा करनेवाले शाकाणु की पैदावार भी बढ़ती है। सबसे अधिक नाइट्रोजन इकट्ठा होने का समय मार्च से जून तक है इसलिए इसी बीच में सिंचाई व गुड़ाई की आवश्यकता है। गुड़ाई कर देने से जमीन की नमी भी क़ायम रहती है जिसकी गन्ने की फ़सल को बढ़ने के समय बड़ी आवश्यकता होती है और खेत में घास नहीं बढ़ती। जो किसान थोड़े रक़बे में गन्ने की खेती करते हैं, उन खेतों की गुड़ाई के लिए कस्सी बहुत अच्छी है। बड़े रक़बे में खेती करनेवाले बड़े किसानों के वास्ते 'मेकोर्मिक' या 'वाह-वाह कल्टिवेटर' और 'अकोला हो' आवश्यक हैं। गन्ने के खेत में अँखुये निकलने और वर्षा आरम्भ होने के बीच में बराबर गुड़ाई करते रहना चाहिए। हर सिंचाई के बाद दो गहरी गुड़ाइयाँ कर देने से पैदावार बहुत बढ़ जाती है।

गोड़ाई के विषय पर जो शाहजहाँपुर फारम पर अनुसन्धान हुए उनके नतीजे नीचे दिये हुये हैं।

गन्ने की प्रति एकड़ पैदावार मनों में

गोड़ाइयों की गिनती	छिछली गोड़ाइयाँ	गहरी गोड़ाइयाँ	बिना गोड़ाई
बिना गोड़ाई	.	.	६६६.४
एक गोड़ाई	७७१.२	९७७.०	
दो गोड़ाइयाँ	८५८.२	९८९.८	
तीन गोड़ाइयाँ	८९७.८	८९४.२	

इन नतीजों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हर सिंचाई के बाद दो गहरी (कम से कम ढाई इंच) गोड़ाई होनी चाहिये। हर सिंचाई के बाद दो गोड़ाई आवश्यक है, इससे गन्ने की पैदावार लगभग ४२ प्रतिशत बढ़ जाती है। खुरपी से ऊपर ही ऊपर तीन गोड़ाइयाँ करने से भी पैदावार उतनी नहीं बढ़ी जितनी दो गहरी गोड़ाइयों से। तीन गहरी गोड़ाई हानिकर है इससे खेत की नमी उड़ जाती है।

गन्ने की सिंचाई:—गन्ने की बोवाई कई ढंग से होती है। हर ढंग से बोई हुई फसल को अलग-अलग मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। यदि जाड़ों में वर्षा हो गई है और खेत में काफी नमी है तो उसे जोतकर बिना सिंचाई के ही गन्ना सीधी लाइनों में बो दिया जाता है। यदि खेत में नमी कम है तो बोवाई के पहिले एक हल्की सिंचाई कर देना चाहिये। नालियों की बोवाई में बहुत पहिले दिसम्बर में ही सिंचाई करके खाद इत्यादि सड़ाई जाती है और नालियों में नमी भी बहुत देर तक रुकती है इसलिये नालियों में बोने के पहिले सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। नालियों में बोवाई के कुछ दिन बाद पानी लगाया जाता है। अच्छा ढंग तो यह है कि गन्ना उग आये उसके बाद पानी लगाया जाये। गन्ने की बोवाई के बाद बहुधा जून तक बरसात नहीं होती और गर्मी भी बहुत तेज होती है। यही समय गन्ने के बढ़ाव का है इसलिये इस समय इसको पानी की बड़ी आवश्यकता होती है। गन्ने की बाढ़ के दो ऋतु विशेष होते हैं।

१—मार्च से लेकर आखीर जून यानी वर्षा आरम्भ होने तक—इस ऋतु में जड़ें फूटती और बढ़ती हैं और छोटे-छोटे कल्ले निकलते हैं।

२—सितम्बर और अक्टूबर—इस ऋतु में गन्ने में शक्कर पड़ती है।

इन दोनों में से अगर किसी एक में भी पौधे को खाद व पानी की कमी होगी तो पैदावार पर बहुत हानिकर प्रभाव पड़ेगा। सिंचाई कितनी बार होगी यह मौसमी हालत, पानी के साधन, किस्म भूमि और खेती के ढंग पर निर्भर है। काश्तकार गन्ने के खेत में बहुधा दो या तीन सिंचाई करते हैं और उनके खेतों में खाद-पाँस कम होने के सिवा, इससे अधिक पानी की आवश्यकता भी नहीं होती। यदि खेत में खाद अच्छी तरह दी गई है और उससे भारी पैदावार लेना है तो कम से कम ५ से ८ सिंचाइयाँ करना आवश्यक है। यदि फसल नालियों में बोई गई है तो उसको कम से कम ५ सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। ४ सिंचाई मार्च से आखीर जून तक और एक सितम्बर या अक्टूबर में। उत्तरी पूर्वी जिलों में व तराई में कम सिंचाई और सूखे जिलों में जैसे आगरा व इलाहाबाद डिवीजन में ज्यादा होनी चाहिये। जिला गोरखपुर की भाठ जमीनों में एक भी सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि इन जमीनों में पानी

रोकने की अधिक शक्ति होती है और नीचे से नमी ऊपर आती रहती है।

गन्ने की पूरी पैदावार लेने के लिये यह आवश्यक है कि मध्य मई से आखीर जून तक हर २६ दिनों के बाद सिंचाई की जाय। जहाँ जमीन बलुई हो वहाँ हर १५ या १८ रोज के बाद सिंचाई आवश्यक है।

मिट्टी चढ़ाना——जब गन्ने के पौधे बढ़ें और इनमें अँखुये फूटने लगें तो मेड़ों की मिट्टी को धीरे-धीरे गुड़ाई के साथ काटकर नालियों में डालते रहना चाहिये यहाँ तक कि मई के अन्त तक मेड़ें कटकर खेत बराबर हो जावे। इसके बाद जब बरसात आरम्भ हो जावे और पौधे ५ या ६ फीट ऊँचे हो जावें तो मेंड़ों की जगह की मिट्टी को उठाकर गन्ने की जड़ों पर चढ़ा देना चाहिये। इससे अच्छी कमाई हुई मिट्टी गन्ने की जड़ों को मिल जाती है और फसल खूब बढ़ती है। मिट्टी चढ़ाने से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि गन्ने के पौधे को सहारा मिल जाता है और वह गिरने से बचे रहते हैं। मिट्टी चढ़ाने का काम जुलाई के महीने में समाप्त कर देना चाहिये। कभी-कभी मिट्टी एक ही बार में नहीं बल्कि दो बार चढ़ाई जाती है तब पूरी मिट्टी चढ़ पाती है।

गन्ने की बँधाई——यदि गन्ने की पैदावार ७०० मन प्रति एकड़ से अधिक होने की आशा है तो गन्ने की बँधाई भी एक आवश्यक क्रिया है जिस पर किसानों को विशेष ध्यान देना चाहिये। बरसात की ऋतु में जब तेज हवा चलती है तो पौधों के गिर जाने की सम्भावना रहती है इसलिये पौधों को आपस में मिलाकर बाँध देना चाहिए ताकि वह गिरने से बच जायँ। गन्ने की बँधाई का काम अगस्त के अन्त तक समाप्त कर देना चाहिये।

गन्ने की उन्नतिशील जातियाँ:——कोयम्बटूर नं० ४५३, ३१३, ५२७, ४२१, ३३१, ३५६ इत्यादि हैं, कोयम्बटूर-शाहजहाँपुर ७६, ३२[illegible] १०६, १८६, ४४३, २४५ और कोयम्बटूर-करनाल ३० भी अच्छे गन्ने की जातियाँ निकली हैं।

१——कोयमबिटूर नं० ४५३——उन्नतिशील गन्नों की जातियों में से यह सारे सूबे में फैल चुकी है। यह गन्ना पानी की अधिकता और कमी दोनों को अच्छा सहन करता है और जल्दी नहीं गिरता। कुछ कड़ा होने की वजह से जंगली जानवरों से भी उसको कम हानि होती है।

२——कोयमबिटूर नं० ३१३——यह जल्द तैयार होनेवाली जाति है। इसकी पैदावार कोयमबिटूर नं० ४५३ से कुछ कम होती है। परन्तु शक्कर का परता अच्छा होता है।

३——कोयमबिटूर नं० ३१२——यह बहुत तेजी के साथ बढ़ती है इसलिये इस पर तने में छेद करनेवाली तितली का कम असर होता है। खेत

में पानी अधिक लगने से इसकी फसल को नुकसान पहुँचता है। इसकी पैदावार बहुत होती है, लेकिन नर्म होने के कारण यह जल्द गिर जाता है। इस पर मिट्टी चढ़ाना और गन्नों की बँधाई करना बहुत आवश्यक है। यह उत्तर प्रदेश के मध्य भाग और रुहेलखण्ड में अच्छा चलता है।

४. कोयमबिटूर नं० ४२१--यह गन्ना हर तरह से अच्छा है। यह कड़ा होता है इसलिये गिरता कम है। पैदावार अधिक होती है। किसान इसको बहुत पसन्द करते हैं और इसकी शक्कर का परता अच्छा होता है।

कोयमबिटूर नं० ३१--यह गन्ना अच्छा है, जल्दी नहीं गिरता और तैयार बहुत देर में होता है। फरवरी से पहिले यह गुड़ या शक्कर बनाने के लिये तैयार नहीं होता। कम पानी होने पर भी इसकी पैदावार अच्छी रहती है। जल्दी बढ़ने से कल्ले में छेद करनेवाले कीड़ों के आक्रमण से बच जाता है। कोयमबिटूर ३३१ पानी की अधिकता भी खूब सहन करता है। इसमें शक्कर का परता कुछ कम होता है और बीमारियाँ भी लगती हैं इसलिये इसको निकाला जा रहा है।

कोयमबिटूर नं० ३५६--यह औसत मोटाई का गन्ना होता है। इसको अधिक खाद और पानी की आवश्यकता होती है। इस पर बीमारियों का कम असर होता है। सूखी जगहों में इसकी पैदावार कम होती है और जिन खेतों में बरसात के दिनों में ज्यादा पानी लगता है उनमें नं० ३५६ की पैदावार अच्छी नहीं होती। यह जल्द पक जानेवाली जाति है।

गन्ने की और अच्छी किस्में जो उत्तर-प्रदेश के पूर्वी भाग में फैल रही हैं वह निम्नलिखित हैं--कोयमबिटूर ३९५, ३९३ ५१३, ३७० और कोयमबिटूर शाहजहानपुर १०९ मध्य भाग में को० ३८५, को० ६१७ और को० क० ३०१ रुहेलखण्ड में को० शा० ७६, १८६, २४५, ५१० और पश्चिमी भाग में को० शा० ३२१ और १४५ सबसे अच्छे गन्ने निकले हैं।

गन्ने में चीनी और गुड़ का परता--गन्ने की खेती चीनी या गुड़ के लिये की जाती है, इसलिये किसान को यह भली-भाँति समझ लेना चाहिये कि किन बातों पर चीनी या गुड़ का परता निर्भर करता है। कुछ गन्ने की किस्में ऐसी है जिनकी पैदावार प्रति एकड़ तो अधिक होती है परन्तु शकर का परता उनमें कम होता है, इसके विपरीत कुछ किस्में ऐसी हैं जिनकी पैदावार तो कम होती है परन्तु शकर का परता ऊँचा होता है। मिल को सप्लाई करने वाले किसानों का स्वार्थ इसमें है, कि गन्ना अधिक पैदा हो, शकर का परता चाहे कम ही हो, और मिल मालिकों का स्वार्थ इसमें है कि शकर का परता अधिक हो चाहे पैदावार में गन्ना कम ही क्यों न हो। इन दोनों विरोधी स्वार्थों को देखते हुये कृषि विभाग ऐसे गन्नों का प्रचार

करने का प्रयत्न करता है जिनसे अधिक से अधिक शकर प्रति एकड़ मिल सके।

कुछ गन्ने शीघ्र पक कर तय्यार होते हैं और कुछ देर में। यदि देर में पकने वाले गन्ने शीघ्र पेर डाले जाते हैं तो शकर का परता बहुत कम हो जाता है। यदि जल्द पकने वाले और देर में पकने वाले गन्ने दोनों बोये जाँय और उनके पकने के ठीक समय पर उन्हें पेरा जाय तो पूरे सीजन के शकर का परता ऊँचा हो जायगा। शीघ्र पकने वाले गन्ने को० शा० ३२१, को० शा० २४५, को० ३१३, को० शा० ५१०, को० शा० ३९५, को० ५२७, और को० ५१३ इत्यादि हैं। इन गन्नों को पेड़ी के गन्ने के बाद और गन्नों से पहिले पेरना चाहिये।

गन्ने की पेराई पिछड़ जाने पर भी शकर का परता कम हो जाता है। प्रयत्न यह होना चाहिये कि अप्रैल के अन्त तक में गन्ने की पेराई समाप्त हो जाय।

गन्ना कटने के बाद शीघ्र से शीघ्र पेरना चाहिये। कटने के बाद गन्ने में सुक्रोस का बड़ी शीघ्रता से ह्रास होता है।

गन्ने में शकर का परता इस पर भी निर्भर है कि गन्ना किस समय बोया जाता है। शीघ्र बोये हुये गन्ने में शकर का परता देर से बोये हुये गन्ने की तुलना में ऊँचा होता है जैसा कि नीचे की तालिका में देखा जा सकता है:—

बोने के समय का सुक्रोस प्रतिशत पर प्रभाव

बोवाई का	को० ३१३			को० ४२१			को० ३३१		
समय	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४
फरवरी प्रथम सप्ताह	१८.२७	१९.११	१७.३३	१७.८३	१७.४०	१६.८८	१६.५३	१६.५८	१६.३७
मार्च प्रथम सप्ताह	१८.७३	१८.८२	१८.४०	१७.५९	१७.६१	१६.४७	१६.४७	१६.५१	१६.२९
अप्रैल द्वितीय सप्ताह	---	१५.४४	१७.५५	१६.८५	१६.५०	१६.३४	१५.८९	१५.४१	१५.६७

जांच का समय—फरवरी का अन्तिम सप्ताह

गन्ने में शकर का परता इस पर भी निर्भर है कि कौन सी खाद और कितनी भाग में गन्ने को दी गई है। अधिक खाद देने से गन्ने में शकर का परता कम हो जाता है, यही कारण है कि कभी-कभी गोंयड़ के गन्ने का गुड़ अच्छा नहीं बनता। कम्पोस्ट और गोबर की खाद देने से अमोनियम सलफेट या अन्य रासायनिक खादों की तुलना में शकर का परता ऊँचा रहता है।

गन्ने में बीमारियों के लग जाने पर भी शकर का परता बहुत घट जाता है। पैरिला के लगने के ३--५ प्रतिशत तक सुक्रोस घट जाता है। इसी प्रकार से रेड राट या काना की बीमारी से भी शकर का परता बहुत घट जाता है। जड़, तने और अगोले में छेद करने वाली सूँड़ियों के आक्रमण होने पर १ से ३ प्रतिशत तक सुक्रोस कम हो जाता है।

उपरोक्त बातों के अतिरिक्त जलबायु और भूमि पर भी शकर का परता निर्भर करता है। गर्म और नम जलवायु में पैदा किये हुये गन्ने में शकर का परता ऊँचा रहता है।

मटियार मिट्टी तथा जिसमें पानी लगता है। उसका गन्ना देर में पकता है, इसलिये उचास और बलुहा खेतों का गन्ना पहिले पेरना चाहिये।

गन्ने की पेड़ी

उत्तर-प्रदेश में गन्ने की औसत पैदावार लगभग ४०० मन प्रति एकड़ है। इस प्रदेश में गन्ने का कुल क्षेत्रफल लगभग २५००,००० एकड़ है, उसमें से ८००,००० एकड़ में गन्ने की पेड़ी ली जाती है। पेड़ी की फसल की औसत पैदावार २०० मन प्रति एकड़ है और बहुत हद तक इसकी पैदावार कम होने के कारण कुल गन्ने की औसत पैदाबार भी कम हो जाती है। उदाहरण के लिये यदि दो एकड़ नये बोये गन्ने को पैदावार ५०० मन प्रति एकड़ होगी तो उसके साथ एक एकड़ गन्ने की पेड़ी की पैदावार जो केवल २०० मन होगी, मिला देने से ३ एकड़ की औसत पैदावार केवल ४०० मन ही प्रति एकड़ रह जाती है।
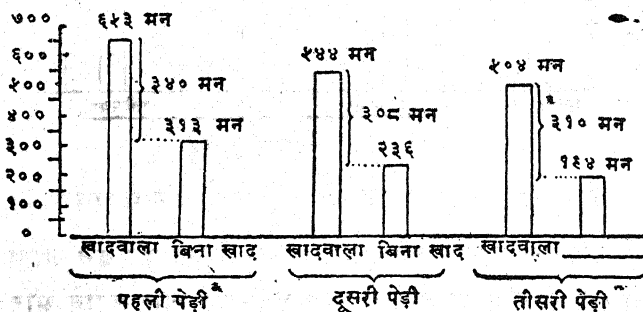
खाद वाले और बिना खाद के पेड़ी की पैदावार

इस समय गन्ने की पैदावार इतनी कम है कि कभी-कभी पेड़ी की फसल रखने की बुद्धिमत्ता में संदेह होने लगता है। यदि केवल २०० मन ही गन्ना प्रति एकड़ लेने के लिए खेत साल भर फँसा रहे तो उससे अच्छा है कि और

कोई फसल ली जाय जो ऐसी खराब पेड़ी से अधिक पैदावार देगी और खेत की उर्वरा शक्ति को भी उतनी हानि नहीं पहुँचायेगी जितनी कि पेड़ी की फसल से होती है।

इस विषय पर बहुत विचार के बाद केन्द्रीय गन्ना समिति ने यह तय किया कि पेड़ी रखना हानिकारक नहीं है बल्कि यदि इसको उचित रूप से किया जाये तो यह गन्ना पैदा करने का बड़ा सस्ता और लाभदायक ढंग है। जिस लापरवाही के साथ बिना खाद, पानी और पूरी गोड़ाई के पेड़ी की फसल अधिकतर किसान आजकल रखते हैं, उससे अवश्य किसान और जमीन, दोनों को हानि पहुँचती है परन्तु यदि इस पेड़ी में अच्छी गोड़ाई करके पूरी खाद की मात्रा डालकर वैसी ही सिंचाई और गोड़ाई की जाय जैसे कि नए बोए गन्ने की की जाती है तो इससे सस्ता और लाभदायक गन्ना पैदा करने का दूसरा ढंग नहीं है। पेड़ी से जल्दी तैयार होने वाली फसल मिल जाती है और पिराई का काम भी जल्दी आरम्भ किया जा सकता है। नवम्बर के महीने में ही गुड़ और चीनी का परता पेड़ी के गन्ने से सन्तोष-जनक होता है। पूरी खाद, सिंचाई और गोड़ाई दे देने से पेड़ी की पैदावार लगभग उतनी ही हो जाती है जितनी कि नए बोये गन्ने की। यदि कमी पड़ती है तो केवल उतने ही गन्ने की जितनी कि बोने के समय नए गन्ने के खेत में बीज डाला जाता है यानी अच्छी पेड़ी के खेत से कुल उतना ही गन्ना निकलता है जितना कि नये बोये हुये गन्ने के खेत से। नाली में बोये हुये गन्ने की पेड़ी समतल भूमि में बोये हुये गन्ने की पेड़ी से लगभग १४ प्रतिशत अधिक पैदा होती है।
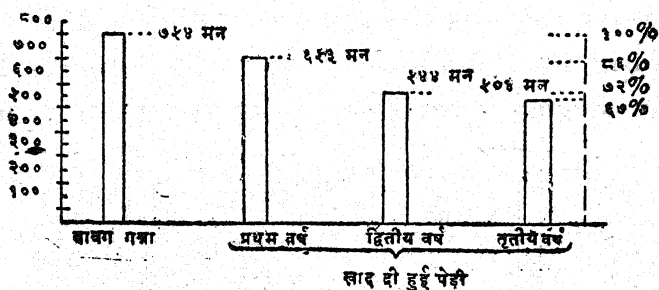
बोए गन्ने और खाद दी हुई पेड़ी की पैदावार

पेड़ी रखने से किसान की एक साल की मेहनत भी बच जाती है क्योंकि नये गन्ने की तैयारी में गन्ना बोने के पहले कहीं-कहीं चार महीने और कहीं-कहीं पूरे साल भर खेत खाली रहता है और उसमें गन्ना बोने की तैयारी होती रहती है। इस तरह से नये बोये हुये गन्ने की फसल से लगभग डेढ़ या दो साल में एक फसल तैयार होती है। परन्तु पेड़ी केवल १० महीने में फिर से तैयार हो जाती है और जाड़े के महीने में पहले काटकर और पेराई करके इसमें एक फसल चना,

साँवा या मेथी की उसी साल के अन्दर ली जा सकती है। गन्ने की अच्छी पेड़ी की फसल लेने के लिये कम से कम १२० पौंड नाइट्रोजन पहुँचानेवाली खाद एक एकड़ में डालनी चाहिए। इतना नाइट्रोजन करीब २० गाड़ी बढ़िया सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट की खाद के रूप में डाली जा सकती है या ४ मन सलफेट अमोनिया और १२ मन खली की खाद (रेंड़ी, नीम, मूँगफली और सरसों इत्यादि) को एक में मिला कर पेड़ी की फसल में देना चाहिये। खाद अप्रैल या मई के महीने में देकर तुरन्त सिंचाई कर देना चाहिये। इस प्रकार खाद पहुँचा देने से गन्ने की पैदावार ३५० या ४०० मन प्रति एकड़ बढ़ जाती है। हमारे उत्तर-प्रदेश में बहुत अच्छे किसानों ने १७०० और १८०० मन तक प्रति एकड़ पैदा कर लिया है और पेड़ी की फसल भी ११००-१२०० मन तक प्रति एकड़ पैदा हो चुकी है। कोई कारण नहीं है कि पूरे तौर से पानी और गोड़ाई देकर और ठीक समय पर अच्छा बीज बो कर बाकी किसान भी गन्ने की और उसकी पेड़ी की भारी फसलें पैदा करने का प्रयत्न न करें। प्रयोग से यह सिद्ध हो चुका है कि खाद का जितना असर नये बोये हुये गन्ने पर होता है, उससे बहुत अधिक पेड़ी की फसल पर होता है। जहाँ एक गाड़ी खाद से नये बोये हुये गन्ने की पैदावार १० मन बढ़ती है, वहाँ उसी एक गाड़ी खाद से पेड़ी की फ़सल की पैदावार १५ मन बढ़ जाती है। इस प्रकार के प्रयोग अमेरिका के एक प्रदेश लुसियाना में किये गये तो वहाँ के नतीजे से इस बात की और भी पुष्टि हो गई कि पेड़ी में खाद डालना नए बोए हुए गन्ने की अपेक्षा अधिक लाभदायक हुआ। वहाँ तो जितनी खाद डालने से नये बोये हुए गन्ने में १ मन पैदावार बढ़ी उतनी ही खाद पेड़ी में डालने से लगभग ४ मन पैदावार बढ़ गई।

इसका कारण भी समझ में आता है, क्योंकि गन्ना बोने के लिये खेत को खाली रक्खा जाता है, उसकी जुताइयाँ होती हैं और उस जमीन की उर्वराशक्ति गन्ना बोने से पहिले काफी बढ़ जाती है और उसे उतनी खाद की आवश्यकता नहीं होती जितनी गन्ने की पेड़ी को होती है। गन्ने की पेड़ी नई बोई हुई फसल के बाद तुरन्त बढ़ना आरम्भ करती है। परन्तु उस खेत में उससे अगली गन्ने की फसल इतनी पौधों की खूराक नहीं छोड़ती कि पेड़ी की फसल अच्छी तरह से बढ़ सके। पेड़ी की जड़ें तो जमीन के अन्दर खूब फैली हुई होती हैं, परन्तु उन जड़ों से खाद और पानी की कमी के कारण पृथ्वी में से काफी पौधों की खूराक नहीं मिलती। ऐसे अवसर पर यदि खेत में खाद डालकर पानी दे दिया जाये तो पेड़ी की फैली हुई जड़ें उसका पूरा प्रयोग कर लेती हैं और उसका बहुत ही थोडा अंश नष्ट होता है। प्रयोग से यह सिद्ध हो चुका है कि पेड़ी की पहली फसल जो अच्छी तरह से पानी, खाद और गोड़ाई देकर तैयार की जाती है वह नये बोये हुये गन्ने से कभी-कभी अच्छी होती है।

अच्छी पेड़ी लेने के लिये उससे अगली फसल का गन्ना अच्छा और घना होना चाहिये और गन्ने की फसल काटते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि गन्ना जमीन से थोड़ा नीचा ही कटे। गन्ने की पहली फसल काटने के बाद जब गोड़ाई हो जावे तो खेत में चलते समय गन्ने की जड़ें पैर में नहीं चुभना चाहिये और जमीन बराबर करने के बाद गन्ने की खूटियाँ ऊपर नहीं मालूम होनी चाहिये। पेड़ी के जो नये कल्ले नीचे से निकलते हैं वह अच्छे और अधिक उपजाऊ होते हैं और ऐसी पेड़ी की फसल पूरी बढ़ जाने के बाद भी गिरती नहीं है।

गन्ने की केवल पहली ही पेड़ी रखनी चाहिये, क्योंकि दूसरी, तीसरी और चौथी पेड़ी अच्छी नहीं होती और पैदावार बराबर घटती ही जाती है।

बिना खाद दी हुई पेड़ी
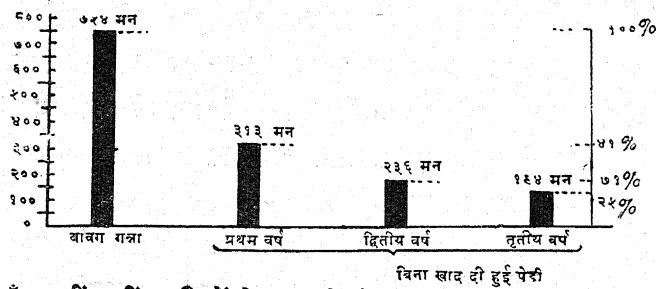
हाँ, कहीं-कहीं नदियों के खादरों में या तराई में जहाँ जमीन की उर्वराशक्ति बढ़ती रहती है कुछ लोग दूसरी, तीसरी और चौथी पेड़ी तक ले लेते हैं। पेड़ी रखने में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यदि पहले बोये हुये गन्ने में किसी प्रकार की बीमारी हो तो उसकी पेड़ी कभी भी नहीं रखनी चाहिये। क्योंकि वह बीमारी पेड़ी की फसल में बहुत तेज़ी से बढ़ती है।

किसान भाइयों को चाहिये कि वह पेड़ी में उतनी ही खाद, पानी और गोड़ाइयाँ दें जितनी कि नए बोए हुए गन्ने में देते हैं तो उनकी पेड़ी की पैदावार इतनी बढ़ जाएगी कि यदि नए बोए हुए गन्ने का क्षेत्रफल कुछ कम भी कर दें तो गन्ने की पैदावार में कमी नहीं होगी। इस प्रकार पेड़ी और गन्ने की पैदावार बढ़ा देने से जो खेत बच रहें उनमें अधिक अन्न उपजाकर वह अधिक धनोपार्जन करें और देश में जो अन्न की कमी है उसको शीघ्र पूरा करें। इस समय जितना गन्ना ८,००,००० एकड़ पेड़ी से पैदा किया जाता है, उतना ही गन्ना ऊपर बताए हुए ढंग से केवल चार ही लाख एकड़ से पैदा हो सकता है और गन्ने की पैदावार बिना घटाए हुए भी बहुत से खेत जिनमें इस समय गन्ना पैदा किया जाता है, उनमें गन्ने के बजाय गेहूँ, चना, सरसों इत्यादि पैदा किया जा सकता है।

गन्ने के लिये एक नया और लाभदायक हेरफेर

फसलों का हेरफेर प्रायः भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाने, मजदूरों

को साल भर ठीक से काम में लगाये रखने और अधिक से अधिक पैदावार और भूमि से लाभ प्राप्त करने के लिये किया जाता है।

गन्ने की खेती में अच्छे किसान प्रायः या तो खेत को खाली रखते हैं या उसमें गन्ने की फसल के पहले सनई की हरी खाद देते हैं। दूसरे और गरीब किसान प्रायः वर्षा ऋतु में धान या कपास की फसल लेते हैं और इसके बाद गन्ना बोने के पहले रबी में मटर की फसल लेते हैं। यद्यपि इस प्रकार के किसानों को दोनों रबी और खरीफ की एक-एक फसल मिल जाती है, किन्तु गन्ने की पैदावार में उन्हें बहुत गहरी हानि उठानी पड़ती है। ऐसे किसान जिनके पास खेत कम हैं और जो रबी की फसल कटने के बाद तुरन्त गन्ना बोने के लिये बाध्य हैं उत्तर-प्रदेश के पूर्वी जिलों में, जहाँ कि जनसंख्या बहुत घनी है, अधिक संख्या में पाये जाते हैं। इस ढंग से खरीफ व रबी दोनों फसलें लेने के बाद गन्ने की औसत पैदावार केवल ३०० से ४०० मन प्रति एकड़ होती है।

एक नया हेर-फेर--भूमि की उर्वराशक्ति और छोटे खेतों में गन्ने की औसत पैदावार बढ़ाने के विचार से उत्तर-प्रदेश के कुछ अनुसन्धानात्मक (रिसर्च) और निजी फार्मों पर एक नये हेरफेर (मूँगफली, अरहर, गन्ना) की प्रयोग द्वारा जाँच की गई है। इससे किसान गन्ने की फसल के पहले एक फसल खरीफ की और एक रबी की ले लेते हैं और गन्ने की पैदावार को किसी
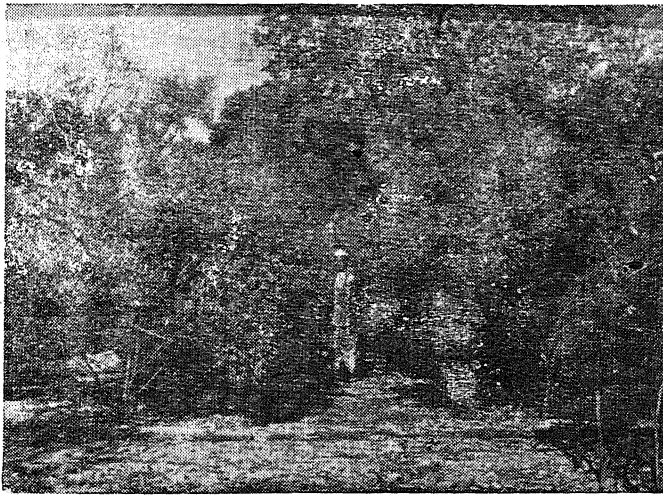
मूंगफली खोद लेने के बाद अरहर की फसल। पंक्तियों के बीच की दूरी ६ फीट है।

प्रकार की हानि नहीं होती। फसलों के इस नये हेरफेर से ऊँची और बलुई दोमट मिट्टी में बहुत ही उत्साहवर्द्धक फल निकले हैं। इस हेरफेर से खरीफ में एक फसल मूँगफली की ले ली जाती है और आगामी जाड़े की ऋतु में एक फसल अरहर की और उसके बाद तुरन्त ही गन्ने की फसल बो दी जाती है।

अरहर और मूँगफली वर्षा के प्रारम्भ होते ही एक साथ बोई जाती है। अरहर ६-६ फीट दूर पंक्तियों में बोई जाती है और मूँगफली अरहर की पंक्तियों के बीच लाइनों में बोई जाती है। ये लाइनें डेढ़-डेढ़ फीट की दूरी पर रहती हैं। इस प्रकार अरहर की दो पंक्तियों के बीच मूँगफली की ५ पंक्तियाँ होती हैं, जैसा चित्र में दिखलाया गया है।
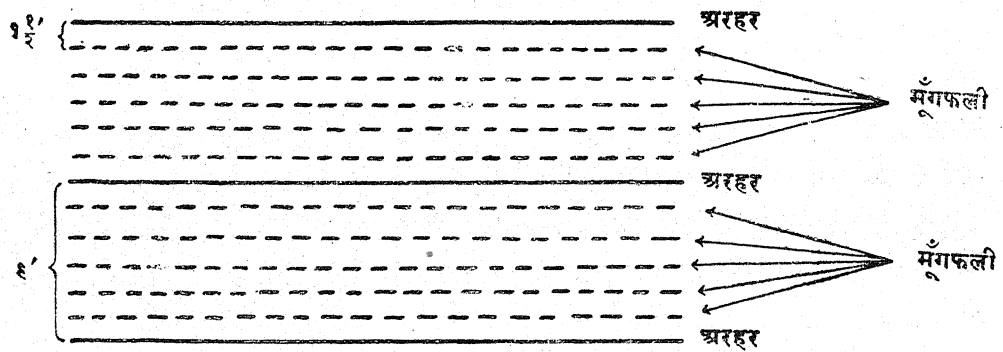
अगस्त के महीने में अरहर के कमजोर पौधे देख-देखकर निकाल देते हैं जिससे होनहार और स्वस्थ पौधे ढाई से तीन फीट की दूरी पर रह जाते हैं।

जुलाई और अगस्त में मूँगफली के साथ ही हेंड हो या कस्सी से इसकी गोड़ाई की जाती है। नवम्बर में मूँगफली की फसल खोद लेने के बाद
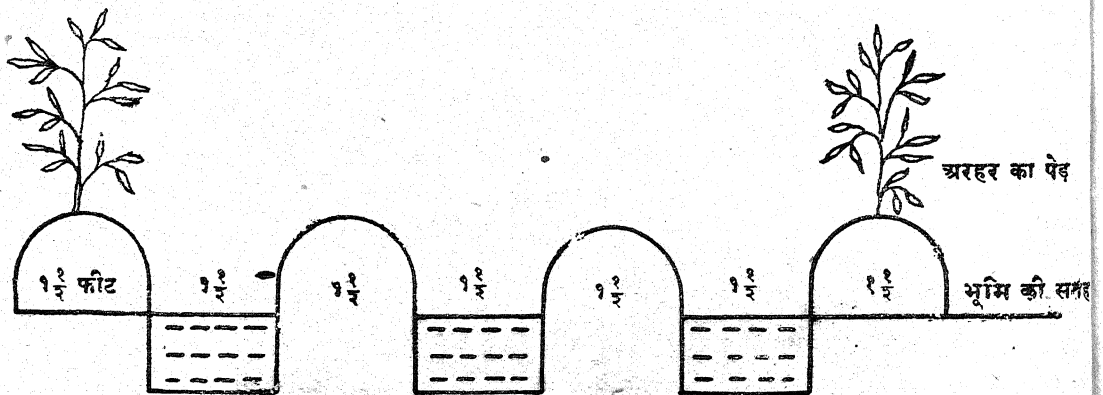
उसी जगह में अरहर की पंक्तियों के बीच की जमीन गन्ना बोने के लिये उसी प्रकार तैयार की जाती है जैसे नालियों में गन्ना बोने के लिये साधारणतया खेतों की तैयारी की जाती है। नालियों में गन्ना बोने का ढंग समतल भूमि में गन्ना बोने के ढंग से इस हेर-फेर के लिए अच्छा सिद्ध हुआ है। अरहर की पंक्तियाँ नालियों के बीच ऊँची मेंड़ों पर पड़ती हैं और जाड़े की ऋतु में वे बिलकुल सुरक्षित रहती हैं। नालियाँ तीन-तीन फीट की दूरी पर बनाई जाती हैं और नवम्बर से उनमें गोड़ाई और खाद देने का काम आरम्भ कर दिया

जाता है। फरवरी में इन नालियों में गन्ना बोया जाता है और जिस समय तक गन्ने जमने प्रारम्भ होते हैं उस समय तक अरहर मार्च में कट जाती है। अरहर के पौधे अधिक दूरी पर (ढाई फीट से तीन फीट तक पौदे से पौदे की दूरी और ६-६ फीट पंक्ति की दूरी) होने के कारण झाड़ी की तरह हो जाते हैं और अरहर की साधारण फसल से ५० से १०० प्रतिशत अच्छी पैदावार दे देते हैं यहाँ तक कि अरहर के कुछ अकेले पौधे १ सेर से २ सेर तक पैदावार देते हैं। इस प्रकार के खेत से पैदा की हुई गन्ने की फसल भी प्रायः एक भारी फसल होती है जो ७०० से १००० मन गन्ना प्रति एकड़ देती है। इन नालियों में पैदा की हुई गन्ने की फसल साधारण अठमास या हरी खाद दिये हुये खेतों से भी प्रायः बहुत अच्छी होती है।

सोहना कृषि-फार्म बस्ती और मुख्य गन्ना अनुसन्धान केन्द्र शाहजहाँपुर पर किये गये प्रयोगों में हेरफेर की विभिन्न फसलों से जो पैदावार हुई थी वह नीचे दी गई है।

विभिन्न हेर-फेर की फसलों की पैदावार

साल	प्रयोग का स्थान	हेरफेर की फसल	पैदावार प्रति एकड़ मनों में
१९३९-४१	सोहना कृषि-फार्म बस्ती	मूँगफली	१६.०
		अरहर	१९.०
		गन्ना नं० ४२१	१०५०.०
१९४४-४६	मुख्य गन्ना अनुसंधान-केन्द्र शाहजहाँपुर	मूँगफली	१४.६
		अरहर	१५.९
		गन्ना नं० २४५	७२७.०
		गन्ना नं० ५५७	८८३.८

उपरोक्त हेरफेर से यह लाभ है कि गन्ने के पहले की फसलें फलीदार होने के कारण भूमि को उर्वरा बना देती हैं। इनमें से अरहर एक गहरी जड़ोंवाली और मूँगफली उथली जड़ोंवाली फसल है। किसान दो साल के भीतर बिना खाद और सिंचाई के दो खाद्यान्नवाली फसलें पा जाता है और गन्ने की भी एक बहुत अच्छी फसल उसको मिल जाती है। यह ढंग खेत को खाली रखने या उसमें हरी खाद देने से भी अच्छा है और विशेषकर छोटे किसानों के लिये अधिक उपयोगी है जो गन्ना बोने के पहले लगभग एक पूरे साल तक अपने खेतों को खाली नहीं रख सकते।

उपरोक्त हेरफेर ऊँची (जिनमें बरसात में पानी न रुकता हो) और बलुई दूमट मिट्टी के लिये, जहाँ मूँगफली और अरहर की फसलें सफलतापूर्वक उगायी जा सकती हैं, सबसे अच्छा है।

गन्ने के लिये एक दूसरा लाभदायक हेरफेर नया चला है। मेरठ जिले में चने के साथ ही गन्ना बो देते हैं। जाड़े में गन्ना अधिक नहीं बढ़ता और चने पर साया नहीं पड़ती। चने की अच्छी फसल लगभग १५ मन प्रति एकड़ की मिल जाती है और गन्ना भी अच्छा होता है। बाराबंकी फार्म पर चने व मटर दोनों के साथ गन्ना बोया गया। यहाँ मटर को पानी नवम्बर के चौथे सप्ताह में लगा व चने को देर में १७ फरवरी को पानी लगाया गया। इन गन्नों के फसल की तुलना साधारण समय पर बोए हुये गन्ने से नीचे के चित्र में किया गया है।

जून के महीने में लिये गये गन्ने की फसल के चित्र

केवल गन्ने की फसल
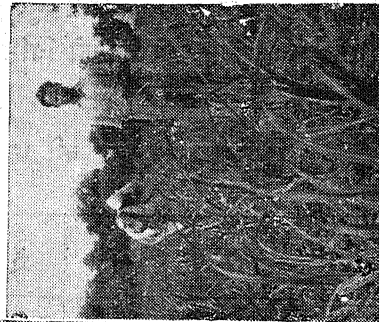
चने के साथ गन्ने की फसल

मटर के साथ गन्ने की फसल
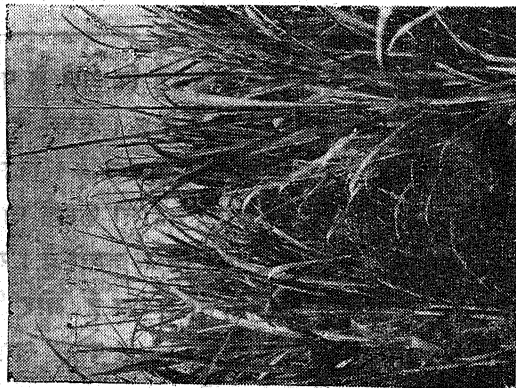
अगस्त में लिये गये गन्ने की फसल के चित्र

मटर के साथ गन्ने की फसल

चने के साथ गन्ने की फसल

केवल गन्ने की फसल

उन्नत कोल्हू से लाभ

अच्छे कोल्हू से ६५ से ६७ प्रतिशत तक रस निकलता है, किन्तु यदि कोल्हू खराब होता है जैसा कि गाँवों में बहुधा चलते हैं तो पूरा रस नहीं निकलता है और उसका बहुत बड़ा हिस्सा खोई के साथ ख़राब हो जाता है जिससे किसानों को बहुत हानि होती है। उदाहरण के रूप से यदि औसतन एक बीघे में ३००ऽ गन्ना पैदा हो तो करीब २००ऽ रस अच्छे कोल्हू से निकलेगा। लेकिन ख़राब कोल्हू से सिर्फ़ १५०ऽ रस निकलेगा। इस कारण ख़राब कोल्हू प्रयोग में लाने से गुड़ का परता गिर जावेगा। गुड़ रस का ⅙ भाग तैयार होता है। करीब ६ मन रस में १ मन गुड़ होता है। अच्छा कोल्हू रखने से किसान के यदि ३००ऽ गन्ने में ३० मन गुड़ बनेगा तो ख़राब कोल्हू से उसी गन्ने में केवल २५ मन गुड़ पैदा होगा अर्थात् प्रति बीघा औसतन ५ से ८ मन तक गुड़ की पैदावार घट जावेगी, जिसका फल यह होगा कि अच्छी खेती करनेवाले किसान को भी बुरा कोल्हू चलाने से सैकड़ों रुपया प्रति एकड़ की हानि होती है। जो लोग गन्ना मिल में बेचते हैं उनका कोल्हू से कोई सम्बन्ध नहीं है लेकिन वह किसान जो गुड़ बनाते हैं उनको अच्छी भट्ठी, उम्दा कोल्हू और साफ़ गुड़

बनाना गन्ने की खेती से भी बड़े महत्त्व का है। केवल गन्ना खेत में खड़ा कर लेने से ही गुड़ बनानेवाले किसान का काम समाप्त नहीं होता। यदि खराब कोल्हू की वजह से जैसा कि ऊपर बताया गया है, गुड़ का परता कम हो गया और रस पकाने में सफाई नहीं की गई और गुड़ मैला तैयार हुआ और सस्ते दामों में बिक गया तो गन्ने की खेती से बजाय लाभ के गुड़ बनानेवाले किसान को हानि हो जावेगी।

कहीं-कहीं उत्तर-प्रदेश में गुड़ बनाने का ढंग यह है कि एक भट्ठी पर पतली चादर का कढ़ाव चढ़ा देते हैं और इसमें रस भर देते हैं। नीचे भट्ठी में घास-फूस और पत्तियाँ और गन्ने की खोई झोंकते रहते हैं। मैल फूल जाने पर एक करछे से निकालकर फेंक देते हैं और जब रस पक जाता है तो उसे मिट्टी के चाकों पर ठंढा करके जमा लेते हैं। इस तरह जो गुड़ बनता है उसकी सफाई अधिक नहीं होती और कभी-कभी वह जल भी जाता है। अगर गुड़ बनाते समय नीचे लिखी हुई बातों पर ध्यान रक्खा जावे तो गुड़ बहुत साफ बनता है और उसकी क़ीमत में बड़ा अन्तर पड़ जाता है।

१—रस उबलते समय उसमें थोड़ा सा चूना और भिंडी के तने और जड़ का पानी डाल देने से मैल बहुत जल्द ऊपर आ जाता है और सरलता से साफ किया जा सकता है।

२—पतली चादर के कढ़ाओं में कितनी ही सावधानी से झोंकाई क्यों न की जाय फिर भी कभी-कभी गुड़ जल जाता है और बहुत नुकसान हो जाता है। यदि इसके बजाय अच्छी मोटी चादर के कढ़ाव हों तो इनमें बराबर आँच लगेगी और गुड़ के जलने की सम्भावना भी कम हो जावेगी।

अध्याय ६

गेहूँ, धान तथा मक्का

गेहूँ

गेहूँ के खेत की तैयारी प्रायः ३ प्रकार से की जाती है।

१. चौमस या पलिहर रख कर।

२. सनई, ढेंचा या गुवार की हरी खाद देकर।

३. जल्द पकनेवाली दलहन की फसल जैसे मूँग नं० १ या लोबिया नं० १ के दाने लेकर डन्ठल और पत्तियाँ हरी खाद के लिए जोतकर।

१. चौमस या पलिहर रखनाः––उत्तर-प्रदेश में यह सबसे पुरानी प्रचलित प्रथा है। इस प्रथा के अनुसार जिन खेतों में गेहूँ की फसल लेना होता है उनको जब-जब अवसर मिलता है दो दफे गर्मियों में और १०-१२ दफे बरसात में जोतते रहते हैं। १५ सितम्बर के पहिले मिट्टी पलटनेवाले हल से जोताई की जाती है और बाद में देसी हल या कल्टीवेटर से। इस विधि में केवल जोताई द्वारा खेत की उर्वराशक्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है।

२. सनई, ढेंचा या गुवार की हरी खाद देनाः––इस विधि में लगभग १५ जून के हरी खाद की फसल बो दी जाती है और जैसा कि हरी खाद के सम्बन्ध में बताया जा चुका है इसको जुलाई के अन्तिम सप्ताह या अगस्त के प्रथम सप्ताह में पाटे से गिराकर, मिट्टी पलटनेवाले हलों से जोत दी जाती है। जोताई खूब घनी होनी चाहिए ताकि हरी फसल मिट्टी से दब जाये और सड़कर अच्छी खाद बन जाय। हरी खाद की जोताई पिछड़ जाने से उसके सड़ने के पहिले ही बरसात समाप्त हो जाती है और सनई या अन्य हरी खाद ठीक से सड़ती नहीं। हरी खाद की जोताई के बाद लगभग १२ इंच बारिश हो जाना सड़ने के लिए आवश्यक है। यदि किसी वर्ष अगस्त और सितम्बर में इससे भी कम पानी बरसे तो खेत में एक या दो सिंचाई कर देना चाहिए। इस विधि द्वारा लगभग ५० पाउन्ड नाइट्रोजन खेतों में पहुँच जाता है जो गेहूँ के लिये काफी है, अतः बाहर से खाद देने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

३. जल्द पकनेवाली दलहन की फसलें जैसे मूँग नम्बर १ और लोबियानं० १ के दाने लेकर और बची हुई फसल को खेत में जोतकरः––इस विधि से प्रथम वर्षा के साथ अर्थात् १५ जून के लगभग जिस खेत में गेहूँ बोना हो उसमें पहिले मूँग नं० १ या लोबिया नं० १ बो दिया जाता है।

इनके उग आने पर इनकी दो एक निराई-गोड़ाई कर दी जाती ह। बोने के ४५ से ५० दिनों के अन्दर इसकी फलियाँ पकने लगती हैं और ६५ से ७० दिनों में अन्तिम फलियाँ तोड़ने योग्य हो जाती हैं। इनको तोड़कर खेत में बचे हुए डन्ठल और पत्तियाँ तुरन्त जोत दी जाती हैं। यदि १५ जून को मूँग या लोबिया बोई गई हो तो २०-२५ अगस्त तक इसके सब दाने लेकर यह जोत देने के लिये तैयार हो जाती है। यदि कुछ फलियाँ पूरी न पकी हों तो उनकी लालच में फसल देर तक न खड़ी रखनी चाहिये। अगस्त के अन्तिम सप्ताह में या देर से देर सितम्बर के पहिले सप्ताह में मूँग नम्बर १ या लोबिया नम्बर १ की फसल जोतकर मिट्टी से अवश्य दबा देना चाहिये। हरी खाद जोतने के बाद यदि अच्छी वर्षा न होगी तो यह लाभ के बजाय गेहूँ के लिये हानिकर हो सकती है। २५ अगस्त से २५ अक्टूबर तक दो महीने का समय गेहूँ का खेत तैयार करने के लिये मिल जाता है। इस विधि में चौमस रखने और हरी खाद देने, दोनों का लाभ होता है। मूँग या लोबिया की फसलें जब शुरू में गोड़ी भौरी और निकाई जाती हैं तो खेत को वही लाभ होता है जो जुताई से होता है। और अन्त में जब वह खेत में जोत दी जाती है तब हरी खाद देने का लाभ होता है।

इन तीनों विधियों का तुलनात्मक अध्ययन शाहजहाँपुर गन्ना रिसर्च फार्म पर किया गया। चौमस रखकर सनई की हरी खाद देकर और मूँग नम्बर १ के बाद गेहूँ की फसल ली गई। जो पैदावार गेहूँ की मिली वह निम्नलिखित है।

शाहजहाँपुर गन्ना रिसर्च फार्म के नतीजे

	पैदावार गेहूँ प्रति एकड़ मनों में
चौमस	१६.७१
सनई हरी खाद के बाद	२१.०४
मूँग नम्बर १ के बाद	२२.०१

इसी प्रकार कानपुर कृषि-कालेज के फार्म पर भी प्रयोग किया गया। वहाँ के नतीजे निम्नलिखित हैं।

	पैदावार गेहूँ प्रति एकड़ मनों में
चौमस	२३.४
सनई हरी खाद के बाद	२४.३
मूँग नम्बर १ के बाद	३०.१

इन आँकड़ों को देखने से यह मालूम होगा कि मूँग के बाद का लिया हुआ गेहूँ सबसे अच्छा होता है। इस प्रकार के प्रयोग अन्य फार्मों पर भी किये गये हैं, उन सबके नतीजों से यह सिद्ध होता है कि मूँग के बाद का गेहूँ लगभग उतना ही पैदा होता है जितना सनई की हरी खाद के बाद का गेहूँ। और चौमसवाले गेहूँ से तो यह अवश्य ही अधिक पैदा होता है। परन्तु यदि मूँग के दाना का भी वजन जोड़ा जाये तो मूँग के बाद गेहूँ लेने की विधि सबसे अधिक लाभप्रद सिद्ध होगी। लेखकों का विश्वास है कि यदि मूँग की खेती ठीक से की जाय और उसमें समय से निकाई गोड़ाई की जाय तो इसकी पैदावार और इसके बाद की ली हुई गेहूँ की पैदावार मिलाकर लगभग १० मन प्रति एकड़ चौमस के गेहूँ से अधिक पैदा होगी। इसी लिये लेखकों का यह मत है कि किसी भी हालत में गेहूँ के लिये चौमस न रखा जाय। यदि खेत में पानी लगता है तो मूँग बोने के बजाय ढेंचा की हरी खाद का प्रयोग किया जाय, परन्तु चौमस न रखा जाय और जिन खेतों में पानी न लगता हो उनमें मूँग नम्बर १ या लोबिया नम्बर १ की फसल लेकर गेहूँ लेना ही सर्वश्रेष्ठ विधि है।

ऊपर वर्णन किये हुये तीनों विधियों में १५ सितम्बर के बाद गेहूँ के खेत की एकसां तैयारी की जाती है। इसके बाद देशी हल या कल्टीवेटर से जोताई की जाती है---ताकि नीचे की नमी ऊपर आकर सूख न जावे। क्वार के महीने में जुताई रात में या बहुत सबेरे की जाती है और कड़ी धूप निकलने के पहिले ही पाटा फेर दिया जाता है। गेहूँ के लिये यह बहुत आवश्यक है कि खेत जितना बारीक़ बनाया जा सके उतना बारीक़ बनाया जाय। ८ या १० जुताई से कम में गेहूँ का खेत तैयार नहीं होता और हर जुताई के बाद ढेले फोड़ने के लिये और नमी दबाने के लिये पाटा फेरना आवश्यक है। किसानों में गेहूँ के खेत के लिये यह बात प्रचलित है कि खेत को उस समय तैयार समझो जब कि मिट्टी का भरा हुआ घड़ा सिर से गिरा दिया जाय और घड़ा न टूटे अर्थात् खेत बहुत बारीक और नरम हो जाना चाहिये और उसमें नमी इतनी होनी चाहिये कि गेहूँ बोने के बाद खूब उग आवे।

जो किसान गेहूँ के खेत में सनई या मूँग नहीं जोतते हैं उनको जुलाई, अगस्त अर्थात् आषाढ़, सावन और भादों में मिट्टी पलटनेवाले हल से ३-४ जुताइयाँ करना आवश्यक है। यदि बरसात में गेहूँ के खेत में घास पैदा हो गई और उसकी जुताई अच्छी नहीं हुई तो गेहूँ की पैदावार बहुत कम हो जाती है। बरसात के अन्त में या क्वार के महीने में जिन खेतों में सनई नहीं जोती गई है उनमें बढ़िया गोबर

की खाद डालना आवश्यक है। गेहूँ के लिए लगभग ५० पौण्ड नाइट्रोजन यानी प्रति बीघा ६ या ७ गाड़ी खाद डालना आवश्यक है। गेहूँ की बोआई २० से ३० अक्टूबर के बीच में या चित्रा नक्षत्र के अन्त में और स्वाती नक्षत्र के आरम्भ में होनी चाहिए। कुछ नदी के खादर या ऐसी नीची भूमियाँ हैं जिनमें किसान को गेहूँ देर से बोना पड़ता है इसलिये ऐसी भूमियों में नवम्बर के अन्त तक गेहूँ की बोआई जारी रहती है। लेकिन गेहूँ की अच्छी फसल लेने के लिये आवश्यक है कि गेहूँ की बोआई नवम्बर के पहिले सप्ताह में समाप्त हो जाय। बोवाई में देर होने से जो हानि होती है उसका वर्णन बीजवाले अध्याय में किया जा चुका है।

बीज कितना बोया जावे इस सम्बन्ध में किसान को किसी से राय लेने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह अपने खेत की उपजाऊ शक्ति को अच्छी तरह समझते हैं और इस बात को जानते हैं कि किस खेत में कितने बीज की आवश्यकता है। कहीं-कहीं पर, जहाँ भूमि उपजाऊ है और नमी की कमी नहीं होती जैसा नदी के खादर में, वहाँ किसान ३० से ३५ सेर तक प्रति एकड़ गेहूँ का बीज बोते हैं। यहाँ नमी अधिक होने से गेहूँ का हरएक दाना उग आता है और नदी की नई मिट्टी उपजाऊ होती है इसलिए उसमें कल्ले बहुत निकलते हैं और खेत फसल से भर जाता है। अच्छे खेतों में जहाँ कि काफी खाद और जुताई ऊपर के बताये तरीके से की गई है ऐसे खेतों के लिए ५० सेर बीज काफी है लेकिन कमजोर सूखे खेतों में जहाँ खाद और पानी की कमी हो और बोने के समय कुछ नमी की भी कमी होती है, ऐसे खेतों में किसान ६० से ७५ सेर तक प्रति एकड़ गेहूँ का बीज डालते हैं। सिंचाई, खाद और खेत की उर्वराशक्ति का अनुमान किया जा सकता है और सारी वस्तुएँ उचित मात्रा में पहुँच जाने पर तो केवल ६ सेर गेहूँ का बीज प्रति एकड़ बोने पर भी उत्तम फसल पैदा होती है जैसा बीज बढ़ाने के विषय में पहिले ही वर्णन किया गया है। इसलिए किसान स्वयं ही तै करें कि किस खेत में कितने बीज की आवश्यकता है। औसतन ५० से ६० सेर प्रति एकड़ तक बीज मामूली खेतों के लिए काफी होता है।

बीज उन्नतिशील किस्म का बोना चाहिए क्योंकि इनमें बीमारी इत्यादि कम लगती है और पैदावार अधिक होती है। उत्तर-प्रदेश के कृषि-विभाग द्वारा समर्थित जातियों की निम्नलिखित सूची में से अपने क्षेत्र के लिए उचित जाति का गेहूँ छाँटना चाहिये---

गेहूँ की समर्थित जातियों की जिलेवार सूची

(इनमें से एन. पी. ७१०, एन. पी. ७२० तथा एन. पी. ७७५ नई जातियाँ हैं ।)

अनुक्रम	जिला	सिंचाईवाले क्षेत्र के लिये	बिना सिंचाईवाले क्षेत्र के लिये
१.	अल्मोड़ा	एन. पी. ४, पडोवा १, एन. पी. ७७५	एन. पी. ४, पडोवा २
२.	गढ़वाल तथा टेहरी	,, ,, ,,	,, ,,
३.	नैनीताल	,, ,, ,,	,, ,,
४.	नैनीताल (तराई)	एन. पी. १२५, पी बी. ५९१, ए. ओ. ६८	एन. पी. १२५, पी बी. ५९१
५.	देहरादून	पी बी. ५९१, एन. पी. १२५, एन. पी. ७१०	,, १२५, ,, ५९१
६.	बिजनौर	,, एन. पी. ७१०, एन. पी. १६५	,, ,,
७.	बरेली	सी. १३, एन. पी. १२५, एन. पी. ७१०	सी. ४६, सी. १३, एन. पी. १२५
८.	पीलीभीत	पी बी. ५९१ ,,	एन. पी. १२५. पी बी. ५९१
९.	खीरी	सी. १३, एन. पी. १२५	सी. १३, एन. पी. १२५
१०.	बहराइच	एन. पी. ५२, एन. पी. ७१०, एन. पी. १२५	एन. पी. १२५, एन. पी. ५२
११.	गोंडा	एन. पी. ५२, सी. १३ एन. पी. १२५ एन. पी. १६५	,, ,,
१२.	बस्ती	सी. १३, एन. पी. ७१०, एन. पी. ५२, एन. पी. ७७५	,, ,,
१३.	गोरखपुर	,, ,, ,,	,, ,,
१४.	देवरिया	,, ,, ,,	,, ,,
१५.	सहारनपुर	पी वी ५९१, एन. पी. १६५, एन. पी. ७१०	सी. ४६, पी वी. ४०९
१६.	मुजफ्फरनगर	,, एन. पी. ७१०	,, ,,
१७.	मेरठ	,, ,,	,, ,,

अनुक्रम	जिला	सिंचाईवाले क्षेत्र के लिये	बिना सिंचाईवाले क्षेत्र के लिये
१८.	मुरादाबाद	पी वी. ५९१ एन. पी. १२५ एन. पी. ७१०	एन. पी. १२५, सी. ४६
१९.	रामपुर	,, एन. पी. १२५ ,,	,, ,,
२०.	बुलन्दशहर	,, ५९१, एन. पी. ७१०	,, ,,
२१.	अलीगढ़	,, ५९१ एन. पी. १२५ सी. १३	,, १२५ सी. ४६
२२.	बदायूँ	,, ५९१, सी. १३, एन. पी. १२५	,, ,,
२३.	एटा	,, ,, पी वी. ४०९	,, ,,
२४.	मैनपुरी	,, ,, एन. पी. १२५	,, ,,
२५.	फर्रुखाबाद	एन. पी. ७१०, पी वी. ५९१, सी. १३	,, ,,
२६.	मथुरा	,, १२५, सी. १३, पी वी. ५९१	,, ,,
२७.	आगरा	,, ,, ,,	,, ,,
२८.	जालौन	पी वी. ५९१, एन. पी. ७२०, सी. १३	बाँसी सीपी, कठिया
२९.	झाँसी	,, ,, ,,	सी. ४६ ,,
३०.	हमीरपुर	,, ,, ,,	टी. डी. खपली, बाँसी सी. पी. कठिया
३१.	बाँदा	,, सी. १३ एन. पी. ७२०	वी. पी. ८०८, कठिया
३२.	मिर्जापुर	एन. पी. ५२, सी. १३, एन. पी. १२५	बाँसी सी. पी, ,,
३३.	शाहजहाँपुर	,, १२५, सी. १३, एन. पी. ७१०	सी. ४६, एन. पी. १२५
३४.	हरदोई	,, ,, ,,	,, ,,
३५.	सीतापुर	,, १२५, सी. १३. एन. पी. ७१०	,, ,,
३६.	लखनऊ	,, ,, ,,	,, ,,
३७.	बाराबंकी	,, ,, ,,	,, ,,
३८	रायबरेली	,, ,, ,,	,, ,,

अनुक्रम	जिला	सिंचाईवाले क्षेत्र के लिये	बिना सिंचाईवाले क्षेत्र के लिये
३९.	उन्नाव	एन. पी. १२५, सी. १३, एन. पी. ७१०	सी. ४६, एन. पी. १२५
४०.	कानपुर	,, ,, ,,	,, ,,
४१.	इटावा	पी. वी. ५९१, सी. १३, एन. पी. ७१०	,, ,,
४२.	फतेहपुर	एन. पी. १२५, सी. १३, एन. पी. ७१०, एन. पी. ७७५	,, ,,
४३.	इलाहाबाद	,, ,, ,, ,,	,, ,,
४४.	प्रतापगढ़	सी. १३, एन. पी. ५२, एन. पी. ७७५	एन. पी. १२५,
४५.	सुल्तानपुर	एन. पी. १२५, एन. पी. ५२. सी. १३	,, एन. पी. ५२
४६.	फैजाबाद	,, ७१०, सी. १३, एन. पी. ५२	,, ,,
४७.	बनारस	,, ५२, एन. पी. ७७५, एन. पी. १२५, एन. पी. १२	,, ,,
४८.	जौनपुर	,, ,, ,, १२५, ,, १२, ,, १२५	,, १२, एन. पी. ५२
४९.	गाजीपुर	,, ,, ,, १२५ ,, ७७५ ,, ,,	,, ,,
५०	बलिया	,, ,, ,, ,, ,, ,,	,, ,,

बोआई के बाद गेहूँ में सिंचाई २१ रोज के बाद आरम्भ कर देनी चाहिए और एक महीना पूरा होने के पहिले गेहूँ की सिंचाई समाप्त हो जानी चाहिए। यदि गेहूँ की सिंचाई इससे जल्दी हो जावेगी तो उसकी जड़ें पूरी मजबूत नहीं फैलेंगी। और यदि सिंचाई पिछड़ जायगी तो भी फसल को नुकसान हो जावेगा। पहिली सिंचाई नवम्बर के अन्त में या दिसम्बर के शुरू में कर दी जाती है। मटियार भूमि में हल्का पानी देना चाहिए और बलुई भूमि में ज्यादा पानी देना चाहिए। पहिली सिंचाई के बाद जब खेत उखड़े तब किसी हल्के हैरो से खेत को जोत देना लाभप्रद सिद्ध हुआ है। ऐसा करने से खेत में नमी भी अधिक ठहरती है और कल्ले भी ज्यादा निकलते हैं। गेहूँ की दूसरी सिंचाई यदि जाड़ों में वर्षा न हो तो १५ जनवरी से पहिले ही कर देनी चाहिए। बहुधा महावट हो जाने के कारण दूसरी और तीसरी सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती लेकिन जिस साल जाड़ों में वर्षा न हो उस साल गेहूँ में दो, तीन पानी लगाना आवश्यक है। यदि खेत सूख गया हो तो दानों में दूध आने पर एक पानी और दे देना चाहिए। गेहूँ की फसल मार्च के तीसरे या चौथे सप्ताह में तैयार हो जाती है।

हर साल गेहूँ एक ही खेत में बोना इसके लिए अच्छा नहीं है। खेत में गेहूँ की फसल के बाद कपास, गन्ना, अरहर अथवा मूँगफली बोना चाहिए। गेहूँ की दँवाई यदि 'ओलपैड थ्रेशर' से की जाय तो एक जोड़ी बैल तीन जोड़ी बैल के बराबर काम कर सकता है।

धान

धान भारतवर्ष की बहुत पुरानी फसल है। इसकी खेती सभी नीची भूमियों में हो सकती है। अगहनी (जड़हन) धान के लिए सबसे अच्छी मटियार और नीची भूमियाँ होती हैं। पानी काफी भरा रहने पर धान हल्की ऊसर भूमियों में भी पैदा किया जा सकता है।

वैसे तो धान की बहुत सी किस्में हैं और उनके बारे में यह कहा जाता है कि यदि एक-एक किस्म का एक-एक धान रक्खा जाये तो इस तरह एक घड़ा भर सकता है, लेकिन वास्तव में इनके पकने के मौसम के लिहाज से इनकी निम्नलिखित श्रेणियाँ की जा सकती हैं।

१. कुवारी धानः—यह शुरू बरसात में बोया जाता है और सितम्बर में काट लिया जाता है। इस श्रेणी में देवला, सरया, मुटमुरी, बक्की, गदरी, दुद्धी, साठी, देसी धानों में और एन १२, चाइना १०, ए ६४ और टाइप १३६ समुन्नत धानों में प्रसिद्ध जातियाँ हैं। इनको उन क्षेत्रों में पैदा किया जा सकता है जहाँ सिंचाई का कोई साधन न हो।

२. कार्त्तिकी या माध्यम धानः—यह भी क्वारी धान के जैसा

ही होता है परन्तु इसके पकने में ज्यादा समय लगता है। अतएव इसे नमी की आवश्यकता अधिक होती है जैसा कि खादर या पहाड़ी क्षेत्रों में मिल सकती है। इस श्रेणी में देसी धानों में दलबादल, अंजना, रामज्वाइन, लालमती, हंसराज, बाँसमती इत्यादि और समुन्नत धानों में टाइप १, २१, ४३ टा० १३७, टा० १३८, और चाइना ४ इत्यादि हैं। यह देर में कटते हैं, इसलिए इनके बाद रबी की खेती पिछड़ जाती है। इस श्रेणी के धानों की खेती वहीं सम्भव है जहाँ सिंचाई का समुचित प्रबन्ध हो।

३. अगहनी या जड़हन धानः—इसको प्रायः बियाड़े में बरसात शुरू होने पर बोया जाता है और ४०-४५ दिनों के बाद दूसरे खेत में बैठाया (रोप दिया) जाता है। कभी-कभी नहरी इलाकों में बरसात शुरू होने से पहले भी इसके बियाड़े बो दिये जाते हैं और बरसात शुरू होने पर पौध खेत में लगा दी जाती है। इस श्रेणी में देशी धानों में डिड़वा, माल्दह, अंजी, बाँसा इत्यादि और समुन्नत धानों में टा० ६ टा० १७ टा० २२ ए टा० ३६ टा० ८८ और टाइप १०० इत्यादि हैं। इनकी खेती निचली भूमियों में, जहाँ कुछ पानी ठहरता है, की जाती है। कभी-कभी इन्हें खेतों में छिटकवाँ बरसात शुरू होने पर बो दिया जाता है तब इसे बोवारी धान कहते हैं। गहरे खेतों में जहाँ ३ से ५ फुट तक पानी जमा होता है उनमें सेंगर धान या टाइप १०० की बोवारी अच्छी होती है।

४. जेठी धानः—इसको बियाड़े में अक्तूबर में बोया जाता है और इसकी पौध जनवरी में नदी और तालाबों के किनारे लगाई जाती है। इसकी फसल मई के महीने में तैयार होती है। इसको बोरो धान भी कहते हैं।

तैयारी खेत

बहुधा इस देश में धान के लिए गर्मी की जोताई नहीं की जाती, लेकिन यदि सिंचाई सम्भव हो या वर्षा हो जाये तो गर्मियों में कम से कम दो जोताई कर देना लाभप्रद सिद्ध हुआ है। केवल गर्मियों में जोताई करने से बिना जोते हुए खेतों की तुलना में पैदावार सवाई से डेवढ़ी तक बढ़ जाती है। इस जुताई से खेत की घास और कीड़े-मकोड़े भी मर जाते हैं।

खादः—भिन्न-भिन्न खादों का धान की पैदावार पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। विभिन्न खादों का एक-एक पाउण्ड नाइट्रोजन के रूप में देने से निम्नलिखित अतिरिक्त उपज की आशा की जा सकती है।

खाद	अतिरिक्त उपज की मात्रा
१. सनई की हरी खाद	१०½ सेर
२. अमोनियम सलफेट	५½ सेर
३. मिली हुई प्रांगारिक रासायनिक खाद	६ सेर

४. खलियाँ (रेंडी, मूँगफली, नीम)　　४ सेर
५. गोबर की खाद　　३$\frac{१}{४}$ सेर
६. मैले की खाद　　२ सेर

ऊपर की तालिका से यह स्पष्ट है कि धान के लिए सबसे उत्तम खाद हरी खाद है। यद्यपि इस तुलना में ढेंचा की हरी खाद को स्थान नहीं मिला है, परन्तु यह कहा जा सकता है कि ढेंचा की हरी खाद का असर सनई की हरी खाद से बुरा नहीं होगा। पानी लगनेवाले खेतों में सनई सफल नहीं होती है, इसलिये ढेंचा का ही प्रयोग करना चाहिये। अन्य खादों की तुलना में हरी खाद न केवल सबसे प्रभावशाली है बल्कि सबसे सस्ती भी है। हरी खाद के लिये सनई और ढेंचा के अतिरिक्त ग्वार, मूँग और लोबिया का भी प्रयोग किया जा सकता है। इन सबका भी पैदावार पर प्रभाव लगभग सनई की हरी खाद के ही समान होता है। इनमें से मूँग और लोबिया इतनी शीघ्र तैयार होनेवाली फसलें हैं कि इनका दाना भी लिया जा सकता है और हरी खाद के लिये भी प्रयोग किया जा सकता है। हरी खाद का धान की उपज पर जो प्रभाव पड़ता है वह नीचे चित्रित है।

धान की उपज पर हरी खाद का प्रभाव

१९४१—१९४३
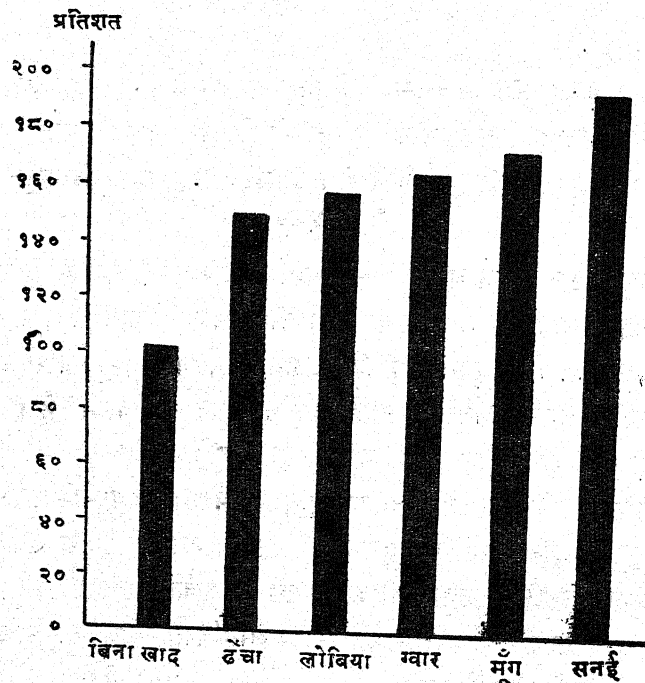
धान के लिये ५० पाउन्ड नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। साधारणतया फासफोरस और पोटाश देने की आवश्यकता नहीं होती। हरी खाद के लिये

खेत में पलेवा करके रोपाई के ७-८ सप्ताह पहिले हरी खाद की फ़सल बोई जाती है। इसको समय-समय पर सींचते रहते हैं, और रोपाई से एक सप्ताह पहिले जोतकर खेत में पलट देते हैं, और खेत में पानी भर दिया जाता है। यदि हरी खाद न भी देना हो तो खेत की रोपाई के एक सप्ताह पहिले पानी के अन्दर जोतना लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इस क्रिया को गोंजाड़ लगाना कहते हैं।

हरी खाद के अतिरिक्त यदि अन्य खादें देना है तो प्रांगारिक खादों को रोपाई करने से पहले और रासायनिक खादों को रोपाई करने के बाद जब पौधे हरे होने लगें तो देना चाहिये।

बोवाई:— धान की बोवाई की दो विधियाँ हैं, एक छिटकवाँ बोकर और दूसरे बियाड़ लगाकर।

छिटकवाँ बोवाई:—छिटकवां बोवाई भी कई विधियों से की जाती है। कौन सी विधि का प्रयोग किया जाय यह नमी और परिस्थितियों पर निर्भर है। यदि अधिक खेत बोने हैं तो वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के पहिले ही जुते हुये खेतों में बीज छीटकर हल से मिला दिया जाता है। जब पानी बरसता है तब धान उग आता है। इस विधि से लाभ यह है कि बोने के लिये समय काफी मिलता है और बोवाई का काम वर्षा ऋतु के पहले समाप्त कर लिया जाता है। परन्तु इसमें डर यह रहता है कि यदि पहली बारिश हल्की हुई तो धान उगना शुरू हो जायगा। परन्तु पूरी नमी न होने के कारण ठीक से उग न सकेगा और बीज नष्ट हो जायेंगे।

यदि खेत कम बोना है तो खेत की कई जोताइयाँ करके पहली वर्षा की प्रतीक्षा करनी चाहिये। पहिली वर्षा होते ही खेत में पानी भर कर देसी हल से जोत और पाटा देकर लेव लगा दी जाती है। इसके बाद तैयार की हुई जरई खेत में छींटकर बो दी जाती है। जरई तैयार करने की विधि इस प्रकार है। धान को फर्श पर रखकर २४ घंटे तक हर छः घंटे पर भिगोते रहते हैं। भिगोना ऐसे चाहिये कि हरएक दाना भीग जाय। हर दफे भिगोने के बाद धान को टाट या बोरे से ढँक देना चाहिए, जिससे उसकी नमी न निकले। २४ घंटे तक भिगोने के बाद धान की एक ६ इंच मोटी तह फर्श पर लगा दी जाती है। इस पर कुछ पुआल या अन्य खरपतवार रखकर वजन से दबा दिया जाता है। वजन देने के लिये ईंटों का प्रयोग आसानी से किया जा सकता है। इस प्रकार २४ घंटे दबे रहने के बाद धान में अंकुर निकल आते हैं। २४ घंटे के बाद पुआल को ऊपर से जरा हटाकर देख लेना चाहिये कि धान में अंकुर निकल आये हैं या नहीं। यदि न निकले हों तो थोड़ा समय धान को और योंही पड़े रहने देना चाहिये। यदि अंकुर निकल आये हों तो वजन हटाकर धान को खोलकर साए में फैला देना चाहिये। यदि फैलाया नहीं जायेगा तो अँखुये बहुत बड़े-बड़े हो जायेंगे।

जरई तैयार करने में इसका ध्यान रखना चाहिये कि भीगे हुये धान की तह ६ इंच से मोटी न लगे नहीं तो बीज बहुत गर्म हो जायेगा और अधिक गर्मी से मर जायेगा। जरई करके धान बोने से फसल कुछ जल्द तैयार होती है। इसलिये बोवाई यदि पिछड़ गई हो तो जरई करके बोने से पिछड़ने से जो नुकसान होता है, उसे कुछ हद तक बचाया जा सकता है।

यदि बरसात के प्रारम्भ में इतनी वर्षा न हो कि खेत में लेव लगाया जा सके तो जरई को खेत में छींटकर देसी हल से मिला दिया जाता है। परन्तु इसके सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि खेत में नमी काफी हो। नमी की कमी होने पर जरई मर जायेगी और खेत खाली ही पड़ा रह जायेगा।

एक चौथी विधि धान बोने की यह भी है कि खेत में लेवा करके सूखा ही धान बो दिया जाय। परन्तु इस विधि के प्रयोग के लिये यह आवश्यक है कि खेत में ७२ घंटे पानी बराबर लगा रहे।

बियाड़ बोकर रोपाई करना:—इस विधि में धान पहिले एक अलग खेत में जिसे बियाड़ कहते हैं बोकर जब वह कुछ बढ़ जाता है तो उसे उखाड़-कर असली खेत में बैठा या रोप देते हैं। इस विधि का प्रयोग सभी श्रेणी के धानों में होता है। क्वारी धान के लिए पौधे बियाड़ में लगभग ३० दिन रखे जाते हैं और अगहनी धान के लिए ४० से ४५ दिनों तक। धान की रोपाई लेव लगाकर की जाती है। कितनी-कितनी दूरी पर और कितने पौधे एक साथ बैठाये जायें यह इस पर निर्भर है कि खेत की उर्वरा शक्ति कैसी है और रोपाई का काम समय से हो रहा है या पिछड़ गया है। खेत की उर्वराशक्ति अधिक होने पर और रोपाई का समय ठीक होने पर ९-९ इंच की दूरी पर एक-एक पौधा लगाना क़ाफी होगा। परन्तु खेत कमजोर होने पर या रोपाई का काम पिछड़ जाने पर २ से लेकर ८-१० तक पौधे एक साथ बैठा दिये जाते हैं और उनकी दूरी भी घटा दी जाती है।

पुष्य पुनरबसु तान बेतान असलेषा बित्ता परमान
मघा पूर्वा घोंघा फेर तीनों काटो एकै मेर

अर्थात् पुनर्वसु या पुष्य या जुलाई में धान के पौधे दूर २ लगाये जाते हैं। असरेषा नक्षत्र में या अगस्त के आरम्भ में एक-एक बीता पर लगाना चाहिए और मघा व पूर्वा नक्षत्र अर्थात् अगस्त के अन्त में या सितम्बर के आरम्भ में बहुत घने और अधिक पौधे लगाने चाहिए ताकि घोंघा भी आसानी से खेत में न घूम सके। ऐसा करने से पैदावार लगभग बराबर हो जाती है। एक साथ बैठाये जानेवाले पौधों की गिनती तथा उनकी आपस की दूरी पर यह निर्भर करेगा कि एक एकड़ बियाड़ से कितने एकड़ खेत बैठ सकता है। पाँचगुना से लेकर दसगुना तक खेत साधारणतया बैठता है।

बियाड़ में बीज बोने की वही विधि है जो लेवा करके जरई धान बोने की ऊपर बताई गई है। अन्तर केवल इतना ही है कि बियाड़ में जरई बहुत घनी पड़ती है और लेवा करके अंतिम पाटा देने के बाद जरई बीज तुरंत नहीं बो दिया जाता बल्कि लगभग आधे घंटे का समय लेवा को बैठने के लिए दिया जाता है। यदि लेवा बैठने के पहले बो दिया जाये तो बीज बाद में उखाड़ने में कठिनाई उपस्थित करेगा।

जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, बीज की मात्रा खेत की उर्वराशक्ति पर निर्भर है। यदि खेत उपजाऊ है तो छिटकवाँ बोने के लिए २० सेर प्रति एकड़ और यदि कमजोर है तो ४० से ५० सेर प्रति एकड़ तक लगता है। रोपाई के लिये भी बीज की मात्रा खेत की उर्वराशक्ति पर निर्भर है। १० सेर प्रति एकड़ तक लगता है। बियाड़े में ४ सेर से ७ सेर प्रति बिस्वा तक बीज डाला जाता है। बारीक धान कम और मोटे धान ज्यादा बियाड़े में डाले जाते हैं।

बोवाई तथा अन्य क्रियाओं का समय से होना सभी फसलों के लिए महत्त्वपूर्ण है, परन्तु धान के लिए तो अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। बोवाई में केवल एक सप्ताह पिछड़ने से फसल बिल्कुल नष्ट हो सकती है। छिटककर बोने का उचित समय पहली जून से २० जून तक है। इस बीच में जब कभी भी खेत में नमी मिल सके, बो देना चाहिये। यदि नहर या ट्यूबवेल का पानी मिल सके तो सींचकर बो देना चाहिए। रोपाई का समय भी उतना ही महत्त्वपूर्ण

अगहनी धान पर रोपाई के समय का प्रभाव
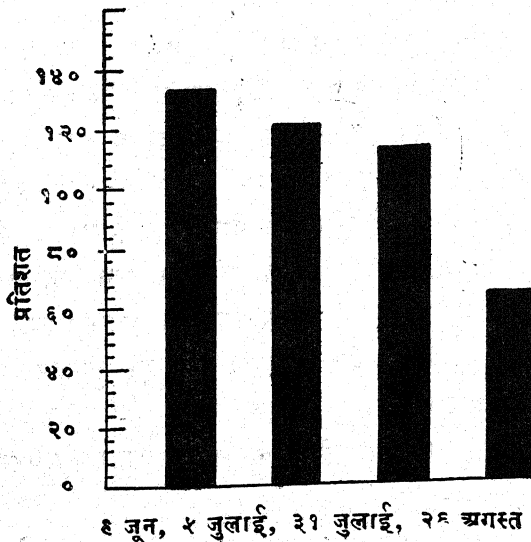
है जितना कि बोवाई का । क्वारी धान को जून के अन्दर या हद से हद ३ जुलाई तक रोप देना चाहिए । अगहनी धान को भी जुलाई के अन्दर समाप्त कर देना चाहिए । पिछड़कर रोपाई करने से अगहनी धान की पैदावार किस तरह से घट जाती है यह पृष्ठ १५५ के चित्र में दिखाया गया है ।

किसान छिटकवाँ धान बोवे या रोपाई करे, यह उसकी सुविधा तथा परिस्थिति पर निर्भर है । साधारणतया यह कहा जा सकता है कि रोपा हुआ धान बोये हुये धान से अधिक पैदा होता है । लेखक का मत है कि यदि सिंचाई का साधन हो तो क्वारी धान की तो अवश्य रोपाई की जाये । ऐसा करने से खेत में घास कम लगती है और पैदावार बहुत बढ़ जाती है । टाइप १३६ बोवाई के बजाय बैठौनी करने से ७०, ७५ प्रतिशत तक अधिक पैदा होता है ।

बोवाई और रोपाई के बाद की क्रियायें

बोये हुये धान में बहुधा घास बहुत निकल आती है । इसको वश में करने के कई उपाय हैं, परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार उन सबका प्रयोग करके घास को समाप्त कर देना चाहिये क्योंकि घास के रहते हुये धान अच्छा पैदा नहीं हो सकता । घास मारने के निम्नलिखित उपाय हैं—

१. धान का बीज बोने के पहिले झरने से झारकर घास के बीजों को इससे अलग कर देना चाहिये । बोते समय धान बिलकुल साफ होना चाहिये ।

२. बोवाई के बजाय रोपाई की विधि को प्रयोग में लाना । रोपाई चूँकि वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के बाद होती है इसलिये लेव लगाने के लिये जोताई के पहले ही अधिकांश घासें उग आती हैं । लेव लगाने में यह उखड़ कर नष्ट हो जाती हैं ।

३. यदि सिंचाई के लिये पानी मिल सके तो जून के प्रथम पखवाड़ में खेत में पानी भर दिया जाये । इस पानी को पाकर अधिकांश घास के बीज उग आवेंगे और धान बोने के पहले जोताई करके नष्ट किये जा सकते हैं ।

४. खेत में धान उग आने के १५-२० दिन के बाद धान को ६, ६ इंच की दूरी पर जोतकर पाटा चला दिया जाये । यदि खेत में पानी होता है तो इस क्रिया को बिदहनी कहते हैं और यदि पानी नहीं होता तो इसे घुरदहनी कहते हैं । बिदहनी या घुरदहनी से फसल को बड़ा लाभ पहुँचता है । धान और घास दोनों के पौधे उखड़ जाते हैं, परन्तु नमी पाकर धान के पौधे फिर से लग जाते हैं और घास के पौधे अधिकांश सूख या सड़कर नष्ट हो जाते हैं । बिदहनी उस समय लगाई जाती है जब खेत में चारों तरफ बराबर पानी लगा हो और घुरदहनी जब खेत जोतने के योग्य उखड़ा हो परन्तु बिलकुल सूखा न हो ।

५. धान के बाद धान प्रति वर्ष एक ही खेत में लेने से घासें बहुत

बढ़ जाती हैं । इसीलिये जहाँ तक सम्भव हो फसल का हेरफेर ऐसा होना चाहिये कि धान साल के बाद साल एक ही खेत में न पड़े । गन्ने और गेहूँ के बाद के लिये हुये धान में घासें बहुत कम लगती हैं ।

६. जब खेतों में बाहर से पानी बहकर आता है तो वह अपने साथ घासों के बीज भी ले आता है । इसलिये जिधर घासें अधिक उपजती हों उधर से पानी का आना बाँध बाँधकर रोक देना चाहिये ।

७. धान के खेतों में मेड़ का होना बहुत आवश्यक है । मेड़ें रहने पर खेत में पानी अधिक इकट्ठा होता है और पानी के रुकने पर घासें नहीं पन-पतीं । धान के खेत में जितनी ही नमी की कमी रहेगी उतनी ही घासें जोरदार होंगी ।

८. जहाँ तक सम्भव हो धान लेव लगाकर जरई करके बोना चाहिये । ऐसा करने से धान शीघ्र उग आता है और घासों से चार-पाँच दिन पहिले खेत पर अधिकार जमा लेता है । इस प्रकार से घासें कुछ हद तक दब जाती हैं ।

९. ऊपर बताये हुये उपायों के बाद भी जो घासें बचें उन्हें खुरपी से निकाल देना चाहिये ।

धान की खेती वर्षा ऋतु में होती है अतः साधारणतः इसमें सिंचाई की आवश्यकता नहीं समझी जाती । परन्तु १०-१२ दिन तक वर्षा न हो और खेत सूखे हों तो सिंचाई कर देना लाभदायक होता है । धान की पैदावार इस पर कम निर्भर है कि कुल कितनी वर्षा होती है, बल्कि इस पर अधिक निर्भर है कि वर्षा समय-समय पर होती रही है या नहीं । अगस्त के महीने में वर्षा से या सिंचाई से धान को हर सप्ताह पानी मिलते रहना अच्छी पैदावार के लिये आवश्यक है ।

कटाई:—धान की कटाई उचित समय से करना चाहिये नहीं तो झड़-कर नुकसान होने का डर रहता है । देर से कटे हुये धान का चावल भी अच्छा नहीं बनता । धान जब कुछ हरा रहे तभी काटना ठीक होता है ।

फसलों की हेरफेर में धान का स्थान:—यों तो धान की पैदावार सबसे अधिक खेत को जाड़ों और बसन्त ऋतु में खाली रखने से होती है, परन्तु अन्न की कमी और इसके बढ़े हुये भावों को देखते हुये साल में खेत से एक ही फसल लेना बुद्धिमानी नहीं है । क्वारी धान के साथ चना, मटर और बरसीम का हेरफेर अच्छा रहता है और अगहनी धान के साथ अक्सा और बरसीम का हेरफेर अच्छा रहता है । यह दोनों अगहनी धान के खेतों में जब उसमें नमी काफी रहती है, जड़हन कटने के पहले ही छींटकर बो दिया जाता है । नमी पाकर यह दोनों उग आते हैं और नीचे-नीचे बढ़ते रहते हैं । जब जड़हन काटा जाता है तब इसका ध्यान रखना पड़ता है कि इनके पौधे भी न कट जायें ।

क्वारी धान का बरसीम के साथ हेरफेर का लेखक को अपने फार्म का १० वर्षों का अनुभव है। एक बारह एकड़ के खेत में पिछले दस वर्षों से क्वारी धान का बरसीम के साथ हेरफेर चलाया जा रहा था। इतने लम्बे अर्से में खेत में कोई खाद नहीं डाली गई फिर भी धान की पैदावार घटी नहीं। सन् ५१-५२ में इस टुकड़े में बरसीम के बजाय धान के बाद गेहूँ बो दिया गया परन्तु खेत में इतनी संचित उर्वराशक्ति थी कि किन्हीं-किन्हीं टुकड़ों में तो ४० मन प्रति एकड़ तक गेहूँ हुआ और पूरे खेत का २५ मन प्रति एकड़ का औसत आया। गेहूँ के बाद १५ गाड़ी प्रतिएकड़ के हिसाब से कम्पोस्ट खाद देकर धान फिर बैठाया गया। पूरे खेत में धान की प्रति एकड़ साढ़े २६ मन पैदावार हुई। इस खेत के इतिहास को यहाँ इसलिये वर्णन किया जा रहा है कि पाठकगण बरसीम को धान के साथ हेरफेर करने का महत्त्व समझ जायें। जहाँ सिंचाई का साधन प्राप्त हो वहाँ क्वारी या अगहनी धान के बाद बरसीम लेना ही सबसे लाभप्रद है।

ऐसा करने से खेतों में खाद पहुँचाने का प्रश्न बड़ी आसानी से हल हो जाता है, बरसीम खेतों में इतनी उर्वराशक्ति ला देता है कि बाहर से फासफेट देने के अतिरिक्त अन्य खाद देने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

बीमारियाँ:——धान को सबसे अधिक हानि गंधी कीड़े से पहुँचती है। यह धान के कच्चे दूधभरे दानों का रस चूस लेता है और उन्हें खोखला छोड़ देता है। इसका आक्रमण इतना जोरदार होता है कि लगभग कुल का कुल धान नष्ट हो जाता है। इसका आक्रमण सितम्बर के अन्तिम ३ सप्ताहों और अक्टूबर के प्रथम दो सप्ताहों में सबसे अधिक होता है। इसलिए इससे बचने का एक-मात्र और सबसे सरल उपाय यही है कि धान ऐसे समय से बोये जायें कि उनके दूध में आने का समय १० सितम्बर से १५ अक्तूबर के बीच में न पड़े। किसानों को कोई धान बोने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि उस धान में कितने दिनों में दूध आता है। फिर बोने की तारीख से यह जोड़कर देखना चाहिए कि कहीं ऊपर बताई हुई अवधि में तो उनका धान दूध में नहीं आता। यदि ऐसा है तो गन्धी से नुकसान होने का डर रहेगा। उदाहरण के लिए टा० २१ धान को लीजिए। यह धान रोपाई के ९२ दिनों बाद पककर तैयार होता है। पकने के १० दिनों पहले तक दानों में दूध रहता है। इसका अर्थ यह होता है कि रोपाई के ८२ दिनों के अन्दर १० सितम्बर नहीं आना चाहिए। यदि ५ जुलाई को यह धान बैठाया जाय तो ८२ दिन २७ सितम्बर को पूरा होगा। २७ सितम्बर ऊपर बताये हुये अवधि के अन्दर आ जाता है, इसलिए गन्धी से इस फसल को नुकसान होने का डर रहेगा। यदि इस डर से इसे बचाना है तो १८ जून के पहले बैठाया जाये या १२ अगस्त के बाद। यदि १८ जून

के पहले बैठाना है तो बियाड़ा १८ मई के लगभग बो देना चाहिए और यदि १२ अगस्त को बैठाना है तो १२ जुलाई के लगभग बोना चाहिये। ऐसा करने से यह धान गन्धी के आक्रमण से बच जायेगा। कार्तिकी या मध्य धान को गन्धी से सबसे अधिक हानि होने की सम्भावना होती है। इसलिये यदि इसकी खेती करना हो तो ऊपर बताये हुये ढंग से हिसाब लगाकर इसकी रोपाई ऐसे समय से करना चाहिये कि यह दूध में ऊपर बताये हुये अवधि में न आवे। किसान को जब कोई नया धान बोना हो तो उसकी पकने की अवधि उसे मालूम कर लेना आवश्यक है नहीं तो धोखा होने का डर रहता है।

बोरों या जेठी धान

यह धान प्रायः नदी झील और तालाबों के किनारे जहाँ पानी आसानी से मिल सके बोया जाता है। इसका बियाड़ा अक्तूबर में बोया जाता है और पौधे जनवरी में लगाई जाती है। फसल मई में पककर तैयार हो जाती है। पैदावार में यह सभी धानों से अधिक पैदा होता है। परन्तु सिंचाई अधिक करनी पड़ती है।

गहरे पानी का धान

उत्तर प्रदेश सरकार ने गहरे तालों में धान की खेती की श्रोर पिछले दो-तीन वर्षों से ध्यान दिया है। इस पर कुछ अनुसन्धान-कार्य आरम्भ हुआ है और इस काम की ओर श्रौर अधिक ध्यान दिया जायगा। पूर्वी उत्तर-प्रदेश में लगभग २ लाख एकड़ इन बड़े तालों में जल मग्न है। कुछ तालों में जैसे बलिया में सोरहा ताल, देवरिया में रामभर व बुढ़वा व मनकौरा ताल में ऐसे धानों की खेती होती है जो गहरे पानी में पैदा हो सकते हैं।

सोरहा ताल में जैसुरिया १० से ३० फुट की गहराई तक पैदा होता है। जैसुरिया प्रतिदिन १२ इंच तक बढ़ सकता है और जब पानी बढ़ना आरम्भ होता है तो जितना पानी बढ़ता है उतना ही यह धान भी ऊँचा होता जाता है यहाँ तक कि ३० फुट पानी में भी जैसुरिया पैदा हो सकता है। यदि बहुत जल्द पानी अधिक बढ़ जाये श्रौर यह धान डूब जाय श्रौर कई दिन डूबा रहे तो श्रौर धानों की तरह जैसुरिया भी मर जाता है। बिलकुल गहरे में जैसुरिया लगाया जाता है फिर दुधालची व टुंडिया बोये जाते हैं। यह ५ से २० फुट तक की गहराई में पैदा होते हैं और ऊपर की तरफ ताल में करियावा बोया जाता है जो ५ से १५ फुट की गहराई तक होता है। सेंगर और गोट २ से ८ फुट की गहराई तक पैदा होता है श्रौर कलँगी ६ फुट गहराई तक। सोरहा तथा अन्य तालों में इसी का ध्यान रखकर गहराई के अनुमान से ऊपर लिखी धान की जातियाँ लगाई जाती हैं। इन धानों में जैसुरिया सबसे अधिक विख्यात

है। यह पानी भी सब से अधिक सहन करता है और खाने में भी सबसे अच्छा होता है।

जैसुरिया का बीज ८ मन प्रति एकड़ जरई करके मार्च-अप्रैल के महीने में बोआ जाता है। बीज बोने के पहले खेत की खूब जोताई करके उसमें खूब खाद डाली जाती है और बीज बोने के बाद उसे पतली मिट्टी की तह से ढक दिया जाता है। बीज सिंचाई करके तैयार किया जाता है।

इसमें निकाई करके बीज खूब साफ रक्खा जाता है। लगभग चार सप्ताह के बोये हुये बीज को ताल के किनारे, जहाँ पानी की गहराई कुछ इंच ही रह जाती है, उखाड़कर लगाया जाता है। पौध लगाने के पहिले पानी में से सब हरी घास इत्यादि उखाड़ दी जाती है। जैसुरिया के खेत में कोई खादपाँस नहीं पड़ती। जैसे-जैसे गर्मी में पानी पीछे हटता जाता है, किनारे-किनारे जैसुरिया का बेहन (छोटे पौधे) लगाते चले जाते हैं। लगाते समय एक छेद में ३ या ४ पौधे गाड़े जाते हैं और छेद से छेद की दूरी लगभग एक बालिश्त या ९ या १० इंच रक्खी जाती है। यह जैसुरिया धान की रोपाई वर्षा आरम्भ होने तक चलती रहती है। गर्मी में पानी हट जाने के बाद कभी-कभी जैसुरिया ऊपर से सूख जाती है और सूखी दिखाई पड़ती है, परन्तु इसकी जड़ों में काफी जान रहती है और बरसात होते हीं फिर हरी हो जाती है। जो नीचे तरी के हिस्से में जैसुरिया होता है वह हरा रहता है। जब पानी बरसता है और ताल में पानी बढ़ने लगता है तो उसी के साथ-साथ जैसुरिया के पौधे भी बढ़ते रहते हैं और कभी-कभी पानी के साथ-साथ तीस फुट तक ऊँचे हो जाते हैं।

नवम्बर के अन्त में इसकी फसल पक जाती है व नाव में बैठकर हँसिया से ऊपर से इसकी बालें काट ली जाती हैं। जैसुरिया की पैदावार लगभग २५ मन प्रति एकड़ हो जाती है।

गहरे पानी में और जाति के धान बोने के लिये फरवरी के महीने से ही जब ताल का पानी सूखने लगता है तभी से जोताई आरम्भ हो जाती है। उसी ताल की नमी से खेत अगर न जुत जाय तो इतने कड़े हो जाते हैं कि फिर जोताई करना असम्भव हो जाता है। तीन या चार बार जोताई करने से खेत धान बोने के लिये तैयार हो जाते हैं। जैसुरिया जो सबसे गहरे पानी में पैदा होता है उसी के बाहर टुंडिहिया व दुधालची का बीज बोया जाता है। और ताल से बाहर की ओर करियावा, सिगरा, गोंट आदि बोते हैं। उसके बाहर कलंगी बोई जाती है जो अधिक पानी सहन नहीं कर सकती। कटने के समय कलंगी व सिगरा सबसे पहिले पक जाते हैं। इनके बाद दुधालची, करियावा व टूंडिया और सबके बाद जैसुरिया पकता है। बाहर की ओर से धान कटना आरम्भ होता है। जैसे-जैसे पकते जाते हैं अन्दर की ओर फसलें नाव में बैठकर काटी

जाती हैं। बिल्कुल गहरे में केवल बाल ही काट ली जाती है बाकी पूरा धान का पौधा खेत में ही सड़कर खाद हो जाता है इसीलिये इन धानों में बियड़ छोड़कर और कहीं खेत में खाद देने की आवश्यकता नहीं होती।

धान का बीज रखना:—क्वारी धान सितम्बर में कटता है। उस समय नमी बहुत रहती है और यदि दँवाई के पहले धान के डाँठ के खरहे लगाकर छोड़ दिये जायें तो धान अन्दर ही अन्दर बहुत गर्म हो जाता है और यह डर रहता है कि उसके उगने की शक्ति गर्मी के कारण नष्ट न हो जाये। अतएव इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि क्वारी धान को शीघ्रातिशीघ्र दायँ डाला जाये। दवाँई के बाद भी धान को खूब सुखाकर तब बीज के लिये रखना चाहिये।

पानी की कमी से धान की फसलें कभी-कभी पूर्णरूप से नष्ट हो जाती हैं और तब बीज की बहुत बड़ी कमी पड़ जाती है। ऐसे संकट से बचने के लिये एक बहुत अच्छे उपाय का पता चला है। यदि धान का बीज खूब सुखाकर इस प्रकार रक्खा जाये कि वह बरसाती हवा के सम्पर्क में न आ सके तो ७-८ वर्षों बाद भी उसमें ८० प्रतिशत उगने की शक्ति बाकी रहती है। मामूली तौर से रक्खे हुये धान की उगने की शक्ति एक ही साल में नष्ट हो जाती है। जो किसान दो वर्ष का बीज बचा सकते हैं उन्हें चाहिये कि एक साल का बीज तो मामूली ढंग से रक्खें और एक साल का ऐसे रक्खें कि वह बरसाती हवा के सम्पर्क में न आवे। सफलता के लिये यह आवश्यक है कि धान में ४ प्रतिशत से अधिक नमी न हो। एक साल का बीज इस तरह से फाजिल रखने से इसका भय नहीं रहेगा कि सूखा में बीज नष्ट हो जाने से किसान का खेत ख़ाली ही रह जाये। धान का बीज बिलकुल सूखा रखने का ढंग यह है कि मई के महीने में खूब सुखा कर गेहूँ के बीज के साथ भूसे में दबा कर रक्खा जाय।

धान की जापानी प्रथा से खेती

थोड़े दिनों से धान की खेती जापानी ढंग से करने का आन्दोलन भारतवर्ष में बहुत जोर से चल रहा है। किसानों को सूक्ष्म रूप से इस ढंग की मुख्य-मुख्य बातें बतला देना आवश्यक है। जापानी धान की खेती में और उन्नत धान की खेती में जैसा कि भारतवर्ष में बहुत से किसान करते हैं बहुत ही थोड़ा अन्तर है और हमारे देश में भी अच्छे से अच्छे किसान धान की उतनी ही पैदावार कर लेते हैं जितना कि जापानी ढंग से होता है। भारतवर्ष और जापान के धान की खेती में अन्तर केवल यह है कि यहाँ सौ किसानों में यदि एक किसान खाद, पाँस, पानी, उन्नत बीज इत्यादि का पूर्ण प्रबन्ध करके भारी पैदावार लेता है तो जापान में सौ में से ९९ किसान पूरा परिश्रम करके और अच्छे से अच्छा और प्रचुर मात्रा में खाद का प्रबन्ध करके पूरी सिंचाई और अच्छे बीज का प्रयोग करके

अधिक से अधिक पैदावार लेते हैं। इसका फल यह होता है कि हमारे देश के धान की औसत पैदावार जापान के औसत पैदावार की तुलना में तिहाई भी नहीं है। जापान में हर धान के खेत में सिंचाई के पूरे साधन हैं परन्तु उत्तर-प्रदेश में केवल ११ प्रतिशत धान के खेतों में सिंचाई के साधन हैं। दोनों देशों की पैदावार में जो बहुत बड़ा अन्तर है उसका एक मुख्य कारण इस देश में सिंचाई के साधनै की कमी भी है। परन्तु जहाँ सिंचाई के पूरे साधन हैं वहाँ भी अधिकांश किसान उतनी अच्छी खेती नहीं करते जितना कि जापानी ढंग से खेती करने के लिये परिश्रम और सूझबूझ की आवश्यकता होती है।

जापानी किसान खाद इकट्ठा करने का बड़ा प्रयत्न करता है। वह घासफूस और सारे वानस्पतिक पदार्थों का कम्पोस्ट बनाता है। जानवरों और मनुष्यों के मल-मूत्र को भी पूरे तौर से खाद में इस्तेमाल करता है और इसके उपरान्त रासायनिक खादें और खली की खाद और राख इत्यादि का भी अपनी फसलें बढ़ाने के लिये पूरा प्रवन्ध करता है।

जापानी किसान धान की बेड़ भूमि से २ या ३ इंच उठी हुई ४-४ फुट चौड़ी और २५ फुट लम्बी क्यारियों में तैयार करता है। इन क्यारियों के बीच एक-एक फुट चौड़ी श्रौर ४-४ इंच गहरी नालियाँ छोड़ देता है। इन नालियों में से खेत का अधिक पानी निकल जाता है श्रौर इन्हीं नालियों में बैठकर बेड़ की निराई करता है ताकि पैर से दबकर पौधे टूट न जायँ। एक एकड़ धान की रोपाई करने के लिये केवल १।२० एकड़ बेड़ तैयार किया जाता है। एक पक्के बीघे के लिये एक बिस्वा बेड़ लगाते हैं। बेड़ तैयार करने के पहले खेत में लगभग २५ गाड़ी खाद प्रति पक्का बीघा डाली जाती है। उसको खेत में मिलाने के बाद २ इंच ऊँची श्रौर ४ फुट चौड़ी क्यारियाँ बना ली जाती हैं। इन क्यारियों के बीच एक फुट जगह छोड़ दी जाती है। ऐसी क्यारियाँ हमारे देश में प्रायः गोभी, टमाटर, बैंगन, पातगोभी इत्यादि के पौधे तैयार करने के लिये बनाई जाती हैं। इन्हीं क्यारियों के तैयार होने के बाद उनके ऊपर खूब बारीक छलनी से छनी हुई कम्पोस्ट की एक पतली तह से भूमि ढक दी जाती है। इस तह की मोटाई लगभग १।८ इंच या एक सूत की होती है। इसके ऊपर राख की एक पतली तह छिड़क दी जाती है। राख के ऊपर २५ फुट लम्बी और ४ फुट चौड़ी क्यारी में रासायनिक खादों (सुपरफास्फेट और अमोनियम सल्फेट) का बराबर मात्रा में मिश्रण क्यारी के ऊपर छिड़क देना चाहिये। यह खाद का मिश्रण एक क्यारी के लिये आधा सेर काफी है। अब क्यारी बीज बोने के लिये तैयार है। बोने के पहले बीज को एक बाल्टी पानी जिसमें २ मुट्ठी नमक घुला हो उसमें डाल देना चाहिये। ऐसा करने से सब खराब श्रौर हल्के धान ऊपर तैर जाते हैं और केवल भारी बीज नीचे बैठ जाते हैं। ऊपर के तैरते हुए हल्के

बीज निकाल देना चाहिये और केवल भारी बीज जो नीचे बैठ गये हैं उनको बीज के लिये प्रयोग करना चाहिये। इस बीज में बीमारियों के कीटाणुओं को मारने के लिये २० मिनट के लिये पैरानाक्स की २ प्रतिशत घोल में डूबा रहने दिया जाय। फिर इस बीज को साये में सुखाकर एक-एक २५ फुट लम्बी व ४ फुट चौड़ी क्यारी में आधा-आधा सेर बीज बोओ और ऊपर से एक पतली मिट्टी की तह से ढक दो। इस मिट्टी को किसी पटरे से हल्का-हल्का दबा देना चाहिये। या ऊपर से बोरा बिछाकर हाथ से दबा देना चाहिये। यदि बरसात न हो तो बेड़ में नहर या कुएँ से पानी देना चाहिये और इसका ध्यान रखना चाहिये कि बेड़ में पानी ७-८ घंटे से ज्यादा न ठहरा रहे। सिंचाई का दूसरा ढंग यह भी है कि हजारे से क्यारी के ऊपर पानी का छिड़काव किया जाय। जब पौधे उग आवें तो ६-७ दिन बाद इसमें सब घास इत्यादि के पौधे खुरपी से निकाल देना चाहिये।

घास निकालते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि धान की पौध पैरों से कुचल न जाय। यदि पौधे तेजी से न बढ़ रहे हों तो तीन हिस्सा रेंडी या मूँगफली की खली और एक हिस्सा अमोनियम सल्फेट मिलाकर एक क्यारी में आधा सेर छिड़ककर पानी दे दो ताकि पौधे तेजी से बढ़ें। जब धान के पौधे एक-एक बालिश्त के हो जावें और उनमें छठी पत्ती निकल आवे तो उनको सावधानी से उखाड़कर खेत में रोपाई कर देना चाहिए। उखाड़ते समय एक-एक पौधे को सँभालकर उखाड़ना चाहिये ताकि उनकी जड़ें बहुत न टूटें। आवश्यकता हो तो खुरपी की मदद से पौधे उखाड़े जायें जिससे जड़ें न टूटें। पौधों को एकदम सीधा ऊपर को उखाड़ना चाहिये, ऐसा करने से जड़ें कम टूटती हैं। इनकी जड़ों को पानी में सँभालकर धो लेना चाहिये और झटकना नहीं चाहिये। झटकने से पौधे कमजोर हो जाती है। धान के पौधों के छोटे-छोटे बंडल उन्हीं की पत्तियों या पुवाल से बाँध देना चाहिये। ऐसा करने से पौधों के तने नहीं टूटते। जिन खेतों में धान के पौधे लगाये जाते हैं उनमें मई के अन्त में सिंचाई करके २० सेर ढेंचा बो देना चाहिये। धान की रोपाई के २-३ दिन पहले सनई या ढेंचा की हरी खाद खेत में जोत देना चाहिये और फिर इस पर बेड़ लगा देना चाहिये।

जापानी ढंग से बेड़ लगाने में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि पौधों के बीच के आपस का फासला १० इंच रहे। खेत के सिरों पर से एक डोरी तान दी जाती है। इस डोरी में दस-दस इंच पर लाल धागे बँधे होते हैं और इन्हीं धागों के सामने दो-दो या तीन-तीन पौधे एकदम सीधे गाड़ दिये जाते हैं। चार पौधों से ज्यादा एक छेद में कभी नहीं गाड़े जाते। पौधों से पौधों की दूरी १० इंच और पंक्ति से पंक्ति की दूरी १० इंच ही होती है। सीधी पंक्तियों में धान रोपने से इसमें गुड़ाई अच्छी होती है और पौधों में कल्ले बहुत निकलते हैं।

धान का पौधा लगाते समय उसकी जड़ और तने को पहली दो उँगलियों के बीच में दबाकर मिट्टी में पौधा सीधा बैठाया जाता है। जमीन में पहले दोनों उँगलियाँ छेद करती हुई सीधी मिट्टी में घुसती हैं और उसी के सहारे पौधा अपनी पूर्ण जड़ों सहित खेत में सीधा लगा दिया जाता है। टेढ़ा पौधा बैठाने से यह जल्दी तैयार नहीं होता और फसल कमजोर हो जाती है। जापानी ढंग की खेती में धान के पौधे इसलिये सीधी लाइन में लगाये जाते हैं कि उनके बीच में पौध लगाने के बाद ३-४ गुड़ाई की जाती हैं। धान के खेत में रोपाई करने के पहले १५-२० गाड़ी प्रति एकड़ गोबर या कम्पोस्ट की खाद डालनी चाहिये। ६० या ७० पौण्ड नाइट्रोजन, खली और अमोनियम् सल्फेट के मिश्रण के रूप में देना चाहिये। अमोनियम् सल्फेट एक पक्के बीघे में १ मन से अधिक नहीं डालना चाहिये और २ मन सुपरफास्फेट या हड्डी की खाद देना चाहिये। सुपरफास्फेट और हड्डी की खाद सब एक साथ ढेंचा की हरी खाद बोने के पहले डाल देनी चाहिये परन्तु अमोनियम् सल्फेट और खली की खाद रोपाई के समय केवल आधी डालनी चाहिये और आधी खाद को रोपाई के बाद १५-१५ दिन के अन्तर से २ बार डालना चाहिये और उसी समय पौधों के बीच में जापानी हो से गुड़ाई कर देना चाहिये। जापानी हो कीचड़ और पानी में बहुत तेजी से काम करता है। २-३ मनुष्य एक एकड़ की गुड़ाई कर लेते हैं। रोपाई के १५ दिन बाद जड़ों के आस-

पास की मिट्टी हाथ से भी कुरेद दी जाती हैं। घास-फूस तथा काई आदि मिट्टी में दब जाते हैं और पौधा हरा-भरा हो जाता है और बहुत से कल्ले निकलते हैं। जापानी हो से हर पन्द्रहवें-बीसवें दिन गुड़ाई कर दी जाती है। ऐसी ३-४ गुड़ाइयाँ की जाती हैं परन्तु फूल आने से १५ दिन पहले गुड़ाई बन्द कर दी जाती है।
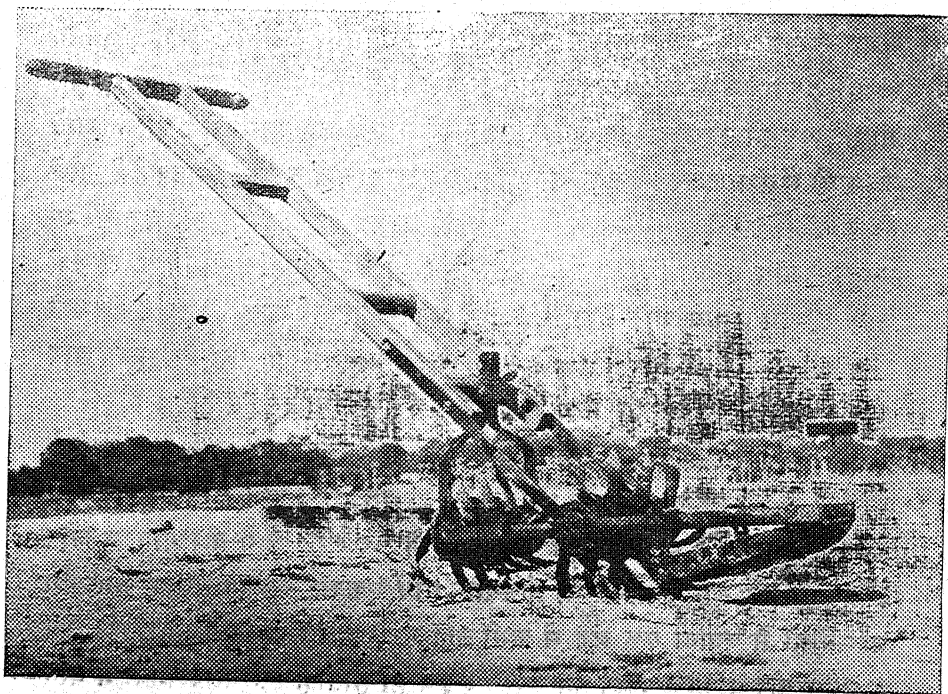
रोपाई करने के बाद भी थोड़ी सी बेड़ क्यारी में छोड़ दी जाती है। यदि कोई रोपा हुआ पौधा मर जाता है तो उसी स्थान पर दूसरा पौधा बियावड़ से लेकर लगा दिया जाता है ताकि कोई जगह खाली न रह जावे।

जापानी ढंग से धान की खेती करने से प्रायः फसल बहुत अच्छी होती है। इसको जमीन पर गिरने से बचाने के लिये ८-८, १०-१० फुट पर रस्सियाँ बाँध दी जाती हैं ताकि पौधे की बालें उन्हीं रस्सियों के सहारे लटक जायें और जमीन में गिरकर दाने सड़कर खराब न हों।

मक्का

मक्का भारतवर्ष की पुरानी फसल नहीं है। इसका बीज १८वीं शताब्दी में पुर्तगाल से आया था और १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में यहाँ इसकी फसल केवल बागों में ही बोई जाती थी, फिर कुछ ही समय के उपरान्त देश भर में इसकी फसल बोई जाने लगी क्योंकि यह बरसात की सबसे जल्द बढ़नेवाली फसल सिद्ध हुई। आजकल अनाजों की फसलों में यह काफी रकबे में बोई जाती है और लगभग सारे देश में इसकी खेती होती है। जब इसका भुट्टा कच्ची दशा में रहता है तो इसको भूनकर खाते हैं, सभी इसको पसन्द करते हैं। इसके लिये गरम और नम जलवायु की आवश्यकता है। यह खरीफ की फसल है, किन्तु भारतवर्ष के कुछ प्रान्तों में रबी की फसल में भी सिंचाई करके इसको पैदा करते हैं। इसके लिये दोमट और हल्की जमीन जिसमें खूब खाद पड़ी हो, अच्छी होती है। अच्छी फ़सल पैदा करने के लिये ऐसा खेत छाँटना चाहिये जिसमें पानी न लगता हो। इसको अधिकतर किसान गाँवों के निकट ही बोते हैं जिससे कि इसकी रखवाली हो सके।

खाद——मक्का की फसल से अधिक अनाज प्राप्त करने के लिये खेत में खाद बहुत डालना पड़ता है। यह बहुत तेजी से बढ़नेवाली फसल है। इसके बढ़ाव के समय पोषक तत्त्वों की कमी नहीं पड़नी चाहिये। अच्छी उपज के लिये १२० पौंड तक नाइट्रोजन, प्रांगारिक तथा रासायनिक खादों के मिश्रण के रूप में देना चाहिये।

यदि मक्का आलू की फसल के बाद बोया जाय तो अच्छा है क्योंकि आलू में २०० से ३०० मन तक गोबर की सड़ी पाँस डालना आवश्यक है और उस खाद का बहुत बड़ा भाग भूमि में बचा रहता है जो मक्के के लिये काम आता है।

तैयारी खेत

रबी की फसल के बाद जिस भूमि में मक्का बोना है उसको गर्मियों में मिट्टी पलटनेवाले हलों से तीन या चार बार खूब गहरा जोतना आवश्यक है। गहरा जोतने के लिये एक मिट्टी पलटनेवाला हल खेत में चलाया जावे और फिर उसी कूंड में दूसरा मिट्टी पलटनेवाला हल चलाना चाहिये किन्तु दूसरे हल का मिट्टी पलटनेवाला हिस्सा (मोल्ड बोर्ड) निकाल दिया जाय। इस तरह से खेत १० इंच गहरा जुत जावेगा। यदि कहीं पर मिट्टी पलटनेवाले हल न मिलें और मजदूरी कम हो तो वहाँ पर फावड़ों से खुदाई करनी चाहिये। इसके बाद दो बार देसी हलों से और जोतने से खेत बीज बोने के योग्य हो जायेगा।

बीज की छँटाई——जो बीज बोया जाय वह अच्छा और स्वस्थ होना चाहिये। पिछली साल की फसल में कुछ अच्छे भुट्टे बीज के लिये चुन लेने चाहिये और उनको सावधानी के साथ बिना छिलका उतारे किसी हवादार जगह में लटका देना चाहिये। बीज बोते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि बीज में किसी प्रकार के कीड़े का असर तो नहीं है। भुट्टे के दानों को हाथों से अलग करना चाहिये क्योंकि लाठी इत्यादि से पीटने के कारण बीज खराब हो जाता है।

बोवाई——मक्का बहुधा छींटकर या हल के पीछे किसान बोते हैं पर ऐसा करने से गोड़ाई में बड़ी कठिनाई पड़ती है इसलिये इसको पंक्तियों में बोना चाहिये। लाइन से लाइन की दूरी २ फुट और पौधे से पौधे की दूरी १ फुट रखना ठीक होगा।

इसको जल्द बोने से पैदावार अधिक होती है इसलिये जहाँ सिंचाई की सुविधा हो वहाँ जून के लगभग बो देना चाहिये। यदि सिंचाई की सुविधा न हो तो प्रथम वर्षा के साथ बोना चाहिये।

अब तक की जितनी किस्मों का अध्ययन किया गया है उनमें टा० ४१ सर्वश्रेष्ठ है। यह देसी मक्का से कुछ देर में पकता है परन्तु पैदावार में बहुत अधिक होता है। जो किसान खेत से पूरी पैदावार लेना चाहते हैं उनको टाइप ४१ बोना चाहिये।

बीज की मात्रा मक्के की जाति पर निर्भर करती है। बड़े दाने का बीज अधिक लगता है, छोटे दाने का बीज कम लगता है। औसत १० सेर बीज प्रति एकड़ा का अनुमान लगाना ठीक होता। यदि पंक्तियों में बोया जाय तो बीज इससे कम लगेगा।

निकाई, गुड़ाई और मिट्टी चढ़ाना——मक्का के खेत को निकाई और गोड़ाई करके बिलकुल साफ रखना चाहिये। किसी किस्म की घास खेत में

रहने देना मक्का के लिये हानिकर है। जहाँ तक सम्भव हो खेत की मिट्टी गोड़ाई करके सदा भुरभुरी बनाये रखना चाहिये। इस काम में "हैन्ड हो" जिसका जोताई के अध्याय में वर्णन किया गया है, बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। यदि क्षेत्रफल अधिक है तो लाइनों के बीच में बैल के कल्टीवेटर से भी काम लिया जा सकता है।

मक्का की फसल की रखवाली करना बहुत आवश्यक है। जब फसल में फूल आ जावे और भुट्टा निकलना शुरू हो जावे तभी से इसकी रखवाली करना चाहिये। इसको तोते, कौवे आदि चिड़ियाँ दिन में खाती हैं और रात को गीदड़, जंगली सूअर और चमगादड़ नुकसान पहुँचाते हैं। मनुष्य भी इसके भुट्टे की चोरी खाने के लिये करता है। जब एक फसल को नुकसान करनेवाले इतने अधिक हों तो वह बिना रखवाली किये किस प्रकार बच सकती है?

कटाई——यदि किसी को हरे भुट्टे बेचने हैं तो उसे जब भुट्टे में दूध पड़ जावे तभी बेचना शुरू कर देना चाहिये और यदि दाने के लिए फसल रखनी है तो जब भुट्टे पक जावें तब फसल को काटकर भुट्टे निकालने चाहिये और भुट्टों को खूब सुखाकर फिर मशीन से अथवा लकड़ी से पीटकर दानों को अलग कर लेना चाहिए। इसके दाने की पैदावार प्रति एकड़ २० से २५ मन तक अच्छे खेतों में हो जाती है।

अध्याय १०

आलू, चना, तम्बाकू और जौ की खेती

आलू की खेती

उत्तर प्रदेश में आलू की खेती लगभग २००,००० एकड़ में होती है। यहाँ की औसत पैदावार केवल १२५ मन प्रति एकड़ है। उत्तर-प्रदेश के अच्छे किसान ३०० से ४०० मन आलू प्रति एकड़ आसानी से पैदा करते हैं।

आलू की खेती के लिए दोमट और हल्की दोमट जमीनें सबसे अच्छी सिद्ध हुई हैं। खेत ऐसे हों जिनमें बरसात में पानी न ठहरता हो और ऊँचे नीचे न हों, और सिंचाई के साधन किसान के पास पूरे हों ताकि जब वह चाहे खेत की सिंचाई कर सके।

आलू की फसल लेने के पहिले गर्मी में मोठ, लोबिया, मूँग आदि फलीदार फसलें चारे और दाने के लिये ले ली जायें तो खेत की उर्वराशक्ति बढ़ती है। जून के दूसरे पक्ष में घनी सनई ४० सेर प्रति एकड़ व ढेंचा २० सेर प्रति एकड़ बो देना चाहिए और उसको अगस्त महीने के पहिले सप्ताह में पाटा देकर मिट्टी पलटनेवाले हल से खेत में दबा देना चाहिये। इस तरह से सनई या ढेंचे की खाद खेत में देने से उसकी उर्वराशक्ति बहुत बढ़ जाती है। इसके बाद सितम्बर के महीने में आलू के खेतों की बार-बार जुताई होनी चाहिए और हर जुताई के बाद पाटा फेरना चाहिए ताकि सब ढेले फूट जायँ और खेत की मिट्टी बारीक हो जाये। खेत को यदि एक बार खड़ा-खड़ा जोता जाये और दूसरी बार में बेंड़ा जोता जाये और फिर कोने से कोने तक गहरी जुताई की जाये। इस तरह से कुल आठ-दस गहरी जुताइयाँ करनी चाहिये और खेत को उतना ही बारीक बना लेना चाहिये जितना गेहूँ बोने के लिए बनाया जाता है। सितम्बर के आरम्भ में दो-एक जुताइयाँ करने के बाद प्रति एकड़ ५० गाड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट की खाद डालकर और उसको खेत में बराबर बिखेर कर जुताइयाँ करते रहना चाहिए। हर जुताई के बाद पाटा फेरना अत्यन्त आवश्यक है ताकि ढेले न रहें और खेत बारीक हो जाय। बरसात ख़त्म होने पर जुताइयाँ करते समय इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि खेत बहुत सवेरे या शाम को जोते जायँ। ९ बजे तक दिन में कड़ी धूप होने के पहिले यदि खेत में पाटा फेर दिया जाये तो खेत में नमी कायम रहती है और बीज उगने के लिए नमी का कायम रखना अत्यन्त आवश्यक है। आलू के लिये राख

की खाद अत्यन्त लाभदायक होती है और इसको इकट्ठा करके यदि ५ मन प्रति एकड़ खाद के साथ डाल दी जाये तो आलू की फसल बड़ी नीरोग होती है। हड्डी का बारीक चूरा भी खेतों में सनई बोने के पहिले ही यदि डाल दिया जाये तो उसका आलू की पैदावार पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। बोआई के कुछ पहिले ही खेत में १५ मन प्रति एकड़ अन्डी की खली डालकर दो जुताइयाँ कर देनी चाहिए।

आलू की बोआई हस्त नक्षत्र समाप्त होने पर और चित्रा के आरम्भ में लगभग १० अक्तूबर को कर देनी चाहिये। बोआई के पहिले इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि खेतमें इतनी नमी हो कि आलू उसी नमी पर उग आवे। आलू बोने के लगभग २० दिन बाद उगता है और इस बीच में सिंचाई नहीं करनी चाहिए। उगने के पहिले सिंचाई करने से जमीन कड़ी होजाती है, कुछ बीज सड़ जाते हैं और जो उगते हैं वह पौधे भी कमजोर
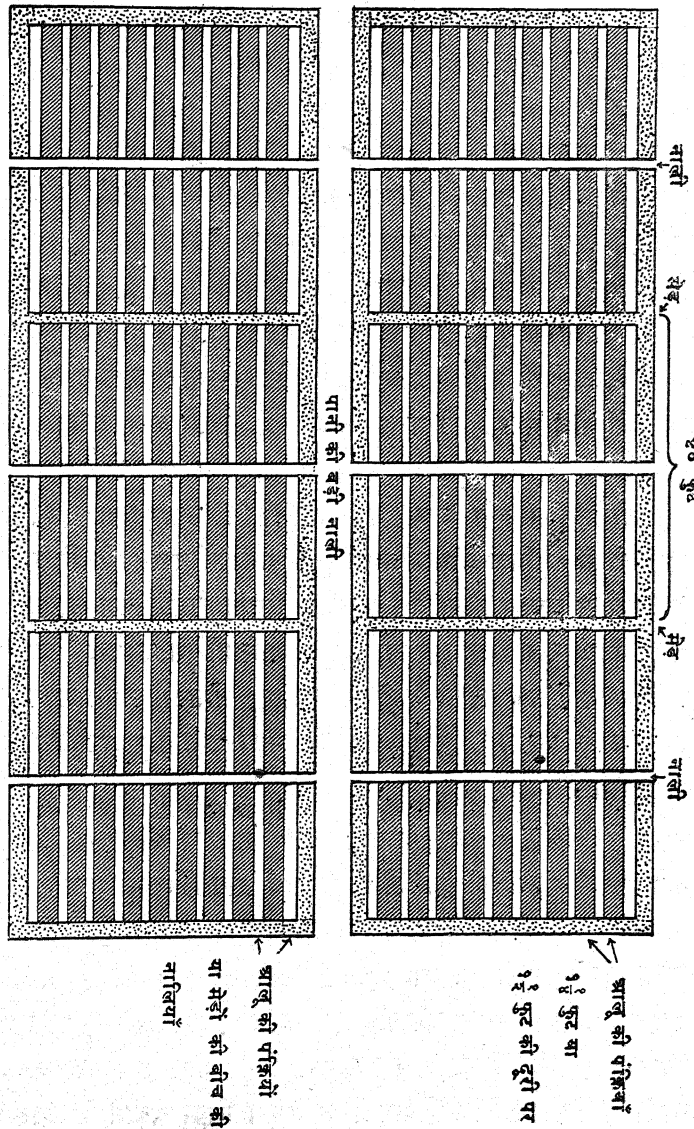
निकलते हैं। सितम्बर के अन्त में यदि नमी की कमी हो तो आलू के खेत में पलेवा करके और फिर से चार जुताइयाँ करके तब आलू बोना चाहिये। आलू

की गूलें करीब ३ इंच गहरी और १५ इंच से १८ इंच की दूरी पर बनानी चाहिए और इनकी लम्बाई लगभग २० फुट होनी चाहिये जैसा कि पिछले पृष्ठ पर चित्र में दिया हुआ है।

इन्हीं गूलों में ९-९ इंच के फासले पर सवा से डेढ़ इंच मोटाई के बीज बोने चाहिए। बोने के बाद गूलों के ऊपर मांझे से चार इंच मेड़ें बना देना चाहिए। यदि बड़े बीज बोये जायें तो बीज अधिक लगता है परन्तु पैदावार बहुत बढ़ जाती है। इसी लिये छोटे बीज बोना लाभदायक नहीं सिद्ध होता।

इस प्रान्त में सबसे अधिक पैदावार देनेवाली आलू की किस्में पटने की सुर्खा, फुलवा और मिलिटरी हैं और जल्दी तैयार होनेवाला पटने का साठा आलू है।

फुलवा फर्रुखाबाद की पुरानी किस्म है। इसमें ऐंठ की बीमारी प्रायः हर जगह पाई जाती है। इस बीमारी को रोकने के लिये फर्रुखाबाद के किसान बीज में से बड़े-बड़े आलू छाँटकर दिसम्बर के आरम्भ में काटकर फिर से बोते हैं, ताकि अगले साल के लिये बीज हो जाये। ऐसे बीज को फर्रुखाबाद में दोहन या कलम कहते हैं। लगातार अच्छा और बड़ा आलू छाँटकर बीज पैदा करने से यह ऐंठे रहित हो जाता है और पैदावार अधिक बढ़ जाती है। जिस आलू के पौधे में ऐंठे की बीमारी होती है, उसमें बड़ा आलू पैदा ही नहीं होता और केवल बड़े आलुओं का ही बीज दोहन या कलमी बीज के लिये बोने से यह बीमारी आप से आप दब जाती है। उत्तर-प्रदेश में फुलवा और सब जातियों से अधिक बोया जाता है। गर्मी में रखने के लिए यह आलू और जातियों से अच्छा होता है। फुलवा के बाद दारजिलिंग लाल बहुत बोया जाता है। पैदावार में यह सब आलू की जातियों से अधिक पैदा होता है, किन्तु अधिक दिनों तक रक्खा नहीं जा सकता। तीसरा स्थान जल्दी तैयार होनेवाले गोला आलू का है। पहाड़ी क्षेत्रों में मैजेस्टिक और अपटूडेट जातियाँ तेजी से फैल रही हैं

सिंचाई——बोने के बाद आलू लगभग २० दिन बाद उग आता है। जब पौधे मिट्टी से ३ इंच ऊँचे हो जायँ तब सिंचाई करके निराई कर देनी चाहिये। निराई के समय यह ध्यान रखना चाहिये कि पौधों के चारों ओर की मिट्टी भुरभुरी हो जाये परन्तु पौधों की जड़ों को हानि न पहुँचने पावे। १५ मन प्रति एकड़ अन्डी की खली और ५ मन प्रति एकड़ अमोनियम सल्फेट मिलाकर पौधों की जड़ों में डालकर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए और फिर हल्के पानी से खेत की सिंचाई करनी चाहिए। मिट्टी चढ़ाने के बाद हर तीसरे दिन हल्की सिंचाई करनी चाहिए। ऐसी चार सिंचाइयाँ मिट्टी चढ़ाने के बाद बारह दिन के अन्दर ही होनी चाहिए। उसके बाद चार सिंचाइयाँ हर पाँचवें दिन

होनी चाहिए । बाद में हर सप्ताह में एक सिंचाई देनी चाहिये । सिंचाई के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि खेत की मेंड़ें कभी ऊपर तक तर न होने पावें और न डूबें । नालियों में से पानी धीरे-धीरे आप से आप ऊपर चढ़ जाता है और इस तरह चारों तरफ नमी पहुँच जाती है, परन्तु अधिक पानी दे देने से मेंड़ें भी भीग जाती हैं, मिट्टी कड़ी हो जाती है और आलू कम बढ़ते हैं ।

जब आलू का पौधा पीला पड़ने लगे और उसकी पत्तियाँ और डंठल सूखने लगें तभी आलू को खोद लेना चाहिये । खोदते समय खेत की मिट्टी गीली नहीं होनी चाहिये जो आलू में चिपकी रह जाये और इसका ध्यान रखना चाहिये कि आलू कटने न पावे । खोदने के बाद आलू को साये में रखना चाहिये । लगभग एक सप्ताह बाद उसका छिल्का मजबूत हो जाता है । आलू को या तो तुरन्त बेच देना चाहिये या कोल्ड स्टोर में रख देना चाहिये या गाँव में अपने कच्चे गोदाम में रख देना चाहिये । आलू जब खेत में खुदें उसी समय से कपड़े से ढँका रखना चाहिये और गोदाम में भी बारीक जाली के दरवाजे हों ताकि आलू की तितली पहिले से उसकी आँखों में अन्डे न दे सके नहीं तो इन्हीं अन्डों से कीड़े पैदा होकर आलू को सड़ा डालते हैं ।

गाँव-गोदाम में आलू रखने की विधि:—बीज के लायक स्वस्थ तथा रोग रहित आलू छाँट लेते हैं । बीज का आलू मार्च के पहिले सप्ताह में छाँट लेना चाहिये जिससे खेत में गर्मी से खराब न हों । पूर्वी जिलों में फरवरी के अन्त तक बीज छाँट लेना चाहिये । पश्चिमी जिलों के लिये मार्च का महीना ठीक है । आलू का गोदाम ठंडे स्थान पर रखना चाहिये और इसका प्रयत्न करना चाहिये कि लू की गर्मी आलू तक न पहुँचे । इसलिये ठंडक रखने के लिये मिट्टी की दीवार और मिट्टी की छत अधिक सफल होती है । जिस गोदाम में बीज के लिये आलू रक्खा जाय वह चार फुट धरती के नीचे व आठ फुट धरती से ऊपर होना चाहिये । कच्ची दीवाल कम से कम डेढ़ फुट मोटी होनी चाहिये व कच्ची छत पर वृक्ष की साया होनी चाहिये । गोदाम की पश्चिमी दीवाल व पूर्वी दीवाल में दो खिड़कियाँ होनी चाहिये जो बारीक जाली से बन्द हों, हवा उसमें से अन्दर जा सके, परन्तु कीड़े न घुस सकें । जाली के अलावा इन खिड़कियों में मोटी लकड़ी के दरवाजे लगे हों, एक दीवाल के बाहर व एक दीवाल के अन्दर से ताकि इन डबल दरवाजों को बन्द कर देने के बाद दोपहर में गर्म हवा गोदाम में न घुस सके । रात में पूरब-पश्चिम की दोनों खिड़कियाँ १ बजे खोल दी जाती हैं और सबेरे सूर्य उदय होते ही बन्द कर दी जाती हैं । १ बजे व पाँच बजे के बीच रात में गोदाम ठंडी हवा से भर जाती है और दूसरे रोज तक वही ठंडी हवा गोदाम में बन्द रहती है जब तक कि फिर एक बजे रात से

ठंडी हवा उसमें भरना आरम्भ नहीं हो जाती। इस यत्न का फल यह होता है कि आलू जो कम से कम उस दिन का तापमान होता है उसी में रहता है। गर्मी में गरम हवा गोदाम में नहीं पहुँचती और न आलू का गोदाम गरम होता ही है। प्रकाश व गर्मी को और कम करने के ध्येय से गोदाम की दीवालें व छत सब सफेद कर दी जाती हैं और छत के ऊपर छप्पर रख दिया जाता है। प्रयत्न इसका भी होना चाहिये कि दीवाल पर धूप न पड़े इस गोदाम के अन्दर तह पर तह लकड़ी की इलमारी पर आलू रक्खे जायें तो अधिक आलू गोदाम में आ जायेंगे। कोई भी तह ३ इंच से मोटी नहीं होनी चाहिये। साफ बारीक बालू आलू के ऊपर फैला देते हैं जिससे कि आलू ढका रहे।

कृषि-विभाग ने ऊपर बतलाये हुये ढंग का गोदाम बनाकर उसमें आलू रक्खा और केवल १०.३ प्रतिशत आलू का वजन साढ़े छः महीने में कम हुआ। इस प्रकार लगभग सारा आलू बीज के लिये बच गया। साधारणतया गाँवों में एक तिहाये से दो तिहाये तक आलू सड़ जाता है। कच्चा गोदाम इतना सस्ता होता है कि उसके बनाने का खर्चा पहिले साल ही आलू के बीज से निकल आता है। खाने के लिये भी आलू गाँवों में इन्हीं सस्ते गोदामों में रक्खे जा सकते हैं। रखने के लिये फुलवा आलू लाल आलू से अच्छा होता है। अच्छा यह होगा कि ५ प्रतिशत वाला डी० डी० टी० पाउडर १५ मन बालू में एक पौंड मिलाकर काम में लायें क्योंकि इससे आलू के कीड़ों का असर बहुत कम हो जाता है। यदि अधिक गर्मी के कारण आलू का सड़ना आरम्भ हो जाये तो छँटाई करते हैं। यदि आलू सड़ न रहे हों तो पहली छँटाई जुलाई में करते हैं। जुलाई से सितम्बर तक दो-तीन बार छँटाई करते हैं। सितम्बर में आलू को बालू से निकालकर खुला छोड़ देते हैं। आठ-दस दिन बाद टोकरियों में भरकर रख देते हैं ताकि बोने के समय तक अँखुए निकल आवें और यह खेत में बो दिया जाय। खाने के लिये आलू जो रक्खा जाय उसके बालू में डी. डी. टी. पाउडर नहीं मिलाना चाहिये। खानेवाला आलू केवल साफ बालू में रखना चाहिये।

चना की खेती

चना ऐसा उत्तम अनाज है कि उसको कई प्रकार से सब लोग खाते हैं। दूसरे अनाज केवल पककर ही खाने के काम में आते हैं, किन्तु इसको उगते ही लोग तोड़ने लगते हैं। कोई इसको नमक मिलाकर खेत में ही खाता है, कोई साग या सब्जी बनाकर खाता है। जब वह बढ़कर ठीक होता है और उसमें बूट आने शुरू हो जाते हैं तो लोग उसको कच्चा ही या भूनकर खाते हैं। सारांश यह है कि चना एक बड़ी ही उपयोगी फसल है।

यह दालदार रबी की फसल है। इसकी उपज दुमट से लेकर मटियार तक में हो सकती है। ज्वार, जल्दी पकनेवाला धान, मक्का और सावाँ इत्यादि

खरीफ की फ़स्ल लेकर उन्हीं खेतों में यह बोया जाता है। रबी की फ़स्लों में यह सबसे पहिले बोया जाता है। इसके लिये खाद आवश्यक नहीं है क्योंकि पहिली फ़स्ल की पड़ी हुई खाद इसके काम आजाती है। दूसरी बात यह भी है कि इसकी जड़ में छोटी २ गाठें होती हैं जिनमें एक किस्म के कीटाणु पैदा हो जाते हैं जो हवा में से नाइट्रोजन लेकर इन्हीं गाँठों में इकट्ठा करते हैं और इस प्रकार नाइट्रोजन इकट्ठा करते २ फ़स्ल के बाद बड़ी उर्वराशक्ति छोड़ जाते हैं। इसी कारण जब फ़स्ल पक जाये और काट ली जाये तो खेत को जोत डालना चाहिये। यह नाइट्रोजन आगामी फ़स्ल के लिये खाद का काम देती है। चना के लिये अधिक जुताई की आवश्यकता नहीं होती है। करीब ४ या ५ जुताई काफ़ी होती हैं। यदि खेत में ढेले ही रह जावें तो इसकी फ़स्ल को कोई हानि नहीं है। घाघ की पुरानी मसल भी यही बतलाती है।

"जब सैल खटाखट बाजे, तब चना खूब ही गाजे"

यानी खेत सूखा और मटियार हो और उसमें इतने ढेले हों कि जोतते समय जुए की सैलें बजती रहें तो उस खेत में चना बहुत अच्छा होता है।

इसको चित्रा नक्षत्र के आरम्भ में या अक्टूबर के पहिले या दूसरे सप्ताह में बोते हैं। इसके बोने का ढंग यह है कि खेत तैयार हो जाने पर हल के पीछे कूंड में एक आदमी दाना डालता है। जब तमाम खेत बोकर निबट जाता है तब ऊपर से पाटा देते हैं और अगर खेत में नमी कम है तो एक बाँस की नली या चोगा हल के साथ बाँध देते हैं और उसी नली से बीज डालते जाते हैं। इस प्रकार बोने के पश्चात् पाटा देने की आवश्यकता नहीं होती है। ३० सेर प्रति एकड़ इसका बीज बोया जाता है। जोरदार नमी वाले खेतों में २० या २५ सेर बीज काफी है।

यदि इस फ़स्ल में घास हो गई हो तो बड़ी-बड़ी घास निकाल डालना चाहिये। प्रायः निकाई या गुड़ाई की आवश्यकता नहीं होती है। महावट हो जावे तो चने के लिये पानी देने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती, यदि जाड़ों में पानी न बरसा तो एक सिंचाई काफी होती है। यदि किसी कारण से इसके खेत में पानी भरा रह जावे तो इसकी फ़स्ल को बहुत हानि होती है।

जब चने की फसल पक जावे तो हँसिया से काटकर और बन्डल बनाकर खलियान में जमा कर लेते हैं और बैलों से या ओलपाड थ्रेशर से दाने को भूसे से अलग कर लेते हैं। इसकी पैदावार अच्छे खेतों में लगभग २० मन प्रति एकड़ हो जाती है। मगर औसत पैदावार करीब १० मन प्रति एकड़ है। इसकी कई किस्में हैं। जैसे बड़ा और छोटा सफेद (काबुली चना) काफी मँहगे बिकते हैं और लोग शहरों में इनको तरकारी के लिये प्रयोग करते हैं। पैदावार में पूसा २५ और पूसा ५८ देसी से बहुत अच्छे हैं। टाइप नम्बर ८७ भी पैदावार

में बहुत अच्छा है और देर में बोवाई होने पर भी संतोषजनक पैदावार दे जाता है।

चने की फसल को एक हरे रंग की सूँडी, जिसको कटवा या भदरा कहते हैं, हानि पहुँचाती है। यह सूँडी पौधों को काट डालती है और फली में घुसकर दानों को खा जाती है। यह पिछड़ी हुई फसल में अधिक हानि पहुँचाती है।

तम्बाकू की खेती

तम्बाकू दो तरह की होती है। खाने की तम्बाकू और पीने की तम्बाकू। इसका पौधा भारतवर्ष में सत्रहवीं सदी में लाया गया था और उसी समय से इसकी खेती होने लगी है। पुराने शहरों, छोटे कस्बों और गाँवों में उजड़े घरों के ऊपर इसकी खेती बहुत होती है।

तम्बाकू के लिये सबसे अच्छी भूमि दोमट होती है। इसके लिये बहुत उपजाऊ खेत चाहिये। विशेषकर उन कुओं के पास के खेतों में, जिनका पानी खारा होता है तम्बाकू की खेती बहुत अच्छी होती है क्योंकि इसके लिये खारे पानी की सिंचाई लाभदायक है। नीची भूमि में, जहाँ पानी भर जाता है, तम्बाकू की खेती न करनी चाहिये।

तम्बाकू की अच्छी फसल लेने के लिये खेत की मिट्टी बहुत बारीक होनी चाहिये। छः से आठ जुताइयाँ तक कर देने से खेत की मिट्टी काफी नर्म और भुरभुरी हो जाती है।

खाद——तम्बाकू की फसल को खाद अधिक चाहिये। ३०० से लेकर ४०० मन तक गोबर की खाद और यदि यह न मिल सके तो करीब बीस गाड़ी कम्पोस्ट की खाद काफी होती है। लोना मिट्टी जमा करके खड़ी फसल में छिड़कना भी लाभदायक होता है। यह मिट्टी दो बार छिड़कना चाहिये। लोना मिट्टी छिड़कने से एक तो फसल को खाद मिल जाती है, दूसरे तम्बाकू का स्वाद अच्छा हो जाता है। एक एकड़ खेत में छिड़कने के लिये एक गाड़ी लोना मिट्टी काफी है।

बुवाई और बीज——तम्बाकू की बुवाई धान की तरह या नर्सरी लगाकर की जाती है। बीयड़ एक छोटी क्यारी में लगाया जाता है। इसके लिये जमीन ऐसी चुननी चाहिये जो किसी ऊँची, सायादार ठण्ढी जगह पर हो। इस क्यारी में खूब अच्छी तरह सड़ी हुई खाद डालकर फावड़ों से गोड़ देना चाहिये और इसमें से सब कंकड़-पत्थर चुन लेना चाहिये। क्यारी में एक छटाँक प्रति बिस्वा के हिसाब से बीज बोना चाहिये जो एक एकड़ में लगाने के लिये काफी होगा। बीयड़ में बीज बोने का अच्छा ढंग यह है कि तम्बाकू के बीज में थोड़ी सी राख मिलाकर पूरी क्यारी में एकसा छिड़ककर ऊपर से आध अंगुल मोटी तह सड़ी हुई पत्ती की खाद डाल देनी चाहिये। इस बीयड़ में फव्वारा से रोज पानी छिड़कते रहना चाहिये, लेकिन जब पौधे तीन इंच के

हो जावें तो हर तीसरे रोज पानी लगाना चाहिये। बीयड़ की भूमि सदा नर्म रखनी चाहिये और निकाई करते रहना चाहिये। जब पौधों में चार-पाँच पत्तियाँ निकल आवें और वह लगभग ६ इंच के हो जावें तब उनमें एक हलकी सिंचाई करके दूसरे दिन खुरपी से इस तरह पौधों को उठावे कि जड़ें टूटने न पावें। फिर बड़े खेत में ले जाकर दो-दो फीट के दूरी पर लगावें। पौधों को लगाते समय इस बात पर ध्यान रक्खा जावे कि वह खेत में दोपहर के बाद ४ से ६ बजे लगाये जायें। इन पौधों की जड़ें अच्छी तरह पत्तियों तक जमीन में गाड़कर चारों तरफ की मिट्टी को खूब दबा दिया जावे। पौधे लगाने के बाद खेत में हल्का पानी दे दिया जावे लेकिन इतना न हो कि पौधे डूब जायँ। तम्बाकू की बुवाई के दो ऋतु हैं (१) बीयड़ सितम्बर के आरम्भ में लगाया जाता है और पौधा अक्टूबर के अन्त में लगाया जाता है (२) बीयड़ दिसम्बर में लगाया जाता है और पौध फरवरी में लगाई जाती है।

पौध लगाने के एक सप्ताह के बाद दूसरी सिंचाई की जाती है। इसके बाद हर पन्द्रहवें दिन हल्की सिंचाई करते रहना चाहिये। चार पाँच सिंचाइयाँ तम्बाकू की फसल के लिये काफी होती हैं।

तम्बाकू में खुरपी या 'हैन्ड हो' से हल्की गुड़ाई करते रहना बार-बार पानी लगाने से अच्छा है। इस तरह नमी बनी रहती है और पौधों के आसपास जमीन पोली होने की वजह से उन्हें हवा और सूरज की गर्मी भी पहुँचती है। चार हल्की गुड़ाइयाँ दो इंच गहरी काफ़ी होती हैं। खेत को घासफूस से साफ रखने के लिये तीन-चार बार निकाई भी करनी पड़ती है। डेढ़ या दो माह बाद पौधों की जड़ों में कल्ले फूटने शुरू हो जाते हैं। इनको तुरंत तोड़ देना चाहिये क्योंकि यदि इनको छोड़ दिया गया तो जिस समय और सब पत्ते पक जायँगे, ये कच्चे ही रहेंगे। एक पौधे में आठ-दस पत्तियाँ होनी चाहिये। इससे जब उनमें ८-१० पत्तियाँ हो जावें तो उनकी फुनगी तोड़ देनी चाहिये ताकि पत्ते खूब बढ़ें और फैलें। बीज के वास्ते बड़े और स्वस्थ पौधों को छोड़ देना चाहिये।

कटाई

जब पत्तियों का रंग हल्का पीला हो जावे और छूने से उनमें एक किस्म की चिपक गोंद की तरह मालूम हो तो फसल को तैयार समझना चाहिए। उस समय यदि पत्तियों को मोड़ा जावे तो वह चट टूटती हैं। यदि फ़स्ल तैयार होने के बाद वर्षा हो जावे और यह गोंद घुल जाये तो फ़स्ल को उस समय तक न काटना चाहिये जब तक कि यह फिर से न पैदा हो जावे। तम्बाकू के पौधों को काटकर खेत में सुखाने के लिये डाल देते हैं। कहीं-कहीं केवल पत्तियाँ काट लेते हैं। जब चार-पाँच रोज में पत्तियाँ अच्छी तरह सूख जावें तो उन्हें सुबह के समय उठाकर गोदाम में ले जाते हैं। वहाँ इन पत्तियों को या तो किसी गड्ढे

में या कोने में ढेर लगाकर रख देते हैं और ऊपर से कम्बल या टाट का टुकड़ा डालकर भारी बोझ रख दिया जाता है ताकि हवा अन्दर न जा सके। जब पत्तियाँ सुनहरे रंग की हो जावें और उनमें एक किस्म की तेज़ महक पैदा हो जाये तो पीनेवाली तम्बाकू की दस-दस, पाँच-पाँच सेर की रस्सियाँ बटकर और खाने की तम्बाकू की आठ-आठ, दस-दस, पत्तियाँ रस्सी पर लटकाकर सुखाई जाती हैं। अच्छी तरह सूख जाने पर उनको थोड़ा नम करके बिक्री के लिये रख लिया जाता है।

पैदावार

खाने की तम्बाकू की उपज ८५ से १०५ तक तैयार पत्ती और पीनेवाली १६५ से १८५ तक प्रति एकड़ पैदा हो जाती है।

जौ की खेती

जौ की फस्ल बहुत मटियार और अधिक तरीवाली भूमि को छोड़कर सब जमीनों में, जिनमें खेती हो सकती है, पैदा की जा सकती है। इस फसल को खाद की अधिक आवश्यकता नहीं होती है। यदि खेत बहुत कमजोर हो तो खाद डालनी चाहिये। खरीफ की फसल लेने के बाद ही इसको बोते हैं। यदि इसको भी चौमास खेत में या मूँग के बाद बोया जावे तो यह अधिक पैदावार देता है।

इसके लिये कम से कम ६ या ७ जुताइयाँ काफी होती हैं। जब खेत दो-तीन बार जुत चुके तो फिर प्रत्येक जुताई के बाद पाटा फेरना चाहिये और क्वार में इसके खेत को मिट्टी पलटनेवाले हल से नहीं जोतना चाहिये क्योंकि उससे जोतने से नमी उड़ जाती है। जब खेत तैयार हो जावे तो चित्रा नक्षत्र में ही अर्थात् १५ अक्तूबर के करीब ही इसको बो देना चाहिये।

जौ की फसल में बोने के २५ या ३० दिन बाद पानी लगाना आवश्यक है और खेत में पहिली सिंचाई के बाद इसकी गुड़ाई लीवर हैरो से कर देनी चाहिये। महावट हो जाने पर इसमें फिर पानी लगाना आवश्यक नहीं है और यदि महावट न हो तो एक पानी और देना चाहिये।

इसकी फसल मार्च में पककर तैयार हो जाती है और कटाई-मड़ाई भी गेहूँ की तरह ही की जाती है। जौ की पैदावार लगभग २० से २५ मन तक प्रति एकड़ अच्छे खेतों में हो जाती है। जौ की उन्नत जातियाँ पहिले से कानपुर २५१ व टाइप २१ हैं। नई दो-एक जातियाँ जैसे कानपुर १२ व एन० पी० १३ उनसे भी अच्छी निकलती दिखाई पड़ती हैं। एक बिना छिलके की जौ है सी० एन० २९४ जो देखने में गेहूँ सा ही है। जौ में बहुधा अगिया की बीमारी लगती है जिससे बालों में काली कोयले की महीन धूल सी पैदा हो जाती है। यदि जौ के बीज को अग्रोसैन जी० एन० के साथ खूब हिलाकर बोवें तो यह बीमारी नहीं लगती।

अध्याय ११

मूँगफली

मूँगफली तेलहन की एक फसल है। इससे गन्ना और आलू की फसलों की तरह बहुत लाभ होता है क्योंकि यह भिन्न-भिन्न प्रकार से काम में लाई जाती है। चना और मटर की तरह यह भी एक दालदार फसल है। इसकी जड़ों में भी गाँठें होती हैं जिनमें हवा से नाइट्रोजन लेनेवाले शाकाणु रहते हैं इसलिए यह फसल जमीनों को उपजाऊ बनाती है और गेहूँ, कपास इत्यादि फसलों के साथ फसल के हेरफेर में इसकी खेती करना चाहिये। इससे जमीन बहुत उपजाऊ होगी और आय भी अच्छी होगी।

इसकी उन्नतिशील जाति टाइप २५ है। यह १५० दिन में पकती है और इसमें ५०.१ प्रतिशत तेल होता है। यह भूनकर खाने के लिये व तेल निकालने के लिये बहुत अच्छी है। इसकी पैदावार २० से २१ मन तक साधारण प्रकार से प्रति एकड़ हो जाती है।

मूँगफली को ऐसी हल्की जमीनों में बोना चाहिए जिनमें पानी न ठहरता हो। मटियार और भारी दोमट जमीनों में इसकी पैदावार अच्छी नहीं होती क्योंकि इसकी फलियाँ जमीन के नीचे बढ़ती हैं और मटियार जमीनों में ये आसानी से मोटी नहीं हो सकतीं। कड़ी भूमि में खुदाई का व्यय अधिक हो जाता है। जिस खेत में पानी ठहरता है उसमें मूँगफली की फसल सफल नहीं होती। पानी ठहरने से इसके पौधे मर जाते हैं।

जिस खेत में मूँगफली की फसल लेनी हो उसको पिछली फसल काटने के बाद ही खूब गहरा जोत डालना चाहिए। इसके बाद ३, ४ जुताइयाँ और करके मिट्टी को खूब बारीक और नरम कर लेना चाहिए ताकि बीज अच्छी तरह जम सके। साधारण जमीनों में इस फसल के लिये किसी खाद की आवश्यकता नहीं होती लेकिन यदि थोड़ी खाद डाल दी जाय तो पैदावार बढ़ जाती है।

मूँगफली का बीज छीलकर बोया जाता है लेकिन इस बात का ध्यान रहे कि छिलते में बीज के लाल छिलकों को कोई नुकसान न पहुँचे और बीज बुवाई से २, ३ दिन से अधिक पहिले न छीला जाय। मूँगफली का बीज ३५ से ४० सेर तक एक एकड़ में डालना चाहिये।

मूँगफली की बुवाई कई ढंग से की जाती है।

(१) बीज को छिड़ककर जुताई कर देना। (२) हल के पीछे बोना। (३) खुरपी से गाड़ना।

इनमें खुरपी से बीज गाड़ने का ढंग सबसे अच्छा है। इस तरीके से बोने में खर्चा और समय अधिक लगता है लेकिन इससे यह लाभ होता है कि बीज बराबर पड़ता है और बाद में निकाई और गोड़ाई में आसानी होती है। इस प्रकार से बोने से बीज भी कम लगता है। बीज से बीज की दूरी ६ इंच तक और पंक्तियों के बीच की दूरी १ से १½ फ़ीट तक रखना चाहिये। फैलने वाली क़िस्मों को अधिक जगह की आवश्यकता होती है इसलिये इनमें दो पंक्तियों की दूरी २ फीट तक हो तो अच्छा है। बीज को २" की गहराई पर बोकर मिट्टी से तुरन्त ढँक देना चाहिये। यदि खेत में पूरी नमी हो और मिट्टी कुछ भारी किस्म की हो तो गहराई कम कर दी जाय और यदि नमी की कमी हो या भूमि बलुई हो तो गहराई बढ़ाकर ३" कर दी जाय। ७ दिनों में तमाम पौधे जम आते हैं लेकिन १५ दिन तक जब तक पौधे अच्छी तरह जम न आवें दिन में चिड़ियों और गिलहरियों से और रात में गीदड़, साही इत्यादि से रखवाली की आवश्यकता होती है, नहीं तो बीज को बड़ी हानि पहुँचती है।

मूँगफली की फ़सल पहिली वर्षा से कुछ पहिले बोई जावे तो बुवाई से ४-५ रोज़ पहिले एक सिंचाई खेत को तैयार करने के लिए आवश्यक है। जब मूँगफली में फलियाँ लगने लगती हैं, उस समय मूँगफली के खेत को नमी की आवश्यकता होती है ताकि बड़ी फलियाँ ज़मीन के अन्दर आसानी से घुस सकें। फलियाँ लगते समय यदि खेत में नमी न हो तो सिंचाई करना आवश्यक है। इसके अलावा और किसी सिंचाई की इसको आवश्यकता नहीं होती। बरसात का पानी इसके लिये काफी होता है। फलियाँ पड़ जाने के बाद सिंचाई न करना चाहिये।

जब तक मूँगफली के पौधे में फूल न आना शुरू हो हर १५वें रोज हैंडहो या खुरपी और कस्सी से गुड़ाई करना आवश्यक है जिससे खेत में घास न पैदा हो सके और फलियाँ पड़ते समय धरती पोली रहे। इस तरह से छोटी फलियाँ आसानी से ज़मीन के अन्दर बढ़ सकेंगी।

मूँगफली की फसल लगभग ५ महीने में तैयार हो जाती है। छोटे दानेवाली किस्में बड़े दानेवाली जातियों से जल्द तैयार हो जाती हैं। फलियाँ लग जाने के बाद जंगली जानवरों और चिड़ियों से खेत की रखवाली करनी चाहिये नहीं तो वे बड़ी हानि कर देते हैं। मूँगफली की खुदाई ही सबसे अधिक परिश्रम और खर्च का काम है। फैलनेवाली किस्मों की पहिले बेल काट ली जाती है इसके बाद फावड़ों से या हल चलाकर खुदाई की जाती है और फलियाँ हाथ से चुन ली जाती हैं। गुच्छेदार किस्मों को कुछ खोदकर हाथ से

उखाड़ लेते हैं जिसके साथ फलियाँ लगी हुई ऊपर आ जाती हैं। पौधों को एक या दो सप्ताह सुखाकर फलियाँ इकट्ठा कर लेते हैं और फिर इनको लगभग १ सप्ताह सुखाकर रख लेते हैं। मूँगफली की पैदावार १५ से २० मन प्रति एकड़ होती है। बहुत अच्छी खेती करने पर इसकी पैदावार ३० से ३५ मन तक हो सकती है।

अरहर

अरहर दाल की एक मुख्य फसल है और उत्तरप्रदेश में बहुत बोई जाती है। इसकी दो किस्में होती हैं——(१) साधारण अरहर जो लगभग नौ महीने में पककर तैयार हो जाती है। (२) अगहनी जो लगभग पाँच महीने में पक जाती है।

अरहर के लिये सिवाय नीची भूमि के जहाँ पानी रुक जाता है बाक़ी सब ज़मीनें ठीक हैं। केवल कड़ी मटियार और ऊसर में यह नहीं पैदा होती।

तैयारी खेत——अरहर के लिये वर्षा होने पर दो, तीन जुताइयाँ कर देना काफी है। इसमें कोई खाद नहीं डाली जाती। यह फसल अपनी ख़ूराक जमीन से कम लेती है, उल्टे खेत को उपजाऊ बनाती है। बहुत उर्वर खेत में अरहर की फसल न बोना चाहिये क्योंकि इससे कोई विशेष लाभ नहीं होता, केवल पत्तियाँ बढ़ जाती हैं।

अरहर अकेली कम बोई जाती है। इसको बहुधा ज्वार, बाजरा, मूँगफली, मूँग, तिल, कोदो, कपास, धान इत्यादि के साथ मिलाकर बोते हैं। यह फसलें अरहर से पहिले कट जाती हैं और उनके कट जाने के बाद अरहर के पौधों को बढ़ने का पूरा समय मिल जाता है। वर्षा आरम्भ होते ही अरहर बोई जाती है। बुवाई बहुधा छिटकवाँ या हल के पीछे होती है और अनाजों के साथ मिलाकर बोने में इसका बीज दो सेर और अलग बोने में तीन सेर प्रति एकड़ पड़ता है। अरहर से अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिये फसल को लाइनों में बोना चाहिये क्योंकि इस तरह पंक्तियों के बीच हल चलाकर सस्ती गुड़ाई की जा सकती है।

अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि यदि अरहर की बुवाई घनी न हुई हो और इसका पौधा बरसात में दो एक गुड़ाइयाँ पा जाय तो वह बहुत ज्यादा बढ़ता है और उसमें फलियाँ भी अच्छी आती हैं। पौधा इतना मोटा हो जाता कि वह मुट्ठी में पकड़ा नहीं जा सकता। उसकी मोटाई एक मोटे बाँस के बराबर हो जाती है और एक-एक पौधे से डेढ़ सेर से दो सेर तक दाना पैदा होता है। अरहर के ऐसे मोटे एक-दो पौधे गन्ने के खेत के किनारे या बाँधों पर तो सभी लोगों ने देखा ही होगा, लेकिन अरहर की पूरी फसल जिसमें हरएक पौधा ऐसा ही मोटा और फलियों से लदा हो, बहुत कम लोगों ने देखा

होगा । अरहर की खेती का एक ऐसा ढंग लेखक न निकाल लिया है कि फसल का हरएक पौधा खूब मोटा हो जाता है और खूब फलता है ।

अरहर का बीज सीधी पंक्तियों में बोया जाता है और इन पंक्तियों के बीच ६ फीट की दूरी रहती है । बोते समय बीज से बीज की दूरी ६ इंच रखी जाती है । अरहर की दो पंक्तियों के बीच में १८-१८ इंच की दूरी पर ५ पंक्तियाँ मूँगफली की या मूँग की बो दी जाती हैं। मूँग नं० १ और मूँगफली के साथ-साथ अरहर की फसल की भी वर्षा ऋतु के आरम्भ में निकाई और गुड़ाई होती है, जिससे दोनों फसलों को बड़ा लाभ पहुँचता है। अगस्त के महीने में अरहर के कमजोर पौधे बीच-बीच में से दो-तीन बार में उखाड़ दिये जाते हैं और केवल स्वस्थ और होनहार अरहर के पौधे लगभग ३-३ फीट के फासिले पर पंक्तियों में छोड़ दिये जाते हैं । बरसात में अरहर का पौधा छोटा ही रहता है, इसलिए उसके बीच में बोईहुई मूँग नं० १ या मूँगफली की फसलपर उसकी घनी छाया नहीं पड़ती और ये फसलें पूरी पैदावार दे जाती हैं । मूँगफली या मूँग की फसल ले लेने के बाद अरहर की लाइनों के बीच की जमीन गोड़दी जाती है और जाड़े भर वह वैसे ही गुड़ी पड़ी रहती है । इस तरह अरहर की फसल वर्षा

मूँगफली-अरहर-ऊख की फसल के हेरफेर में उपजा हुआ एक अरहर का पौधा

के आरम्भ में दो गोड़ाइयाँ और वर्षा के अन्त में भी एक अच्छी खासी गोड़ाई पा जाती है। पंक्ति से पंक्ति और पौधे से पौधे की दूरी इतनी होती है कि अरहर के पौधे को बढ़ने के लिए पूरी जगह मिल जाती है। अतएव हरएक पौधा खूब मोटा हो जाता है और अच्छी तरह से फलता-फूलता है।

इस किस्म की अरहर की फसल मामूली फसल से दूनी पैदावार देती है। २२-२३ मन प्रति एकड़ केवल अरहर की पैदावार हो जाती है और लगभग १५ मन प्रति एकड़ मूँग या मूँगफली की भी पैदावार हो जाती है। अरहर और उसके बीच में बोई हुई फसल दोनों की पैदावार मिलाकर लगभग ३०

अरहर की जलाने लायक मोटी खूँटियाँ

मन प्रति एकड़ तो अवश्य ही हो जाती है। ऐसी अरहर की मोटी लकड़ी जलाने के काम में भी आ सकती है और यदि मोटे-मोटे अरहर के पौधे ईंधन के काम में आयेंगे तो बहुत कुछ गोबर की खाद बच जायगी।

टाइप नं० १७ अरहर इस काम के लिए विशेष रूप से अच्छी साबित हुई है। ऊपर बताये हुये ढंग से खेती करने से बिना खाद व बिना सिंचाई के ३०-३२ मन अनाज प्रति एकड़ पैदा हो जाता है और अरहर की फसल तो देखने योग्य ही होती है।

मूँग, मूँगफली और अरहर तीनों फलीदार पौधे ऐसे हैं कि इनसे खेत की उर्वराशक्ति बढ़ती है और इसके बाद जो फसलें बोई जाती हैं, उनको विशेष लाभ होता है। ६-६ फीट अरहर की पंक्तियों के बीच में गन्ने की नालियाँ बनाकर गन्ना बोने से गन्ने की फसल बहुत अच्छी होती है।

अरहर की खेती का एक यह भी बहुत बड़ा लाभ है कि इसकी जड़ें जमीन में बहुत गहराई तक जाती हैं। वे इस प्रकार भी एक गहरी जोताई का काम करती हैं और खेतों की उर्वरा-शक्ति बढ़ाती हैं। अन्य फसलों की तुलना में सूखा इत्यादि का भी अरहर पर बहुत कम असर होता है और यह पैदावार अवश्य दे जाती है। कमजोर अरहर की फसलों पर पाले का असर होता है, परन्तु इन मोटे डंठलोंवाली मजबूत फसलों पर पाले का असर नहीं होता। यदि किसी साल पानी की बहुत कमी हो जाय तो मौका मिलने पर अरहर के खेत में पानी लगा देना चाहिए। जिस खेत में नमी काफी होती है उस खेत की अरहर की फसल पाले से नहीं मरती।

नये बाँधों, तालाबों और मेड़ों से जो मिट्टी निकलती है उसके ऊपर अरहर की फसल विशेष रूप से बहुत अच्छी होती है।

अरहर के फूलों में बहुधा शहद की मक्खियाँ बहुत लिपटी देखी गई हैं। जो लोग शहद के प्रेमी हैं और शहद की मक्खियाँ पालते हैं उनको अपने आसपास सुन्दर फूलवाले अरहर की खेती अवश्य करनी चाहिये।

उत्तर-प्रदेश के किसानों ने अरहर की फसल को इसलिये अपनाया है कि इसकी घनी फसल के नीचे कोई घास इत्यादि नहीं उगती। इसकी खेती में कोई विशेष सिंचाई, खाद इत्यादि का खर्चा नहीं है और यह गरीब किसानों को बड़ी सरलता से अन्न देनेवाली फसल है। वर्षा की कमी से जब धान इत्यादि फसलें सूख जाती हैं तब भी अरहर पूरी पैदावार देती है।

अरहर की फसल मार्च के अन्त में पक जाती है। इसको काटकर खलियान में सुखा लेते हैं फिर झाड़कर दाना निकाल लेते हैं।

कपास की खेती

कपास भारतवर्ष की पुरानी फसल है। उत्तर-प्रदेश में हर साल एक-

दो लाख एकड़ पश्चिमी जिलों में बोई जाती है। महँगाई से पहिले लगभग ८ लाख एकड़ कपास उत्तरप्रदेश में बोई जाती थी। गल्ले की महँगाई के बाद कपास की खेती में लाभ कम हो गया। इसकी खेती के लिये इस प्रान्त की भूमि अच्छी है किन्तु पूर्वी जिलों में फूल आने के समय पर अधिक वर्षा होने के कारण कुछ मुख्य कपास की जातियाँ नहीं फलतीं। इसीलिये कपास की खेती उत्तर-प्रदेश के उन्हीं हिस्सों में होती है जहाँ सितम्बर के महीने में अधिक वर्षा नहीं होती। अब कपास की कुछ जातियाँ ऐसी मिल गई हैं जो तराई में भी अच्छी चल रही हैं। एल. एस. एस. काशीपुर से खीरी की तराई व बलरामपुर जिला गोंडा तक बहुत अच्छी पैदा हुई हैं। यह जातियाँ और उन्नत नरमा की जातियाँ पूर्वी जिलों में भी अच्छी चल रही हैं। विवेकानन्द लेबोरेट्री में अलमोड़ा के पहाड़ी जिले के लिये भी उन्नत प्रकार की कपास निकल आई है। अब उत्तर-प्रदेश का कोई भाग ऐसा नहीं है जहाँ उत्तम कपास पैदा न किया जा सके।

कपास की मुख्य तीन जातियाँ हैं—देशी, अमेरिकन, सफ़ेद फूलवाली। इन तीनों की खेती लगभग एक समान होती है परन्तु मूल्य और उपज में अमरीकन और सफेद फूलवाली कपास बढ़ जाती हैं। इनका रेशा अच्छा होता है और रुई का परता भी ज्यादा निकलता है।

कपास के लिये दुमट और वह खेत अच्छे होते हैं जहाँ पानी न ठहरता हो क्योंकि पानी ठहरना कपास के लिये अधिक हानिकारक होता है। इस फसल के लिये थोड़ी खाद की आवश्यकता होती है। यदि इसको रबी की ऐसी फसल के बाद, जिसमें खूब खाद पड़ा हो, बोया जावे तो अधिक पैदावार होती है। रबी की फसल काटने के बाद ही इसके लिये खेत तैयार करना आरम्भ कर दिया जाता है और अच्छी जुताई करके खेत को छोड़ देते हैं। १५ मई के करीब खेत को पलेवा करके और दो बार जोतकर ठीक कर लेते हैं और बिनौले (बीज) को गोबर और सूखी मिट्टी में मलकर और उसके रेशे निकालकर सुखाते हैं ताकि बोने के लिये इसमें रुई का रेशा लगा न रहे। यदि बीज के रेशे को इस प्रकार ठीक नहीं करते हैं तो बोते समय कहीं पर अधिक और कहीं पर कम बीज पड़ता है। बीज बराबर बोने के लिये बिनौले को बिला रुई के रेशे के कर देना आवश्यक है। फिर खेत में एक आदमी हल चलाता है दूसरा कूँड़ में बिनौला बोता है। जब बोवाई समाप्त हो तब उस पर पाटा फेरना चाहिये ताकि नमी कम न होने पावे। इसका बीज ६ सेर से ८ सेर तक प्रति एकड़ बोना चाहिये। इस फसल के साथ मिलाकर कहीं-कहीं पर उरद, मूँग इत्यादि बोते हैं और इसके चारों ओर सन अथवा अरंड बोते हैं। किन्तु अरंड बोने से जमीन कमजोर हो जाती है और कपास की फसल भी हल्की पड़ जाती है। मूँगफली के खेतों में यदि कपास

की पंक्तियाँ १२ फुट के अन्तर से बो दी जायँ तो दोनों फसलें अच्छी पैदा होती हैं और पैदावार अकेली फसल से बढ़ जाती है। मूँगफली के साथ जैसी अरहर बढ़ती है कुछ-कुछ वैसी ही कपास बढ़ती है।

कपास का पौधा जब क़रीब २५ दिन का हो जावे तब इसकी निकाई करना चाहिये। यदि खेत में कोई घास हो जावे तो वह पौधे को नहीं बढ़ने देती है। इसमें कुल ३, ४ निकाई काफी होती हैं। निकाई के बाद गोड़ाई करना बहुत लाभदायक होता है।

यदि कपास दो-दो फुट की दूरी पर पंक्तियों में बोई जाय तो सरलता से निकाई-गोड़ाई दोनों बैलवाले कल्टीवेटर या अकोला हो से की जा सकती है।

इसके बोने के कुछ दिनों बाद ही वर्षा आरम्भ हो जाती है इसलिये इसमें पानी केवल एक या दो बार ही लगाना पड़ता है। यदि क्वार के महीने में सूखा पड़ जावे यानी वर्षा न हो तो एक पानी देने की आवश्यकता होती है। वर्षा ऋतु में यदि हवा तेज़ चल जावे तो कपास की फसल को बहुत हानि होती है और फूल और छोटे-छोटे फल टूटकर गिर जाते हैं।

१५ सितम्बर के करीब से इसका फूल खिलने लगता है और अक्टूबर में कपास की चुनाई आरम्भ हो जाती है। इसको चुनने के बाद खूब सुखाकर रखना चाहिये। यदि इसमें नमी रह जाती है तो कुछ दिनों के बाद कपास में कुछ कालापन आ जाता है और इसका मूल्य बाज़ारभाव से गिर जाता है। इसकी पैदावार लगभग आठ से बारह मन प्रति एकड़ तक हो जाती है। जब कपास चुनने लायक हो जावे तब इसकी रखवाली करना आवश्यक है।

कपास की प्रचलित उन्नतशील जातियों में मुख्य सफेद फूलवाली सी. ५२० और ३५।१ हैं। ३५।१ की रुई चर्खे के लिये बहुत अच्छी होती है। सी. ५२० की भी पैदावार देसी से अधिक होती है और रुई भी अच्छी होती है। नई जातियों में २१६–एफ (अमेरिकन) पश्चिम के जिलों में बड़ी तेज़ी से फैल रही है। इसका रेशा कपड़े के मिलों में बहुत अच्छा माना गया है और इसके बारीक सूत व कपड़े बन सकते हैं। तराई में जहाँ अधिक वर्षा होती है एल. एस. एस. की पैदावार बड़ी प्रशंसनीय हुई है। यह काशीपुर नैनीताल से लेकर बलरामपुर गोंडा व बस्ती तक उत्तर-प्रदेश की सारी तराई में अच्छी पैदावार देती है। कुछ नरमा की जातियाँ भी ऐसी निकल आई हैं कि बिना सिंचाई के ही पैदा होती हैं और एक साल बोने से कई साल तक फसल देती रहती हैं। इनकी कपास भी बहुत अच्छे किस्म की है। पहाड़ पर सी. आई. लैन्ड की जातियाँ अल्मोड़ा तक में सफल हो चुकी हैं। उत्तर-प्रदेश का कोई जिला ऐसा नहीं है जहाँ किसी न किसी जाति की कपास पैदा न हो जाये। यहाँ के किसानों को चाहिये कि थोड़ी-बहुत कपास खेतों में और नरमा कपास

गाँवों के पासवाली बेकार जमीनों में बोते रहें तो चर्खा के लिये व रजाई गद्दों के लिये व रुईदार कपड़े बनवाने के लिये हर गाँव में रुई पैदा हो सकती है।

ज्वार

ज्वार के लिये दोमट और बलुई भूमि अच्छी होती है।

इस फसल के वास्ते अकसर खाद की आवश्यकता नहीं होती। जब चारे के वास्ते बोते हैं तो दो सौ मन प्रति एकड़ तक गोबर की पाँस डाल दी जाती है। बरसीम या चने के बाद ज्वार की फसल अच्छी होती है।

इसके बोने के पहिले तीन, चार जुताइयाँ करनी चाहिये।

इसे अकेला कम बोते हैं, बहुधा इसके साथ अरहर, मूँग, उरद, लोबिया और गुआर मिलाकर बोते हैं। चारा के वास्ते इसको बहुत जल्दी बो देते हैं। यदि सिंचाई के साधन हैं तो चारा की बोवाई मई के महीने में शुरू कर देते हैं। दाना के वास्ते आखीर जून में बोते हैं। दाना के वास्ते छिटकवाँ या हल के पीछे बोई जाती है और छः से आठ सेर बीज प्रति एकड़ के हिसाब से डाला जाता है। चारे के वास्ते लगभग १५-२० सेर बीज प्रति एकड़ काफी होता है। ग्वार मिलाकर बोने से इसका चारा बहुत अच्छा होता है। इसमें बहुधा उरद, लोबिया आदि मिलाकर बोते हैं।

जल्दी बोई हुई फसल में एक-दो सिंचाई की आवश्यकता होती है।

बीज की फसल में एक-दो बार निकाई करने की आवश्यकता होती है। निकाई के बाद बैलों द्वारा देशी हल या कल्टीवेटर से गोड़ाई कर देने से पौधों की बाढ़ पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। अच्छी फसल लेने के लिये यदि दो-दो फुट पर पंक्तियों में ज्वार व अरहर बो दें व बैलवाले कल्टीवेटर से गुड़ाई कर दें तो २० से २५ मन प्रति एकड़ ज्वार व अरहर की पैदावार हो जाती है।

दाना पड़ जाने पर इसकी फसल की चिड़ियों आदि से लगभग एक महीना तक रखवाली करनी पड़ती है।

हरे चारे के वास्ते अगस्त के अन्त तक फसल तैयार हो जाती है और इसकी पैदावार लगभग चार-पाँच सौ मन प्रति एकड़ हो जाती है। चरी के खेत में रबी की फसल आसानी से बोई जा सकती है। यदि दाना के वास्ते बोई गई हो और उसमें अरहर का मेल न हो तो उस खेत में मटर बोई जा सकती है।

दाना की फसल अक्टूबर के अन्त तक तैयार हो जाती है। इसके भुट्टे काटकर बैलों से दाँय चलाकर दाना निकाल लेते हैं और करबी बाद में काट ली जाती है। अकेली बोई हुई फसल में दाना की पैदावार लगभग पन्द्रह मन प्रति एकड़ हो जाती है, और सूखी करबी लगभग सौ मन प्रति एकड़ होती है।

बाजरा

यह अधिकतर हल्की भूड़ जमीन पर बोया जाता है। दोमट में भी इसकी पैदावार अच्छी हो जाती है।

इसकी फसल के वास्ते दो, तीन जुताइयाँ काफी होती हैं।

इसकी फ़सल खरीफ में सबसे पीछे यानी पुष्य नक्षत्र में २० जुलाई के बाद बोते हैं।

इसके बीज को खेत में छिटककर देसी हल से जोतकर पाटा दे दिया जाता है। बीज तीन सेर प्रति एकड़ पड़ता है। ज्वार की तरह इसमें दाल इत्यादि मिलाकर बो देते हैं। इसका चारा अच्छा नहीं होता। लेकिन यदि ज्वार के चारे की कमी हो तो इसको बो कर जल्द चारा मिल सकता है।

निकाई की आवश्यकता नहीं होती, जब पौधे दो या ढाई फीट के हो जावें तो देसी हल से इसकी दूर-दूर जोताई करनी चाहिए।

इसकी फसल अक्तूबर में पककर तैयार हो जाती है और इसकी बालियाँ काटकर दाँय चलाकर दाना अलग कर लिया जाता है।

अकेली बोई हुई फसल में इसकी पैदावार लगभग बारह मन प्रति एकड़ हो जाती है।

मटर

मटर भारतवर्ष की पुरानी फसल है। यह रबी की फसलों में जल्द तैयार होनेवाली है। इसकी बुवाई बहुत बड़े रकबे में होती है और सब प्रान्तों में इसकी फसल अच्छी होती है। चना की तरह से इसका भी प्रयोग कई प्रकार से किया जाता है। उगते ही इसका प्रयोग आरम्भ हो जाता है। कुछ लोग इसमें नमक मिलाकर कच्चा खाते हैं। फली लगने पर लोग इसको कच्चा और तरकारी बनाकर खाते हैं। पक जाने पर इसकी दाल खाई जाती और जानवरों को दाना भी दिया जाता है।

मटर की जातियाँ—छोटी देशी मटर, सुल्तानपुर मटर, देशी सफेद मटर, बुढ़िया, सफेद बड़ी मटर, लाँग मैरो फैट इत्यादि हैं। छोटी देशी मटर का रंग हरा और कुछ सुर्खी लिये होता है। इसकी बुवाई जौ के साथ की जाती है। सफेद देशी मटर का दूसरा नाम काबुली मटर भी है। इसको लोग तरकारी के लिये अकेला बोते हैं।। इसकी एक किस्म केसारी है जिसकी पैदावार धान के खेतों में अच्छी होती है। इसका रंग कुछ काला होता है। सफेद बड़ी मटर की बुवाई अक्सर फुलवारियों में होती है। एक नई मटर है जो ६०-६५ दिन में पक जाती हैं। इसका बीज बढ़ाया जा रहा है। सफेद मटर १६३ नम्बर-वाली सबसे अधिक पैदावार देती है और खाने में भी बहुत स्वादिष्ट है।

यह हर किस्म की जमीन में पैदा हो सकती है लेकिन दोमट में इसकी पैदावार अच्छी होती है। अधिक पानी मटर को हानि पहुँचाता है इससे इसको बहुत नीची जमीन में न बोना चाहिये। इसकी बुआई धान, ज्वार, कपास के बाद होती है। कमजोर जमीन में इसे अकेला ही बोना चाहिये।

यह फलीदार पौधा है इससे इसके बोने से खेत की उर्वराशक्ति बढ़ जाती है। इस फसल को खाद देने की आवश्यकता नहीं है।

इसकी बुवाई धान या ज्वार कट जाने पर होती है इससे इसको चार या पाँच जुताइयाँ काफी होती है।

इसका बीज हल के पीछे कूँड़ में या छिटकवाँ बोया जाता है। इसको जौ के साथ मिलाकर १५ सेर प्रति एकड़ और अकेला ५० सेर प्रति एकड़ बोना चाहिये। इसकी बुवाई अक्तूबर के अन्त से आधे दिसम्बर तक की जाती है।

यदि जनवरी के माह में कोई वर्षा न हुई तो एक सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। जो फसल तरकारी के लिये बोई जाती है उसे दो या तीन सिंचाई की आवश्यकता होती है।

इसकी फसल मार्च में पक कर तैयार हो जाती है। इसको हाथ से या हँसिया से काटकर बैलों की दाँय चलाकर दाना निकाल लेते हैं। इसकी कटाई बहुत सुबह करनी चाहिए ताकि धूप में दाने का नुकसान न हो और काटकर ही खलियान में पहुँचा देना चाहिये। इसकी पैदावार १२ मन से १५ मन प्रति एकड़ तक होती है और चार-छः मन भूसा भी निकल आता है।

तिल

इसे तिल या तिल्ली कहते हैं। तेल देनेवाली फसलों में यह एक अच्छी फसल है। इसका तेल खाने के काम में आता है और खली जानवरों को खिलाई जाती है।

इसकी तीन जातियाँ होती हैं—१—काला, २—सफेद और ३—लाल। हमारे सूबे में अधिकतर काला और सफेद तिल बोते हैं। लाल तिल की बुवाई हमारे यहाँ नहीं होती परन्तु दक्षिणी प्रान्तों में बहुत होती है। काला और सफेद दोनों तिलों में तेल और खली की औसत अच्छी पड़ती है। सफेद तिल की फसल जल्द तैयार हो जाती है।

इसको हमेशा ऐसी जमीन में बोना चाहिये जहाँ पानी न ठहरता हो क्योंकि इसे अधिक पानी की आवश्यकता नहीं है। इस फसल को अकेले बोने के लिये केवल ३ या ४ जुताइयाँ काफी हैं।

तिल की बुवाई जून के अन्त तक कर देनी चाहिये। बुवाई के लिये दो सेर बीज प्रति एकड़ काफी होता है। मिलाकर बोने के लिये आध सेर प्रति

एकड़ से अधिक न बोना चाहिये जिसकी बुवाई जुलाई में फसल के साथ होती है। यह छिटकवाँ और कूँड़ दोनों तरह से बोया जाता है।

इसे सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यह वर्षा ऋतु की फसल है।

यदि खेत में घास अधिक हो जावे तो उसे निकाल डालना चाहिये। तिल पक जाने पर इसकी फलियों पर काले-काले धब्बे पड़ जाते हैं और फलियाँ फूटने लगती हैं। इस समय इसको काट लेना चाहिये। काटते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि इसके बोझ किसी टाट पर बाँधे जायँ ताकि फूटी हुई फलियों के दाने ज़मीन पर गिरने न पावें। बोझ को बाँधकर खलियान में सूखने के लिये खड़ा कर देना चाहिये। चार-पाँच दिन सूखने के बाद डंडों से पीटकर दाना निकाल लेना चाहिये।

इसकी पैदावार करीब ७ मन प्रति एकड़ तक होती है। इसकी खली में करीब ३.८९ प्रतिशत नाइट्रोजन होता है।

मूंग नम्बर एक

यहाँ के किसानों को यह भली भाँति मालूम है कि धान के बाद चना, मटर या सनई के बाद गेहूँ बोने से और इसी प्रकार के अन्य हेरफेर से सभी फसलों को लाभ होता है। मूँगफली के बाद जब गन्ना बोया जाता है तो गन्ने की फसल अच्छी होती है। सारांश यह कि एक दालवाली फसल के बाद दूसरी फसल की पैदावार अच्छी होती है।

इस सूबे में बड़ी पुरानी प्रथा चली आती है कि जिस खेत में गेहूँ बोना होता है उसमें बरसात में केवल जुताई होती है और कोई फसल नहीं ली जाती। ऐसे खेतों को चौमस या पलिहर कहते हैं। कृषि-विभाग बहुत दिनों से एक ऐसी दाल की फसल की खोज कर रहा था, जो गेहूँ के पहले बरसात में जल्दी तैयार हो जाय और इतनी जल्दी पक जाय कि पूर्वा नक्षत्र में या उससे पहिले-पहिले (१० सितम्बर से पहिले) खेत खाली हो जाय जिससे गेहूँ बोने के लिये खेत की तैयारी का पूरा समय मिल जाय।

सौभाग्य से कृषि-विभाग ने एक बहुत जल्दी तैयार होनेवाली जाति की मूँग नम्बर-१ खोज निकाली है, जो बोने के बाद ६५ या ७० दिन के अन्दर तैयार हो जाती है। इसकी पैदावार भी औसतन ७—८ मन प्रति एकड़ हो जाती है और किसी-किसी खेत में जहाँ इसकी अच्छी निकाई, गुड़ाई, बरसात के आरम्भ में की गई थी उन खेतों में ११ से १३ मन फी एकड़ की पैदावार हुई।

बरसात शुरू होते ही खेत तैयार करके इसको सीधी पंक्तियों में जिनके बीच की दूरी १५ इंच होती है, बोई जाती है। इन पंक्तियों में इस मूँग का बीज ६-६ इंच की दूरी पर बोया जाता है। इस तरह से बोवाई करने में एक एकड़ में करीब १½ सेर बीज पड़ता है, जैसा कि आगे के चित्र में दिया हुआ है।
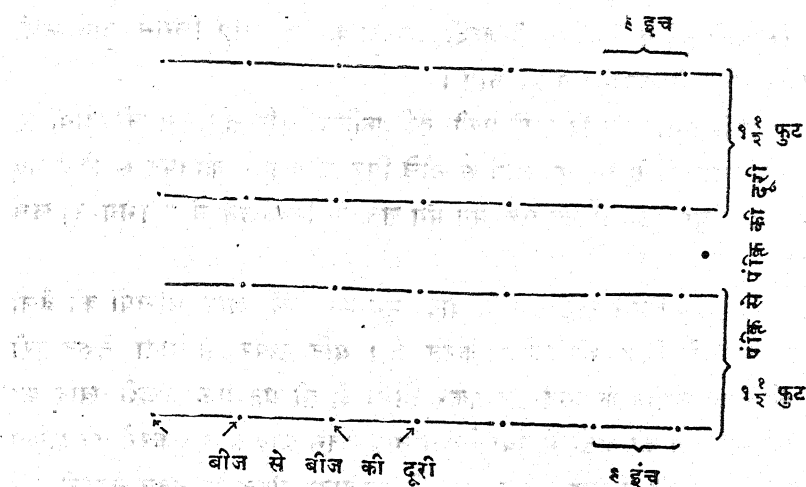
(पृष्ठ १८८ देखिये)

ऊँचे खेत जिनमें बरसाती पानी न जमा होता हो वह इस फसल के लिये बहुत अच्छे साबित होते हैं। जिन खेतों में पानी जमा हो जाता है, उन खेतों में मूँग की फसल अच्छी नहीं होती। फसल उगने के ८-१० दिन बाद इसमें निकाई और एक गुड़ाई कर देना चाहिये जिससे मिट्टी भुरभुरी हो जाय और खर-पतवार सब मर जाय। ऐसा न करने से घास-फूस मूँग की फसल को दबा लेती है और इसकी पैदावार बहुत कम हो जाती है। पंक्तियों के बीच में गुड़ाई का काम "हैन्ड हो" से करना चाहिये, इससे गुड़ाई का काम बहुत जल्दी खतम हो जाता है। किसी-किसी फार्म पर, जहाँ मूँग अधिक बोया जाता है, वहाँ पंक्तियों के बीच का फासिला २-२ फुट कर दिया जाता है और बैल से चलाने वाले कल्टीवेटर से गुड़ाई कर दी जाती है, इससे लगभग २ एकड़ मूँग की गुड़ाई एक जोड़ी बैल से एक दिन में हो जाती है। "हैन्डहो" से गुड़ाई करने में ३ आदमी लगभग एक एकड़ की गुड़ाई रोज कर लेते हैं।

बोने के ५ सप्ताह बाद मूँग में फूल लगने शुरू हो जाते हैं और ७ सप्ताह बाद फलियाँ पकना आरम्भ हो जाती हैं। फलियाँ पौधे के ऊपर गुच्छों में लगती हैं लेकिन सब एक साथ नहीं पकतीं, पकने पर फलियों का रंग एकदम काला हो जाता है। इस फसल में एक साथ सारी पकी हुई फलियाँ नहीं तोड़ी जा सकतीं, इसको तोड़ने का सबसे अच्छा ढंग यह है कि पाँचवें या छठे रोज खेत की सारी पकी हुई काली फलियाँ तोड़कर इकट्ठा कर लेना चाहिये और उसको सुखाकर दाने निकाल लेना चाहिये। इसकी सारी फलियाँ २-३ व ४ बार में कपास की तरह चुन ली जाती हैं और उनका दाना निकाल कर इकट्ठा कर लिया जाता है, बरसात के दिनों में यदि २ व ३ रोज बराबर दिन-रात वर्षा होती रहे तो इसके दाने पकी हुई फलियों के अन्दर ही उग आते हैं, ऐसे समय में यह अच्छा

होगा कि पकी हुई फलियाँ जल्दी-जल्दी इकट्ठा कर ली जायें जिससे दाने फली के अन्दर उगने से ख़राब न हो जायें।

कभी-कभी कई दिन की पकी हुई फलियाँ यदि तोड़ न ली जायें, तो उनके दाने फलियों के चिटक जाने से नीचे गिर जाते हैं। कानपुर में किये गए प्रयोगों से मालूम हुआ है कि एक मन मूँग खेत से निकालने में लगभग ३) खर्च होता है।

सारी फलियाँ तोड़ लेने के बाद मूँग की डालें और पत्तियों को बैलों के हरे चारे के लिये भी प्रयोग करते हैं। यदि ऊपर से पाटा देकर हरी खाद की तरह जमीन के अन्दर जोतकर मिला दें, तो यह एक अच्छी खाद का काम करेगी। मूँग की जड़ों में हवा से भी नाइट्रोजन खाद इकट्ठा करने की शक्ति बहुत होती है इसीलिये यह फसल खेत की उपजाऊ शक्ति को बहुत बढ़ाती है।

अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि जिन खेतों में फलियाँ तोड़ने के पश्चात् हरे पत्ते व हरी डालें भूमि के नीचे जोतकर मिला दी गईं उनकी गेहूँ की पैदावार चौमास से लगभग ४ मन प्रति एकड़ अधिक हुई। मूँग व गेहूँ दोनों मिलाकर लगभग १० मन प्रति एकड़ पैदावार बढ़ जाती है। मूँग की पैदावार किसान को उन्हीं खेतों से, जिनसे कि बरसात में अभी तक कुछ नहीं पैदा करते थे, अधिक मिल जायगी। इस प्रकार चौमास में मूँग बोने से दस मन प्रति एकड़ पैदावार बढ़ जाती है।

मूँग नं० १ में एक और अच्छी बात यह है कि जहाँ सिंचाई के साधन हैं वहाँ इसकी एक फसल मार्च के अन्त या अप्रैल के आरम्भ में बोकर ९-१० सप्ताह के अन्दर बरसात से पहले तैयार की जा सकती है। गर्मी के दिनों में सिंचाई पाने पर मूँग का पौधा अधिक नहीं बढ़ता, इसलिये गर्मी की फसल बोते समय पंक्ति से पंक्ति की दूरी १½ फुट के बजाय १ फुट कर देना चाहिये और पंक्तियों में दाना ९-९ इंच के बजाय ६-६ इंच पर बोना चाहिये।

इसका बीज इस प्रकार बढ़ाया जा सकता है इसलिये यह अच्छा होगा कि जहाँ-जहाँ सिंचाई के साधन हैं, ऊपर लिखे अनुसार इसकी एक फसल गर्मी में ही तैयार कर ली जाय जिससे बरसात में बोने के लिये हर जगह बीज पैदा हो जाय। यदि किसान केवल ३ या ४ सेर बीज सिंचाई करके मार्च के महीने में बो देते हैं तो बरसात आरम्भ होने के पहले ही उनके पास ५ या ६ मन बीज तैयार हो जायगा जो लगभग १०० या १५० एकड़ बोने के लिये काफी होगा। इससे थोड़े से बीज से ही सारे गाँव के चौमास बोने के लिये बीज तैयार किया जा सकता है। मूँग नं० १ की आखिरी फसल भी अगस्त के महीने में बोकर अक्तूबर में तैयार की जा सकती है। २० अगस्त के बाद की बोई हुई फसल अच्छी नहीं होती।

यह प्रत्यक्ष है कि मूँग नं० १ की तीन फसलें एक ही खेत में ऊपर

मूँग नं० १ के फलियों से लदे हुए पौधे
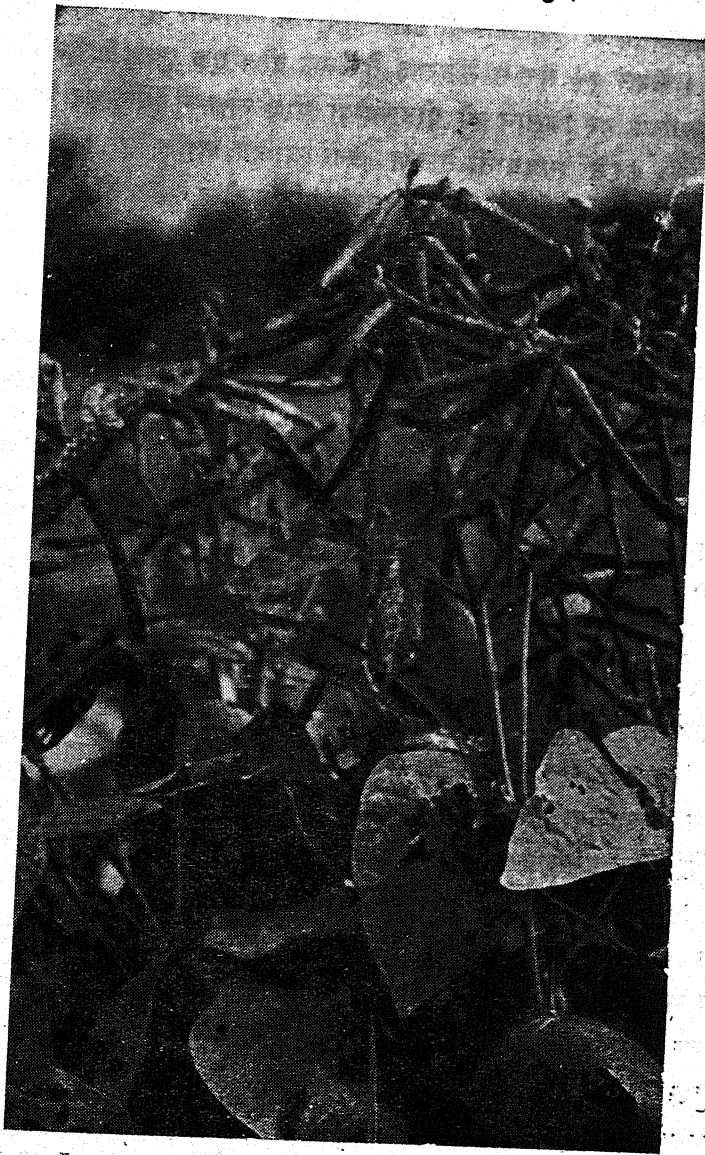
बताये ढंग से मार्च और अक्तूबर के बीच में तैयार की जा सकती हैं और बीज की सारी कमी एक या दो साल के अन्दर पूरी की जा सकती हैं। एक मन बीज से एक साल के अन्दर तीनों फसलों से ५०० या १००० मन बीज तैयार कर लेना कोई कठिन बात नहीं है।

उत्तर-प्रदेश में लगभग एक करोड़ एकड़ भूमि बरसात में केवल जुताई के लिये खाली रहती है, जहाँ कहीं सम्भव हो इसमें से यदि आधी जमीनों से भी रबी की फसल के पहिले मूँग की फसल ले लें, तो ३ या ४ करोड़ मन केवल उत्तर-प्रदेश की पैदावार साल या दो साल के अन्दर बढ़ सकती है।

इसका बीज खूब सुखाकर राख में २, ४ बूँद मिट्टी का तेल मिलाकर किसान को रखना चाहिये, नहीं तो इसमें घुन लग जायगा और बीज खराब हो जायगा। केवल १½ सेर से लेकर ३ सेर तक बीज एक एकड़ के लिये काफी होता है, इसलिये हर किसान को थोड़ा-थोड़ा बीज राख में मिलाकर मिट्टी के बर्तनों में बन्द करके सावधानी से रख लेना चाहिये, ताकि उनको बीज की तलाश में कहीं बाहर न जाना पड़े। जिनको अधिक बीज रखना हो वे गेमेक्सीन मिलाकर बोरों में रख दें।

लोबिया नं० १

जल्दी पकनेवाले दालदार फसलों की खोज में एक ऐसी लोबिया भी लेखक को एक पाव मिल गई जो बोने की तिथि से पैंतालिस दिन बाद खाने लायक हरी फलियाँ व दाने दे देती है, ५५ दिन बाद पक्के दाने निकलने लगते हैं। यह सफेद रंग की बड़े दानोंवाली लोबिया है और इसकी भी मूँग की तरह मार्च और नवम्बर के बीच में तीन फसलें ली जा सकती हैं। पहिली फसल जो २० मार्च को या उस तिथि के लगभग बोई जाती है, मई के अन्त में या जून के आरम्भ होते ही पककर तैयार हो जाती है। दूसरी फसल जून में बोकर अगस्त में तैयार की जा सकती है। तीसरी फसल अगस्त के अन्त में या सितम्बर के आरम्भ में बोई जाती है और नवम्बर के आरम्भ में पककर कट जाती है। इसी प्रकार बार-बार तीन फसलें लेने से १ पाव बीज १९५२ में बढ़ाकर लगभग २५ मन कर लिया गया है जो लगभग ४००० गुना हुआ। इतने अधिक बीज की वृद्धि केवल इसलिये सम्भव है कि जल्दी-जल्दी पकने के कारण मार्च और नवम्बर के बीच में तीन फसलें ली गईं। इस फसल से भी खेत की उर्वराशक्ति उतनी ही बढ़ती है जितनी मूँग नम्बर १ से और इसका दाना उससे भी महँगा और उत्तम प्रकार का भोजन है। अधिक बीज बढ़ाकर लोबिया नम्बर एक की फसल हरी खाद के लिये भूमि में जोतने से सब हरी खादों के ही समान या कुछ अधिक ही खेत की उर्वराशक्ति बढ़ती है। इसका बीज थोड़ा-थोड़ा उत्तर-प्रदेश के हर जिले में है। लोबिया नं० १ का पौधा मूँग नम्बर १ से बहुत बड़ा होता है। इसे बोते समय मार्च के महीने में पंक्ति से पंक्ति की दूरी डेढ़ फुट और दाने से दाने की दूरी ९ इंच रखना चाहिये। वर्षा ऋतु में जून की व अगस्त के अन्तवाली बोवाई के समय पंक्ति से पंक्ति की दूरी ढाई फुट और दाने से दाने की दूरी १५ इंच रखनी चाहिये। लोबिया उगने के बाद एक सप्ताह या दस दिन के अन्दर ही दो निराई व गोड़ाई कर देना चाहिये। पहिले १५ दिन तक यदि पंक्तियों के बीच की मिट्टी भुरभुरी रहे और कोई घास खेत में न उगने पाये तो लोबिया खूब फलती-फूलती है। यदि आरम्भ में अच्छी निराई-गोड़ाई न हो तो लोबिया का बढ़ाव व फूलना-फलना

अच्छा नहीं होता । अच्छी लोबिया नं० १ की फसल लगभग १५ से २० मन प्रति एकड़ सूखा दाना देती है जो बाजार में आजकल ३० रु० प्रति मन तक बिक जाती है । इससे सावन-भादों के महीने में भोजन की पूर्ति बड़ी अच्छी तरह से की जा सकती है और इसको मूँग नं० १ की तरह पलिहर या चौमासे में बोकर पूर्वा नक्षत्र से पहिले पैदा किया जा सकता है और खेत की उर्वरा-शक्ति भी बहुत बढ़ाई जा सकती है ।

अध्याय १२

फसलों की बीमारियाँ और उनका रोक थाम ।

सभी किसान इस बात से परिचित हैं कि फसलों में तरह तरह की बीमारियाँ लगती हैं जिनके कारण उन्हें प्रायः बहुत हानि उठानी पड़ती हैं। यह बीमारियाँ कई कारणों से लगती हैं। कुछ कीड़े मकोड़े पौधों के पत्ते तनों फूल और फलों में लगकर उन्हें हानि पहुँचाते हैं, कुछ फंगस या फफूंद की बीमारियाँ हैं, कुछ कीटाणुओं की बीमारियाँ हैं। कुछ पौधे ऐसे हैं जो फसलों का शोषण कर के उन्हें हानि पहुँचाते हैं, और कुछ ऐसी बीमारियाँ हैं जो भूमि में किसी पोषक तत्व की कमी के कारण पैदा होती हैं। इन सबका वर्णन इस पुस्तक में करना कठिन है क्यों कि यह विषय बहुत ही विस्तृत है। विशेष जानकारी के लिये पाठकों को इस विषय पर विशेषज्ञों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। यहाँ हम केवल उत्तर-प्रदेश की मुख्य-मुख्य फसलों की मुख्य-मुख्य बीमारियों का ही वर्णन करेंगे।

फसलों की बीमारियों के लिये भी मनुष्य की बीमारियों की भाँति यह कहावत पूर्णतया सत्य है कि; रोगों से बचना रोगों की दवा करने से सहज है। बीमारी लगजाने पर फसल को बचाना कठिन है परन्तु अच्छी खेती करके किसान बहुत सी बीमारियों से बच सकता है। फस्लों की बीमारियों के रोक-थाम के लिये कई प्रकार के उपाय हैं परन्तु मोटे तौर पर वह दो प्रकार में बाँटे जा सकते हैं।

नं० १ कृषि की कार्य-विधि में परिवर्तन करके।

नं० २ हानि पहुँचाने वाले कीड़े-मकोड़ों को नष्ट करके।

यद्यपि आधुनिक युग में फस्लों को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़ों मकोड़ों को नष्ट करने के लिये बहुत ही सफल दवाइयों तथा यंत्रों का आविष्कार हो चुका है परन्तु फिर भी भारतीय किसानों की दशा को देखते हुये कृषि की कार्य्य-विधि में परिवर्तन द्वारा ही मुख्यतः फस्लों की सुरक्षा की आशा की जा सकती है। यह उपाय बहुत ही सरल होते हैं और किसान बिना किसी दवा या यंत्र की सहायता के इनका प्रयोग कर सकते हैं, अतः इस पुस्तक में विशेष रूप से उन्हीं उपायों पर जोर दिया गया है।

फसलों को बीमारियों से बचाने में फसलों के हेरफेर का कम महत्व

पूर्ण स्थान नहीं है। किसानों को यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये कि बार-बार एक फस्ल को एक ही खेत में बोना फस्लों के स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत ही हानिकर है। जो लोग यह समझते हैं कि अच्छे खाद पानी जोताई और गोड़ाई के बल पर फस्लों के हेरफेर के सिद्धांत को भुलाया जा सकता है उनको अवश्य ही धोखा होगा। यदि एक ही खेत में बार २ गेहूँ बोया जाय तो न केवल भूमि में उन पोषक तत्त्वों की कमी हो जायगी जिनकी गेहूँ को आवश्यकता है बल्कि गेहूँ को नुकसान पहुँचाने वाली बीमारियों तथा घासों की वृद्धि के कारण गेहूँ की पैदावार बहुत ही घट जायगी। यह बात अन्य फस्लों पर भी लागू है। इस संबंध में एक कहावत भी है;

बाड़ी में बाड़ी करै, करै ईख में ईख।
वे घर यों ही जायँगे, सुने पराई सीख ॥

अर्थात् जो किसान कपास के बाद कपास और ईख के बाद ईख उसी खेत में बोता है वह उसी तरह से बरबाद हो जाता है जैसे दूसरों की सलाह मानने वाला व्यक्ति। यह कहावत बिल्कुल ही सच है। फस्लों के स्वास्थ्य के लिये यह आवश्यक है कि इन्हें हेरफेर कर खेतों में बोया जाय।

बीमारियों की रोक-थाम में गर्मियों की जोताई भी बहुत हद तक सहायक हो सकती है। गर्मियों में खेत जोत देने से नमी की कमी और कड़ी गर्मी के कारण कीड़े मकोड़े, उनके अन्डे बच्चे तथा बीमारियों के अन्य कारण बहुत हद तक नष्ट हो जाते हैं। इस लिये जिन खेतों में कोई फस्ल न लेनी हो उन्हें गर्मियों में जोत देना लाभकर होगा।

बहुत सी बीमारियाँ बीजों द्वारा बढ़ती हैं इस लिये किसान का सदैव यही प्रयत्न होना चाहिये कि वह अच्छे से अच्छा स्वस्थ बीज बोवे। बीज के विषय में लापरवाही करने तथा मितव्ययता बरतने से किसान को बहुत बड़ा नुकसान हो सकता है क्योंकि कुल खर्चा बराबर होते हुये भी यदि बीज घटिया या अस्वस्थ है तो पैदावार में बहुत बड़ी कमी हो सकती है। कृषि-विभाग द्वारा फस्लों की कुछ ऐसी जातियों का आविष्कार हुआ करता है जिनमें दूसरी जातियों की अपेक्षा बीमारियों का असर कम होता है। किसानों को कृषि-विभाग के अधिकारियों से परामर्श करके ऐसी जातियों को अधिकाधिक बोना चाहिये।

फस्लों को हानि पहुँचाने वाले कीड़े-मकोड़ों का अधिकांश जन्म अन्डों से होता है। कुछ थोड़े से ही कीड़े ऐसे हैं जैसे कि सरसों आदि में लगने वाला माहूँ जिनके बच्चे ही पैदा होते हैं। अन्डों से पैदा होने वाले कीड़ों की वृद्धि भी दो प्रकार से होती है। कुछ कीड़ों के अन्डे फूटने पर उन्हीं कीड़ों के आकार-प्रकार के किन्तु छोटे कीड़े पैदा होते हैं। कभी-कभी केवल रंग मात्र में परिवर्तन होता है या पंखहीन होते हैं परन्तु आकार में कोई अन्तर नहीं होता है।

ऐसे छोटे कीड़ों के बच्चों को 'निम्फ़' कहते हैं। टिड्डियाँ, बोंके और पाइरिल्ला इसी प्रकार के होते हैं। दूसरे प्रकार के कीड़ों के अन्डों के फूटने पर एक प्रकार की सूँड़ी का जन्म होता है जो पूरा बढ़ जाने के बाद कुछ समय विश्राम की अवस्था (प्युपा) में बिताकर तितली या पतंगे के रूप में उत्पन्न होता है। साधारणतया अन्डे तथा प्युपा फस्लों के लिये स्वयं हानिकर नहीं होते किन्तु निम्फ़ उसी तरह से हानि पहुँचाते हैं जैसे कि उस जाति के पूर्ण वयस्क कीड़े। दो एक किस्म की तितलियों को छोड़ कर बाकी तितलियाँ भी फस्लों को हानि नहीं पहुँचातीं परन्तु उनके अन्डों से पैदा हुई सूड़ियाँ फस्लों को अधिक हानि पहुँचाती हैं।

फसलों की बहुत सी बीमारियाँ फफून्दे या फ़ंगस द्वारा पैदा होती हैं। फ़ंगस बहुत ही बारीक छोटे या केवल खुर्दबीन से दिखलाई देने योग्य ऐसे छोटे पौधे हैं जिनमें क्लोरोफिल या पत्तों का हरा रंग नहीं होता। ऐसे सूक्ष्म पौधे अपना भोजन दूसरे बड़े पौधों या जानवरों का शोषण करके ही प्राप्त कर सकते हैं। फंगस की वृद्धि स्पोर द्वारा होती है। स्पोर एक या एक से अधिक सेल का बहुत ही सरल बनावट का होता है और यह फंगस के वृद्धि में वही काम करता है जो बड़े पौधों में बीज करते हैं। यह स्पोर बहुत बड़ी संख्या में उत्पन्न होकर इधर-उधर फैलकर बीमारी बढ़ाते हैं।

इन सामान्य बातों पर विचार कर लेने के बाद फस्लों की बीमारियों तथा उनके रोक-थाम के विशेष उपायों का उल्लेख किया जायगा।

गन्ने में लगने वाली बीमारियाँ

गन्ने के अगोले तने तथा जड़ में सूराख करने वाली सूड़ियों का वर्णन गन्ने की खेती के अध्याय में पहले ही किया जा चुका है। इनके रोक-थाम का सबसे सरल उपाय यही है कि कीड़े लगे हुए गन्ने के बीज को कभी न बोया जाय। पेड़ी के लिये जो गन्ना रखना है उसमें आग लगा कर सब पत्तों को जला देना चाहिये। ऐसा करने से सब कीड़े मर जाते हैं। जिन खेतों में पेड़ी न रखना हो उनके भी सब ठूँठ निकाल कर जला देना चाहिये ताकि कीड़े नष्ट हो जायँ। खेतों में पानी भर देने तथा उसके सूखने पर भूमि को न गोड़ने से भी कीड़े धरती के नीचे हवा न पाने से मर जाते हैं। यदि इतना करने पर भी नये कल्लों की चोटी सूखी दिखाई देती है तो उसे धरती से डेढ़ इंच नीचे से काट कर मिट्टी के तेल में डाल देना चाहिये जिससे कीड़ा कल्ले के अन्दर ही मर जाय।

फुदकनेवाला कीड़ा या पाइरिल्ला—यह कीड़ा गन्ने की फ़सल को बहुत हानि पहुँचाता है। इसके बढ़ जाने से गन्ने के रस तथा शक्कर का औसत १½ से २ प्रतिशत तक कम हो जाता है। यह कीड़े पौधों का रस चूसकर उसे

बेकार कर देते हैं। पाइरिल्ले का रंग भूरा होता है और इसके चार बाजू होते हैं। यह कीड़ा गन्ने की पत्तियों पर अंडे देता है, लेकिन जब गन्ना पकने का समय आता है और पत्तियाँ पौधे से अलग होने लगती हैं तो इस कीड़े की मादा पत्तियों और तने के बीच की जगह में अंडे देती है। इसी लिए सितम्बर में गन्ने की पत्तियाँ अलग करके जला देना इसके दमन में बहुत सहायक होता है। लेकिन ऐसे गन्नों को बीज के काम में न लाना चाहिये, क्योंकि इनकी आँखें सूख जाती हैं। इस कीड़े से बचाव के कई ढंग हैं। अप्रैल-मई में जब यह कीड़े
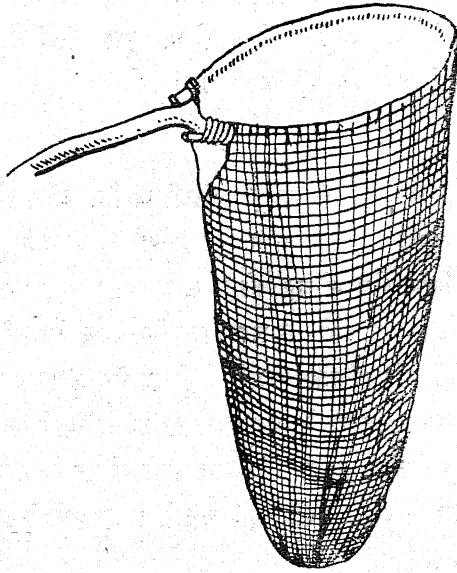
कीड़ों के पकड़ने का जाल

थोड़े हों, तो उनको छोटे-छोटे जाल बनाकर फँसाया जाय। यह जाल बाँस की एक गोल लकड़ी में कपड़ा लगाकर थैले के समान बनाये जाते हैं। इन जालों को हाथ से पकड़कर पत्तियों की सतह पर एक तरफ से फेरते जाते हैं। इस तरह वह कीड़े जो इन पर होते हैं, जाल में फँस जाते हैं और मिट्टी के तेल मिले पानी में डुबो दिये जाते हैं। इस जाल का चित्र ऊपर दिया है। दूसरा ढंग यह है कि इस कीड़े के अंडों को पत्तियों के नीचे के हिस्से में कुचलकर मार देना चाहिए। वर्षाऋतु के अन्त में गमेक्सीन १५ सेर प्रति एकड़ छिड़क देने से भी कीड़े मर जाते हैं।

दीमक——ये कीड़े गन्ने की फसल के सबसे बड़े शत्रु हैं। इनसे बड़ी हानि होती है। जैसे ही गन्ने के टुकड़े खेत में बोये जाते हैं, यह खाना आरम्भ कर देते हैं। यह पहले सिरों में लगते हैं और धीरे-धीरे तमाम टुकड़े को खा जाते हैं। बरसात के दिनों में यह बिल्कुल नष्ट तो नहीं हो जाते हैं, किन्तु

इनकी शक्ति कुछ अर्से के लिए कम हो जाती है। दीमक को अन्य बीमारियों से सरलता से पहचाना जा सकता है, क्योंकि जिस पौधे में दीमक लग जाती है, वह सूख जाता है और बड़ी सरलता से उखड़ आता है। फसल को इससे बचाने का उपाय यह है कि खेत में अच्छी सड़ी हुई खाद डाली जाय और खूब सिंचाई की जाय। सनई की खाद न सड़ी हो तो पानी लगाकर सड़ा दी जाय। यदि दो प्रतिशत फेनाइल के पानी में गन्ने का बीज बोने से पहले २४ घंटे डुबा दिया जाय तो दीमक उन पेड़ों को बहुत कम खाते हैं। गन्ना बोने के पहिले कूँड़ों में १५ सेर गेमक्सीन प्रति एकड़ मिट्टी में मिलाकर डाल देने से दीमक बीज को नष्ट नहीं करते। दीमक सूखे खेतों में अधिक जोर करता पर अच्छी सिंचाई करने से दब जाता है।

सफेद मक्खी——यह कीड़ा नीची जमीन और पानी रुकनेवाले खेतों में गन्ने की फसल को अधिक हानि पहुँचाता है। पश्चिमी जिलों में इसको चेपा कहते हैं। जिस खेत में यह कीड़ा लग जाता है उनका रंग हरे के बजाय तांबे का सा हो जाता है। ये अगस्त और सितम्बर के महीने में तेजी से बढ़ते हैं और अपने अंडे पत्तियों की निचली तह पर देते हैं। इनसे फसल को बचाने के लिए जुलाई और अगस्त के महीने में कीड़ों से खाई हुई पत्तियों को अलग करके जला दिया जाय और नीची जगहों में गन्ने की खेती न की जाय। अच्छे उर्वरा खेत में यह मक्खी नहीं लगती। पुरानी पेड़ी इत्यादि पर इसका असर अधिक होता है।

काना की बीमारी——इस बीमारी को अँग्रेजी में 'रेडराट' कहते हैं। यह कठिन बीमारी है और करीब-करीब हर देश में, जहाँ गन्ना बोया जाता है, पाई जाती है। यदि बीमारी हल्की हो तो बाहर से बीमारी का पता नहीं चलता, परन्तु गन्ने के अन्दर लाल-लाल धारियाँ होती हैं और इन लाल धारियों के बीच-बीच में सफेद धब्बे होते हैं। जब बीमारी बढ़ जाती है तो तना कमजोर हो जाता है और पत्तियाँ सूखने लगती हैं। जिन गन्नों में यह बीमारी लगती है उनका शक्कर का परता कम हो जाता है। यह बहुत कठिन छूत की बीमारी है और एक गन्ने से दूसरे गन्ने में लगती है। इसकी सबसे अच्छी दवा यह है कि जिस खेत में इस बीमारी का कुछ भी असर हो तो उसका बीज न बोया जावे। दूसरी जगह से, जहाँ यह बीमारी न लगी हो, बीज मँगाकर बोना चाहिये और दूसरे यह कि जिस समय गन्ने के टुकड़े बीज के लिये काटे जायँ, तो उनके दोनों सिरों को देख लिया जाय। यदि लाली दिखाई देवे तो उन टुकड़ों

को जला दिया जावे। जिस खेत में यह बीमारी लग चुकी हो उसमें दो साल तक फिर गन्ना नहीं बोना चाहिये। बीमार गन्ने की जड़ें व पत्ती इत्यादि जला देना चाहिये।

आक्रान्त गन्ना

आक्रान्त गन्ने की पत्ती

बीच से फाड़ा हुआ गन्ना

काना या 'रेड राट' की बीमारी से आक्रान्त गन्ने का तना तथा पत्ती

अगिया या स्मट की बीमारी—इस बीमारी के लगने पर गन्ने में बढ़ते हुये कल्लों के स्थान पर एक काला हंटर की शक्ल का बढ़ाव उत्पन्न हो जाता है जो कभी-कभी कई फीट लम्बा होता है। यह अगणित काले रंग के

स्पोर से ढका रहता है जो हवा के चलने पर या सिंचाई के पानी द्वारा खेत में फैलकर बीमारी को बढ़ाता है। इससे बचने का उपाय यही है कि ज्यों ही एक कल्ले में यह बीमारी दिखाई दे उसे तुरन्त ही जड़ से काट कर आग में जला देना चाहिये। परन्तु काटते समय रोगी कल्ले को एक बोरे से ढक लेना

अगिया या 'स्मट' की बीमारी से पीड़ित गन्ने के पौधे

चाहिये जिससे कि बीमारी के स्पोर दूसरे पौधों पर जाकर उन्हें भी न रोगी बना दें। जिस फस्ल में यह बीमारी लग चुकी हो उसकी पेड़ी कदापि न रखना चाहिये।

सूखा या विल्ट की बीमारी---इस बीमारी में पत्तियाँ सूखने लगती हैं और गन्ने को फाड़ने पर अन्दर का गूदा लाल दिखाई देता है। परन्तु काना

या रेड राट की बीमारी से इसमें यह भिन्नता होती है कि लाली के बीच-बीच में सफेद धब्बे नहीं होते हैं। गन्ने के बीच में खोखला हो जाता है जिसमें बीमारी के फंगस भरे रहते हैं। इस बीमारी के लग जाने पर सिवाय इसके कि रोगी पौधों को काट कर जला दिया जाय और कोई उपाय नहीं है। बीज की छटाई के समय जिन सावधानियों को रेडराट से बचने के लिये बरतनी पड़ती हैं उन्हीं सावधानियों को विल्ट की बीमारी से बचने के लिए बरतना चाहिये।

गेहूँ और जौ की बीमारियाँ

ईल कीड़ों या गेहूँ की बीमारी--गेहूं की यह बीमारी प्रदेश के पश्चिमी जिलों में प्रायः होती है। इस बीमारी में गेहूँ की पत्तियाँ टेढ़ी-मेढ़ी होकर सिकुड़ जाती हैं और बालियों में दानों के स्थान पर काली-काली रोड़ियाँ बन जाती हैं। इन रोड़ियों में हजारों जीवित छोटे-छोटे ईल कीड़े होते हैं। जिन बालियों में यह बीमारी दिखलाई दे जाय उन्हें उखाड़ कर तुरन्त जला देना चाहिये। यदि फसल काट डाली गई हो तो रोड़ियों को चलने से चाल कर निकाल देना चाहिये क्योंकि इनको गेहूँ के साथ बो देने से यह बीमारी फैलती है।

रस्ट या गेरुई की बीमारी--यह गेहूँ को सब से अधिक हानि पहुँचाने वाली बीमारी है। यह संसार के सभी गेहूँ पैदा करने वाले देशों में पाई जाती है और कई प्रकार की होती है। ऐसे गेहूँओं के आविष्कार के लिये सभी देशों में प्रयत्न हो रहा है जिसमें गेरुई न लग सके, परन्तु अब तक पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हुयी है। यदि एक प्रकार के गेरुई से कोई गेहूँ बच भी जाता है तो दूसरे प्रकार के गेरुई का शिकार हो जाता है।

इस बीमारी में गेहूँ के तनों, पत्तों या बालियों पर पीले, लाल, नारंगी रंग के धब्बे या लाइनें पड़ जाती हैं जो बाद में भूरे या काले रंग में बदल जाती हैं। यह फंगस की बीमारी है जिसके लग जाने पर पौधों का रस दानों तक न पहुँच सकने के कारण दाना पतला पड़ जाता है। यह बीमारी जाड़ों में अधिक वर्षा या नम वातावरण में विशेष रूप से फैलती है। इसलिये जब बदली हो तो गेहूँ की सिंचाई न करनी चाहिये।

यद्यपि किसी भी जाति का गेहूँ सब प्रकार के गेरुई से नहीं बच पाता परन्तु कुछ गेहूं ऐसे हैं जो दूसरों की अपेक्षाकृत गेरुई से अधिक सुरक्षित रहते हैं। पूसा ५२ तथा ७६० इसी प्रकार के गेहूँ हैं, इसलिये उन क्षेत्रों में, जहाँ नमी अधिक बनी रहती है, जैसे नदियों के कछार में या मटियार खेतों में, इन्हीं में से कोई गेहूँ बोना चाहिये।

गेहूँ में इस बीमारी के लग जाने पर उसे बचाने का कोई उपाय नहीं है।

यदि है तो वह इतना महँगा है कि उपयोग में नहीं लाया जा सकता। गेरुई से बहुत हद तक बचने का एकमात्र उपाय यही है कि जल्द पकने वाली गेहूँ की जातियाँ बोई जायँ और बोवाई ठीक समय से की जाय। गेरुई का जोर फ़रवरी के अन्त में होता है। जो जल्दी का बोया हुआ गेहूँ होता है उसमें दाने इस समय तक कुछ कड़े हो जाते हैं और गेरुई के असर से बच जाते हैं। परन्तु जो दाने दूध की दशा में होते हैं उनको नीचे से आहार नहीं मिलता और वह पतले और कमज़ोर पड़ जाते हैं। २० अक्टूबर के पहिले गेहूँ बोने से गरमी अधिक होने के कारण पौधे कभी-कभी मर जाते हैं। इसलिये गेहूं की बोवाई २० अक्टूबर को शुरू करके शीघ्र से शीघ्र अक्टूबर के अन्दर ही समाप्त कर देना चाहिये। जौ में भी गेहूँ की तरह गेरुई की बीमारी लगती है परन्तु जौ में इसका प्रकोप कम होता है।

गेहूं में स्मट की बीमारी——यह बीमारी भी फंगस की बीमारी है और कई प्रकार की होती है। यह बीज द्वारा फैलती है इसलिये इसका रोक-थाम सरल है। जिन खेतों में यह बीमारी लग चुकी हो उनकी पैदावार को फिर बीज के लिये प्रयोग में नहीं लाना चाहिये। परन्तु यदि दूसरा विश्वसनीय बीज उपलब्ध न हो तो बीज में एग्रोसेन जी० एन० नामक दवा को मिला कर बोने से अगली फस्ल बीमारी से बच जाती है। यह दवा इम्पीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज के एजेन्सियों से प्राप्त की जा सकती है। यह दवा बीज के साथ १½ छटाक प्रति मन के हिसाब से मिलाई जाती है।

जौ में स्मट की बीमारी गेहूँ से भी अधिक लगती है। इस बीमारी में बालियों में दानों के स्थान पर काला पाउडर भर जाता है। जब तक काली-काली बालियाँ पौधों में से निकल नहीं आतीं तब तक बीमारी का कोई संकेत नहीं मिलता। एक प्रकार के स्मट में यह पाउडर आसानी से नहीं उड़ता बल्कि दानों की खोल से ढका रहता है परन्तु दँवाई के समय अन्य दानों से मिलकर पूरी पैदावार को दूषित कर देता है। एक दूसरे प्रकार के स्मट में काला पाउडर बहुत आसानी से उड़ जाता है। यह दोनों प्रकार के स्मट बीजों से फैलते हैं, इस लिये शुद्ध बीज बोकर बीमारी की रोक-थाम की जा सकती है। एग्रोसेन जी० एन० को बीज के साथ २ छटाक प्रति मन के हिसाब से मिलाकर बोने से ढके हुये किस्म के स्मट से फस्ल को बचाया जा सकता है। (चित्र देखें पृष्ठ २०३)

ढकी हुई स्मट की बीमारी से आक्रान्त जौ की बालियाँ
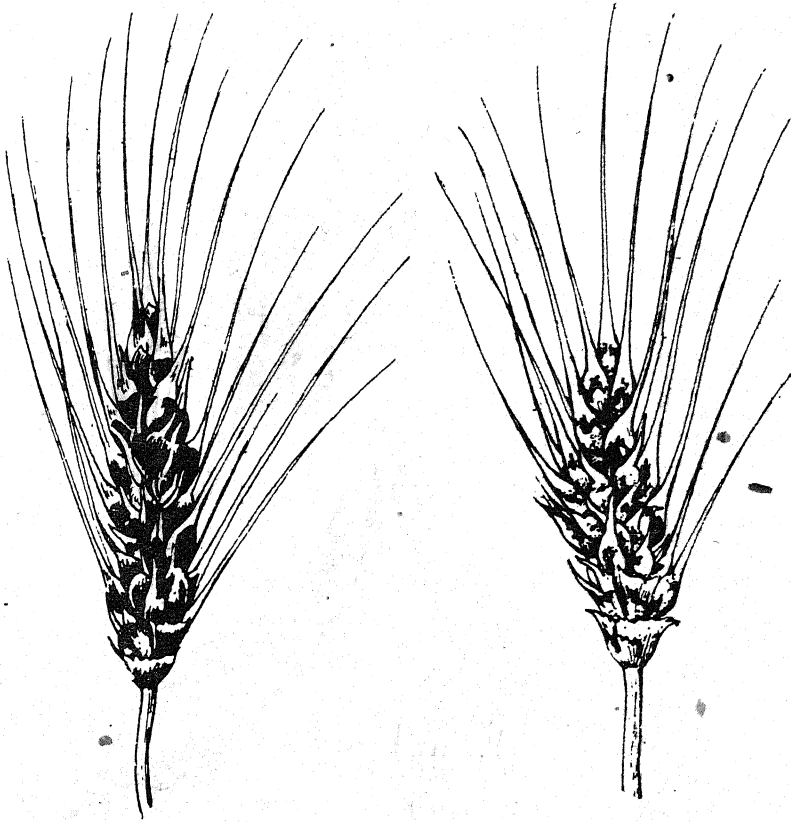
जौ में पत्तियों में धारी की बीमारी——इस बीमारी के लगने पर कभी-कभी तो पौधे भूमि से निकलने के पहिले ही मर जाते हैं। जो बचे रहते हैं उनकी पत्तियों पर लम्बी-लम्बी धारियाँ पड़ जाती हैं जो कुछ दिन बाद गहरे भूरे रंग की हो जाती हैं। फिर यह काली पड़ जाती है और पत्तियाँ सूख जाती हैं। पत्तियों के सूख जाने से दाने या तो पड़ते ही नहीं या बहुत ही कमजोर हो जाते हैं। सूखी पत्तियों से स्पोर उड़ कर बालियों पर पड़ते हैं और वे इस प्रकार से दूषित हो जाते हैं। इन बालियों के दाने स्वस्थ दिखलाई देते हैं परन्तु यदि फिर बोये जायँ तो बीमारी फैल जाती है। बीज को एग्रोसेन जी० एन० से २ छटाक प्रति मन के हिसाब से मिला कर शुद्ध किया जा सकता है। (चित्र देखें पृष्ठ २०४)।

जौ की पत्तियों में धारी की बीमारी
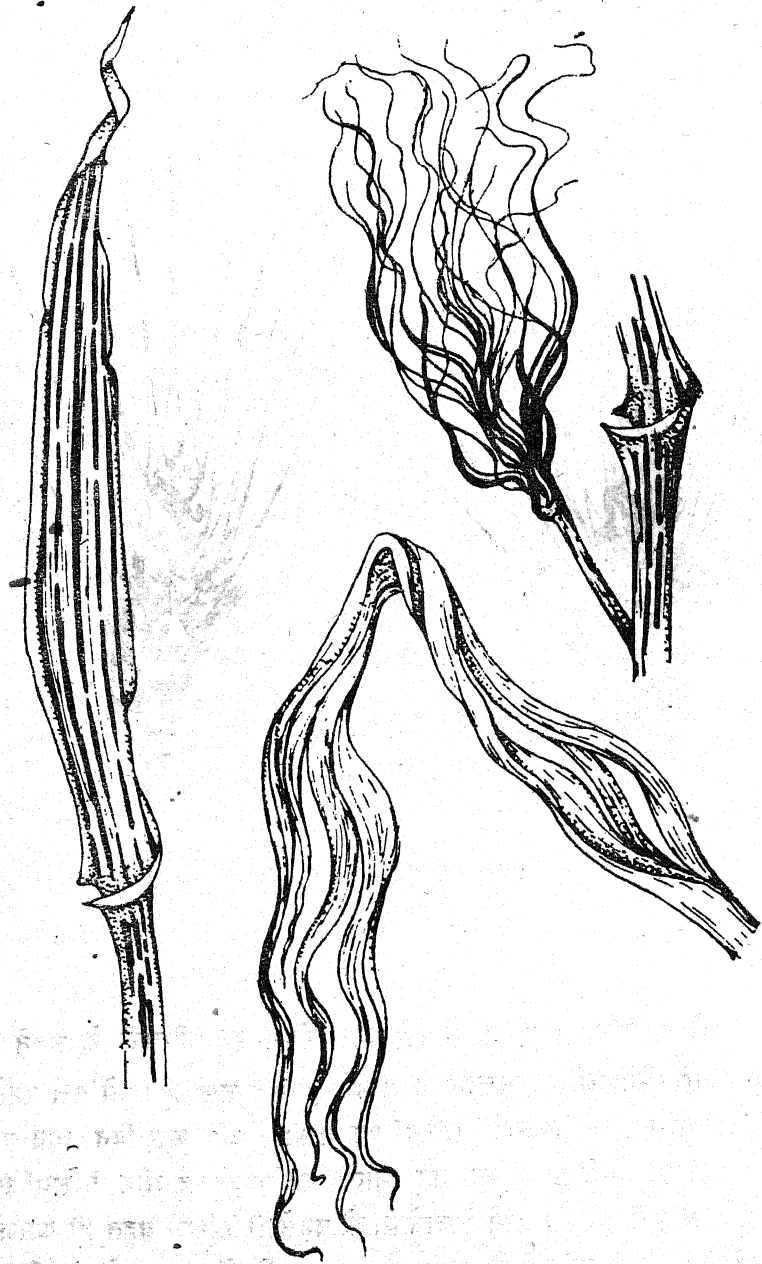
धान की बीमारियाँ

(१) गंधी कीड़ा—धान को सबसे अधिक हानि गंधी कीड़े से होती है। यह एक लम्बा, भूरा, पतली टांगोंवाला कीड़ा होता है। यह लगभग पौन इंच

लम्बा होता है। इसका निम्फ़ लगभग $\frac{१}{१२}$ इंच का हल्का हरा और बिला पंख वाला होता है। ज्यों-ज्यों यह बढ़ता है, इसका रंग गहरा होता जाता है और पंख निकल आते हैं। यह कीड़े धान की बालियों पर बैठ कर दानों के रस को चूस लेते हैं जिसके फलस्वरूप बालियाँ बिल्कुल सूख जाती हैं और उसमें दाना नहीं पड़ता है। जिन खेतों पर इनका प्रकोप जोरों में हो जाता है वह फस्ल
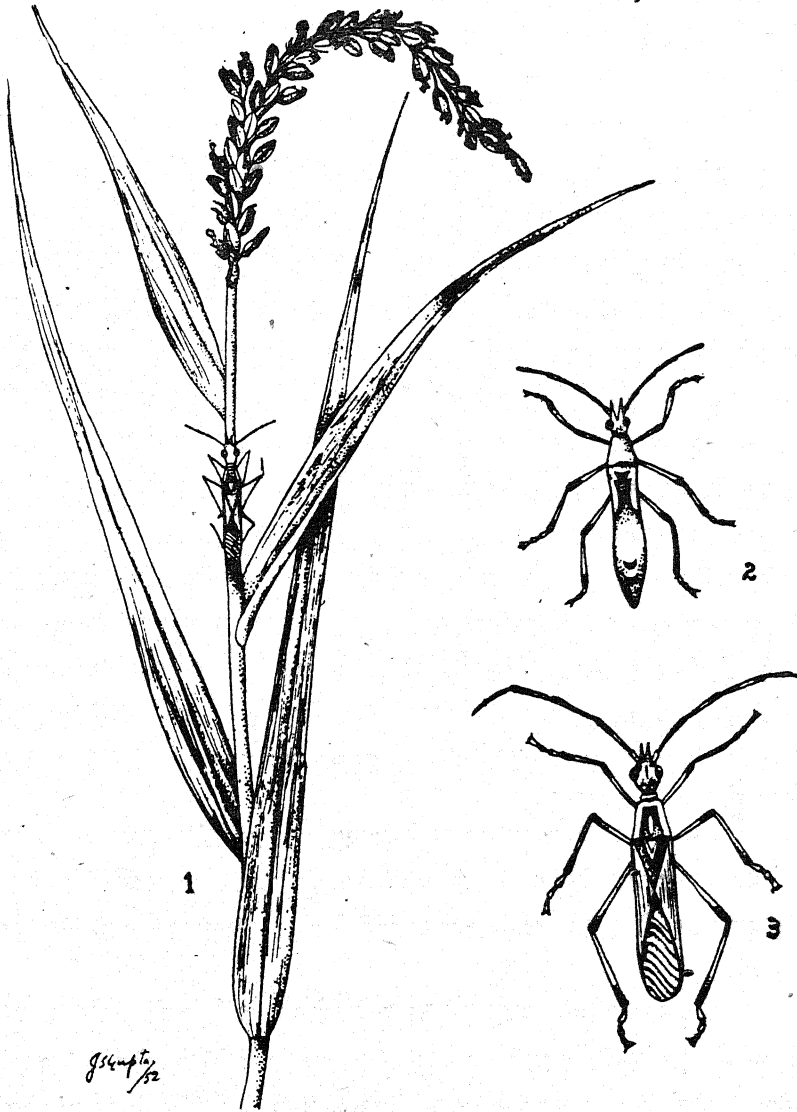
१. गंधी कीड़े से आक्रान्त धान की बाली २. निम्फ़ ३. कीड़ा

बिल्कुल नष्ट हो जाती है। यह कीड़ा खेतों में लगभग ७ सितम्बर से १५ अक्टूबर तक बहुत ही सक्रिय रूप में रहता है। ठंढ पड़ने पर यह कीड़ा मर

जाता है या घासों इत्यादि में छिप कर बहुत ही शिथिल अवस्था में अपना जीवन व्यतीत करता है।

इसलिये इससे बचने का एकमात्र और सबसे सरल उपाय यही है कि धान ऐसे समय से बोये जायें कि उनके दूध में आने का समय १० सितम्बर से १५ अक्टूबर के बीच में न पड़े। किसानों को कोई धान बोने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि उस धान में कितने दिनों में दूध आता है। फिर बोने की तारीख से यह जोड़कर देखना चाहिये कि कहीं ऊपर बताई हुई अवधि में तो उनका धान दूध में नहीं आता। यदि ऐसा है तो गन्धी से नुकसान होने का डर रहेगा। उदाहरण के लिये टा० २१ धान को लीजिये। यह धान रोपाई के ६२ दिनों बाद पककर तैयार होता है। पकने के १० दिनों पहले तक दानों में दूध रहता है। इसका अर्थ यह होता है कि रोपाई के ८२ दिनों के अन्दर १० सितम्बर नहीं आना चाहिये। यदि ५ जुलाई को यह धान बैठाया जाय तो ८२ दिन २७ सितम्बर को पूरा होगा। २७ सितम्बर ऊपर बताये हुये अवधि के अन्दर आ जाता है, इसलिये गन्धी से इस फसल को नुकसान होने का डर रहेगा। यदि इस डर से इसे बचाना है तो १८ जून के पहले बैठाया जाये या १२ अगस्त के बाद। यदि १८ जून के पहले बैठाना है तो बियाड़ा १८ मई के लगभग बो देना चाहिए और यदि १२ अगस्त को बैठाना है तो १२ जुलाई के लगभग बोना चाहिये। ऐसा करने से यह धान गन्धी के आक्रमण से बच जायेगा। कार्तिकी या मध्य धान को गन्धी से सबसे अधिक हानि होने की सम्भावना होती है। इसलिये यदि इसकी खेती करना हो तो ऊपर बताये हुये ढंग से हिसाब लगाकर इसकी रोपाई ऐसे समय से करना चाहिये कि यह दूध में ऊपर बताये हुये अवधि में न आवे। किसान को जब कोई नया धान बोना हो तो उसकी पकने की अवधि उसे मालूम कर लेना आवश्यक है नहीं तो धोखा होने का डर रहता है।

फसल में गंधी कीड़ा लग जाने के बाद ५ सेर प्रति एकड़ के हिसाब से गेमेक्सेन पाउडर छिड़क देने से बहुत हद तक फस्ल को बचाया जा सकता है। इस दवा को उस समय छिड़कना चाहिये जब अधिकांश बालियाँ निकल आई हों।

नं (२) बोंके—यह हरे या हल्के हरे रंग के टिड्डियों से मिलते-जुलते डेढ़ से दो इंच लम्बे फुदकने वाले कीड़े हैं। इनके गर्दन के दोनों तरफ़ तीन धारियाँ होती हैं। इनके बच्चे इन्हीं के आकार के होते हैं। केवल रंग और पंख में कुछ अन्तर होता है। यह कीड़े धान, गन्ना, ज्वार, बाजरा, मक्का, सनई और अरहर की पत्तियों को खा डालते हैं और कभी-कभी तो पौधों में एक भी पत्ती नहीं छोड़ते जिसके फलस्वरूप फस्ल की भारी हानि होती है। इन बोंकों से सबसे अधिक हानि अगस्त और सितम्बर के महीने में होती है।

इनसे भी बचने का यही उपाय है कि फस्ल पर ८ से १२ सेर प्रति एकड़ के हिसाब से गेमेक्सेन पाउडर छिड़क दिया जाय। इन कीड़ों को गेहूँ के चोकर या धान की भूसी में सोडियम फ़्लो सिलिकेट मिलाकर ज़हरीला चारा देकर के भी नष्ट किया जा सकता है। इस कार्य के लिये आधा सेर सोडियम फ्लोसिलिकेट
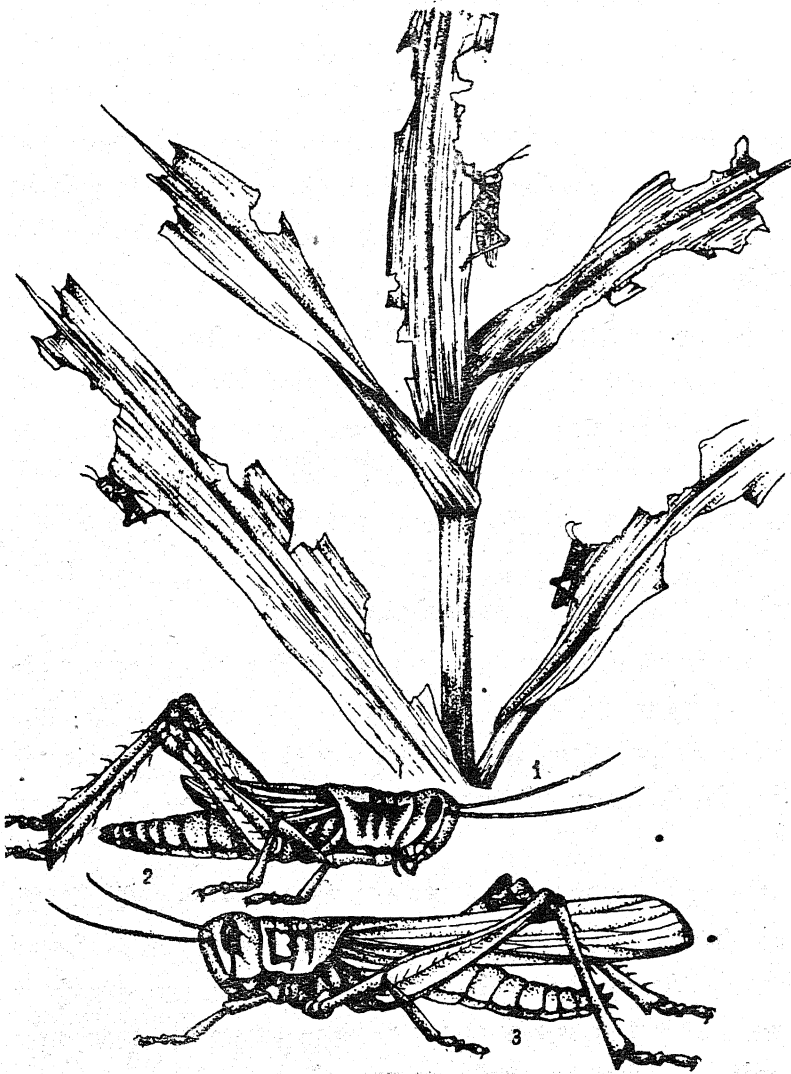
१. ज्वार का पौधा जिसे ख़रीफ़ के कीड़े से हानि पहुँची
२. छोटे पंखवाला ख़रीफ़ का कीड़ा
३. बड़े पंखवाला ख़रीफ़ का कीड़ा

को साढ़े सात सेर चोकर या भूसी में मिलाया जाता है और थोड़ा पानी मिला कर नम कर लिया जाता है। यदि पानी के स्थान पर गुड़ का शर्बत प्रयोग में लाया जाय तो और भी अच्छा होगा। पानी या शर्बत इतना ही मिलाया जाय कि मिश्रण न तो अधिक सूखा ही हो और न इतना गीला कि उसे खेत में बखेरने में कठिनाई हो। इस विषैले चारे को सुबह और शाम खेत में बखेरना चाहिये। १० से १५ सेर चारा प्रति एकड़ पर्याप्त होगा।

नं० (३) तने में सूराख करनेवाला कीड़ा—यह कीड़ा धान के तनों में सूराख कर देता है। फस्ल के आरम्भ में अधिक हानि नहीं होती परन्तु बाद में बालियाँ निकलने के समय पौधों का रस ऊपर न पहुँचने के कारण बालियाँ सफेद हो जाती हैं। इसके रोक-थाम का कोई उपाय नहीं है सिवाय इसके कि फस्लों का हेर-फेर किया जाय और धान को काट लेने के बाद उसकी खूँटी तुरन्त जोत दी जाय।

नं० (४) पत्तियों के चित्ते की बीमारी—यह बीमारी एक प्रकार के फंगस की है। इस बीमारी के लगने पर पत्तों पर बादामी रंग के छोटे-छोटे धब्बे पड़ जाते हैं जो बाद में बढ़कर आधी सेंटीमीटर लम्बे हो जाते हैं और उनके केन्द्र का रंग बदल कर राख के रंग का हो जाता है। दाने कभी-कभी एक काले मख़मली आवरण से ढक जाते हैं और पौधे समय से पहले ही सूख जाते हैं। यदि बालियाँ काली न भी पड़ें तो भी दाने कमज़ोर हो जाते हैं और पैदावार घट जाती है। (पृष्ठ २०९ का चित्र देखिये)।

यह बीमारी बीज, हवा और खेत की मिट्टी से फैलती है अतएव इसके रोक-थाम का केवल यही उपाय है कि स्वस्थ बीज ऐसे खेतों में बोया जाय जिन खेतों में या उनके निकट पूर्व वर्ष में यह बीमारी न लगी हो। कभी-कभी बीज को एग्रोसेन जी० एन० से मिला कर शुद्ध कर लेने के बाद बोने से लाभ होता है।

नं० (५) ब्लास्ट या खड़ुका की बीमारी—यह बीमारी भी फंगस की बीमारी है। इस बीमारी में भी पत्तियों पर धब्बे पड़ते हैं जिनका केन्द्र राख के रंग का होता है किन्तु धब्बे बड़े होते हैं। इस बीमारी के अन्य लक्षण बालियों का झुक जाना, उनका सफेद हो जाना या झुलस जाना और दानों का न भरना तथा इसके पश्चात् दानों का काला पड़ जाना है।

यह बीमारी बीज से फैलती है अतएव स्वस्थ खेतों के पैदावार को ही बीज के लिये प्रयोग में लाया जाय तो इस रोग से फस्ल की रक्षा हो सकती है। यदि बीज विश्वासनीय नहीं है तो एग्रोसेन जी० एन० के साथ २ छटाक प्रति मन के हिसाब से बीज में मिलाकर शुद्ध करके तब बोना चाहिये।

नं० (४) पत्तियों के चित्ते की बीमारी (पृष्ठ २०८ देखिये)

नं० (६) जड़ों में सड़न की बीमारी—यह भी फंगस की बीमारी हैं जो बीजों द्वारा फैलती है। इस बीमारी के लगने पर पौधे या तो बहुत छोटे रह जाते हैं या अन्य स्वस्थ पौधों से बहुत लम्बे हो जाते हैं। ऐसे पौधे भूमि से बड़ी सरलता से उखड़ आते हैं क्योंकि उनकी जड़ें प्रायः सब सड़ी

हुई होती हैं। उनकी जड़ों का रंग लाल बादामी हो जाता है। ऐसे पौधों में कल्ले नहीं निकलते और यदि दाना पड़ता है तो बहुत ही कमजोर रह जाता है।

इस बीमारी की रोक-थाम के लिये यह आवश्यक है कि स्वस्थ बीज ऐसे खेतों का बोया जाय जिसमें यह बीमारी न लगी हो अथवा बीज को बोने के पहिले एग्रोसेन जी० एन० से २ छटाक प्रति मन के हिसाब से मिला कर शुद्ध करके बोया जाय।

आलू की बीमारियाँ

नं० १. मोजेक या कुष्ट रोग——यह आलू की सब से व्यापक बीमारी है। इसके लगने पर पैदावार कभी-कभी ५० प्रतिशत तक घट जाती है। इस बीमारी में पौधों की पत्तियाँ टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं और उनका बढ़ाव रुक जाता है। आलू कम पड़ता है और छोटा ही रह जाता है।

यह बीमारी जितनी ही व्यापक है उतना ही इसकी रोक-थाम सरल है। यह बीमारी बीज से फैलती है और चूँकि कुष्ट रोग लगे हुये आलू की पैदावार छोटी ही रह जाती है इसलिये केवल बड़े आलुवों को बोने से इस बीमारी से बचा जा सकता है। बीज के लिये आलू यदि दिसम्बर में बो कर तैयार किया

रोगी पौधों के विनाश द्वारा आलू के कुष्ट रोग की रोक-थाम
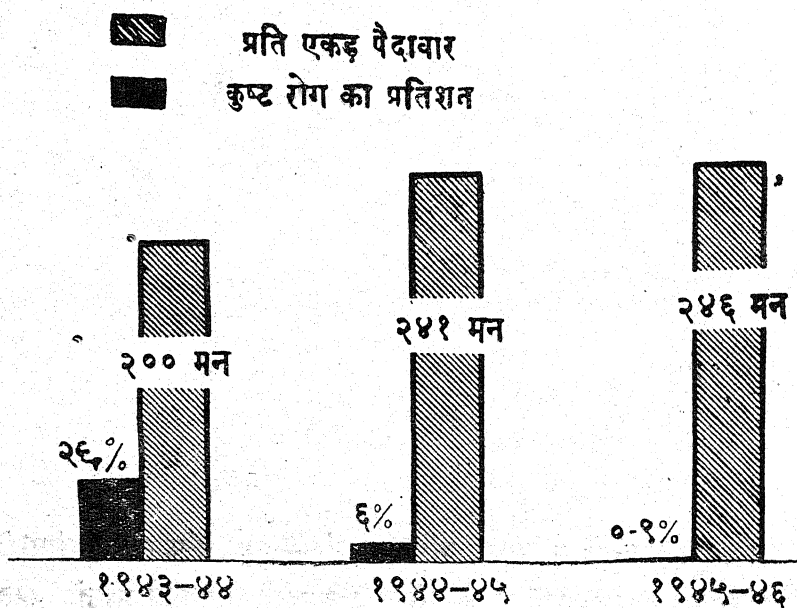
लगातार तीन वर्ष तक कुष्ट रोग से प्रभावित पौधों के विनाश का अनुसंधान फार्म कानपुर में आलू की इस बीमारी की घटनाओं और उपज पर प्रभाव

जाय तो उस में कुष्ट रोग कम होगा क्योंकि कुष्ट वाहक कीड़े जड़ों में नहीं बढ़ सकते । फरूखाबाद के किसान इसी प्रकार आलू का बीज तैयार करते हैं और इस रोग पर काबू पा सके हैं । तीसरा उपाय यह भी है कि साल के बाद साल खेत में इस रोग के दिखलाई देते ही रोगी पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दिया जाय। इस उपाय से रोग पहले साल २६ से ६ प्रतिशत और दूसरे साल केवल ०.६ प्रतिशत रह जाता है (चित्र पृष्ठ २१० पर देखिये)। इस प्रकार से लगभग तीन वर्षों तक रोगी पौधों को बराबर उखाड़ते रहने से बीज को रोग-मुक्त किया जा सकता है ।

नं० २. वृत्ताकार सड़न या रिंग राट——यह रोग एक प्रकार के कीटाणु द्वारा फैलता है । उत्तर प्रदेश के पहाड़ी जिलों में ही यह रोग अधिकतर पाया जाता है । इसके लगने पर पत्तियाँ और डंठल कुछ मुरझा जाते हैं । कभी-कभी पत्तियों में सड़न भी पैदा हो जाती है जो नीचे से ऊपर को बढ़ती है । पत्तियाँ पीली और मुलायम हो जाती हैं और फिर पूरा पौधा सूख जाता है । कभी-कभी एक या दो टहनियों की ही पत्तियाँ पीली पड़ती हैं और किनारों पर झुल्सी हुई दिखाई देती हैं । रोग लगे हुये पौधे के तने को उखाड़ने पर कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता परन्तु बीज वाले टुकड़े से ठीक लगे हुये तने को यदि तराश कर खुर्दबीन से देखा जाये तो वह कीटाणुओं से भरा हुआ दिखाई देगा। रोगी आलुवों को काटने पर उनके अन्दर बादामी रंग का वृत्ताकार सड़न दिखाई देता है । इस सड़न से बदबू भी निकलती है । कभी-कभी यह वृत्ताकार सड़न छोटे धब्बों की ही शक्ल में रहता है और कभी पूरा आलू ही सड़ा हुआ मिलता है ।

इस बीमारी की रोक-थाम भी स्वस्थ बीज बोकर ही की जा सकती है। खेतों में जो पौधे किसी प्रकार से रोगी दिखाई दें उन्हें जड़ से निकाल कर नष्ट कर देना चाहिये । बीज को शुद्ध करने के लिये २ छटाक मर्करी क्लोराइड (विष) १५ गैलन पानी में घोलकर आलू को आधे घन्टे तक उसमें डुबाये रहे और उसके बाद निकाल कर तुरन्त बो देवे । फुलवा आलू में यह रोग नहीं लगता ।

नं० ३. आलू का दीर्घ झुल्सा——यह रोग भी आलुवों के लिये बहुत ही हानिकर है। इसके लगने पर पत्तों पर काले-काले धब्बे दिखाई देते हैं जो पानी या ओस पड़ने पर पूरे पत्ते पर फैल जाते हैं। इन पत्तों के नीचे सफेद रूई की तरह फफूँदी लग जाती है जो गर्म और नम मौसम पाकर रोग को बड़ी शीघ्रता से दूसरे पौधों तक पहुँचा देती है । अन्त में पौधे सड़ कर गिर जाते हैं । रोग का छूत आलुवों में भी लग जाता है और वे भूरे

पड़कर सड़ने लगते हैं और ऐसे ही रोगी आलुवों से रोग एक साल से दूसरे साल चलता रहता है। परन्तु मैदानों में अधिक गर्मी पड़ने पर इस रोग के कीटाणु मर जाते हैं अतएव इस रोग का डर उन्हीं आलू के बीजों से रहता है जो पहाड़ से लाये गये हों या जो शीत गोदामों में रक्खे रहे हों।

इस रोग से बचने के लिये बीज के आलू को मई के महीने में एक सप्ताह तक बाहर साये में रख देना चाहिये। इस प्रकार से रोग के कीटाणु गर्मी पाकर मर जाते हैं। आलू के बीजों को भली भाँति छाँट कर केवल स्वस्थ आलुवों को बोना चाहिये। रोग के लग जाने पर १ प्रतिशत का बोर्डो मिक्शचर हर दसवें-पन्द्रहवें दिन छिड़क कर फसल की रक्षा की जा सकती है।

नं० ४. आलू का प्रथम झुलसा—यह रोग भी अपने प्रांत में केवल पहाड़ों पर ही पाया जाता है। इस के लगने पर पत्तियों पर उनके सिरे से शुरू होकर काले या गहरे बादामी रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। रोग का प्रकोप बढ़ने पर कुछ ऊपर की धब्बेदार पत्तियों को छोड़कर शेष सभी पत्तियाँ झुलस जाती हैं।

इस रोग के रोक-थाम के लिये स्वस्थ बीज बोना चाहिये और आवश्यकता पड़ने पर १ प्रतिशत का बोर्डो मिक्शचर प्रयोग करना चाहिये।

नं० ५. आलू की तितली—वास्तव में यह आलू की बीमारी नहीं है वरन् उसके खोद लिये जाने के बाद गोदामों में हानि पहुँचाने वाला कीड़ा है। यह कीड़ा आलू में छेद करके उसको खाता है जिसके कारण आलू में सड़न पैदा हो जाती है। यह तितली खेतों में आलू को खोदते समय या गोदामों में अंडे देती हैं। इन अंडों से सूड़ी निकल कर आलू के अन्दर छेद करके घुस जाती है। आलू की मेड़ों पर काफी मिट्टी चढ़ाने और खोदते समय आलुवों को तुरन्त त्रिपाल या जाजिम से ढक देने तथा गोदाम में बालू या पिसे हुये लकड़ी के कोयले के अन्दर आलू को रखने से इन्हें तितलियों से सुरक्षित किया जा सकता है। यति ५ प्रतिशत वाला डी. डी. टी. पाउडर पन्द्रह मन बालू या कोयला में मिला कर प्रयोग किया जाय तो गोदाम में यदि कुछ सूड़ियाँ पैदा भी हो जायँ तो वह तुरन्त मर जाती हैं और इनकी संख्या बढ़ने नहीं पाती। आलू के गोदामों की खिड़कियाँ और दरवाजों में ऐसी महीन जाली लगी रहनी चाहिये जिसमें इस कीड़े के पतिंगे घुस न सकें।

कपास की बीमारियाँ

नं० १. कपास का लाल कीड़ा—यह लाल सूड़ी छोटे, गहरे बादामी रंग के पतिंगे, जिनके पंखों की चौड़ाई आधा इंच की होती है और जिन पर काले धब्बे पड़े रहते हैं, उनसे उत्पन्न होती है। नई सूड़ी का रंग सफेद होता है परन्तु वह ज्यों-ज्यों बढ़ती है त्यों-त्यों उसका रंग लाल होता जाता है। पूरी बढ़ी हुई सूड़ी की लम्बाई $\frac{1}{3}$ इंच होती है। यह कीड़ा कपास के कल्लों, कलियों,

फूलों, ढेढ़ियों तथा बीजों पर आक्रमण करता है और उनका बढ़ाव रोक देता है। रूई बदरंग हो जाती है और कम पैदा होती है। यह कीड़े अधिकतर वर्षा प्रारम्भ होने पर दिखाई देते हैं और इनके पतिंगे कपास के पौधों पर जगह-जगह अन्डे देते हैं। इन अन्डों से सूड़ियाँ निकल कर पौधों के सभी भागों में घुसना प्रारम्भ कर देती हैं। ढेढ़ी में जिस छेद से सूड़ी घुसती है वह शीघ्र ही बन्द हो जाता है इसलिये स्वस्थ तथा रोगी ढेढ़ी में अन्तर मालूम करना कठिन है। सूड़ी पूरी तौर से बढ़ जाने के बाद निकल आती है और फूलों तथा पत्तियों में छिपकर विश्राम (Pupation प्यूपेशन) का समय बिताती है। एक सप्ताह इस प्रकार रह लेने के बाद पतिंगे निकलते हैं और वे पुनः अन्डे देना प्रारम्भ कर देते हैं। जाड़े का मौसम आने पर सूड़ियाँ विश्राम के लिये बाहर न निकल कर कपास के बीज में घुस जाती हैं और रूई के अगले मौसम तक उसी के अन्दर रहती हैं। इस प्रकार से बीजों द्वारा यह कीड़ा अगली फसल में फैल जाता है। इस बीमारी से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि कपास के बीज को कुछ थोड़ा गर्म करके तब बोया जाय। ऐसा करने से सूड़ियाँ अन्दर ही मर जाती हैं और अगली फस्ल के समय उनकी सन्तानोत्पत्ति नहीं होती। बीज को गर्म करने के लिये मई मास की कड़ी धूप में पक्के फर्श पर पाँच घन्टे के लिये बीज को पतली तह में बिछा देना चाहिये। इस उपाय से सूँड़ियाँ तो मर जाती हैं किन्तु बीज के जमने में कोई अन्तर नहीं पड़ता। जिस फस्ल में यह कीड़े लग चुके हों, उस खेत की सारी सूखी टहनियों, पत्तों, फूलों, फलों को एकत्रित करके सबको जला देना चाहिये।

नं० २. कपास की रंगीन सूड़ी—यह कीड़ा छोटे, हल्के हरे रंग के पतिंगे से पैदा होता है। पतिंगों के पंखों की चौड़ाई लगभग १ इंच होती है। इनसे पैदा होने वाली सूड़ियाँ लगभग ¾ इंच लम्बी होती हैं और पूरे बढ़ जाने पर उनका रंग हरा होता है। इनका शरीर छोटे-छोटे परन्तु मजबूत कटीले रूयें से ढका रहता है और जिन पर काले धब्बे भी होते हैं। यह कीड़ा कपास के अतिरिक्त भिन्डी के पौधों पर भी आक्रमण करता है और पौधों के विभिन्न भागों में छेद करके घुस जाता है। ऐसे पौधे या तो मर जाते हैं और या उनका बढ़ाव बिलकुल रुक जाता है। यह कीड़ा कपास, भिन्डी एवं कुछ अन्य पौधों पर आक्रमण करके लगभग साल भर सक्रिय रहता है और साल भर में इसकी कई पुश्तें पैदा हो जाती हैं।

इस बीमारी के रोक-थाम के लिये सभी ऐसे पौधों को नष्ट करते रहना चाहिये जिस पर इन कीड़ों का आक्रमण हो चुका हो। फसल कट जाने के बाद सभी सूखी पत्तियों, फूलों, फलों तथा डंठलों को खेत में ही चला देना चाहिये। पौधों के जड़ों को भी जड़ से उखाड़ देना चाहिये जिससे वे फिर पनपने न पावें।

कीड़ों के लग जाने पर ५ प्रतिशत वाला डी० डी० टी० गेमेक्सेन में मिलाकर छिड़कने से भी फस्ल की रक्षा की जा सकती है।

नं० ३. कपास का पत्ती-मोड़ कीड़ा——यह कीड़ा एक छोटे पीले रंग के पतिंगे से पैदा होता है। इस पतिंगे के पंखों की चौड़ाई आधा इंच होती है और उन पर गहरे रंग की टेढ़ी-मेढ़ी लाइनें बनी रहती हैं। छोटी सूड़ियाँ पत्तों के नीचे चिपक कर उन्हें खाती हैं परन्तु बड़ी सूड़ियाँ पत्तों को अपने ऊपर मोड़ कर उन्हें भीतर ही भीतर खाया करती हैं। इस प्रकार से या तो वे कुल पत्तियाँ खा लेती हैं या इतना बड़ा छेद कर देती हैं कि वे पत्तियाँ स्वयं गिर जाती हैं। पतिंगे पत्तियों के नीचे अंडा देते हैं जिनमें से चार-पाँच दिन में सूड़ियाँ निकल आती हैं। यह सूड़ियाँ लगभग १५ दिन में पूरी बढ़ जाती हैं और इनका रंग गुलाबी हो जाता है। सूड़ियाँ अपने विश्राम का समय या तो मुड़ी हुई पत्तियों में बिताती हैं या भूमि पर गिरे हुये पत्तों के नीचे।

इस बीमारी के रोक-थाम का उपाय यह है कि ऐसे सभी पत्ते, जिनको सूड़ियों ने मोड़ दिया है, तोड़ कर जला दिये जायँ। यदि कीड़े बहुत संख्या में लग गये हों तो फस्ल पर १ और ८ के अनुपात में सोडियम फ़्लोसिलिकेट और राख के बारीक मिश्रण को छिड़कने से लाभ होगा। जिन फस्लों पर इस कीड़े का आक्रमण हो चुका है उनके कट जाने पर खेत को सींच कर गहरे मिट्टी पलटनेवाले हल से जोत देना चाहिये जिससे कि सूड़ियाँ भूमि के अन्दर दब जायँ।

नं० ४. कपास का हरा कीड़ा——यह बहुत ही छोटा कोमल केवल आधा इंच लम्बा रस चूसने वाला कीड़ा है। इसका रंग गर्मियों में हरा या पीला होता है किन्तु जाड़े में बादामी हो जाता है। इसके पंखों पर बड़ा काला धब्बा होता है। इसके निम्फ़ (बच्चे) बड़े कीड़ों के ही आकार-प्रकार के होते हैं परन्तु उनका रंग सभी मौसमों में हरा या पीला रहता है और वे या तो पंखहीन होते हैं या बहुत छोटे पंखों वाले होते हैं। इस कीड़े से कपास को बहुत हानि पहुँचती है। यह पत्तियों से रस को चूस लेते हैं जिसके फलस्वरूप पत्तियाँ पीली या बादामी पड़ जाती हैं और टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती हैं। पौधों का बढ़ाव रुक जाता है और उनमें फल-फूल नहीं लगता है। इस कीड़े से बचने का उपाय यही है कि साढ़े बारह सेर प्रति एकड़ के हिसाब से ५ प्रतिशत वाला डी० डी० टी० पाउडर छिड़क दिया जाय। कृषि-विभाग ने कपास की कुछ ऐसी जातियाँ निकाली हैं जिनके पत्तों पर रोयें होने के कारण यह कीड़े आक्रमण नहीं कर पाते।

बाजरा, ज्वार और मक्का की बीमारियाँ

१. ज्वार, बाजरा और मक्का में छेद करने वाली सूड़ी——यह सूड़ी पीले भूरे रंग के पतिंगे से उत्पन्न होती है। पूरे बढ़े हुये सूड़ी का रंग भी भूरा

ही होता है। इसका सिर काला होता है और इसकी पीठ पर चार लम्बी बादामी रंग की धारियाँ होती हैं। यह लगभग १ इंच लम्बी होती है। यह पत्तियों को खाती है और तनों में छेद करती है तथा भुट्टों में घुस कर पकते हुये दानों को भी खा जाती है। छोटे पौधों पर जब आक्रमण होता है तो प्रायः वे सूख जाते हैं। किन्तु बड़े पौधों का भी बढ़ाव रुक जाता है और उनमें दाने ठीक से नहीं पड़ते हैं।

इसकी रोक-थाम का कोई संतोषजनक उपाय नहीं है। जिन खेतों में यह बीमारी लगी हो उनकी सभी सूखी पत्तियों तथा डंठलों को फूँक देना चाहिये और गहरे मिट्टी पलटने वाले हल से जोत देना चाहिये। फस्ल को घना बोना चाहिये जिससे कि उन पौधों को जिनपर आक्रमण हुआ हो नष्ट कर देने पर भी काफ़ी पौधे बच रहें।

२. **बालों वाली सूड़ी**—इसे कटरा भी कहते हैं। यह दूसरे प्रकार की सूड़ी है जो ज्वार, बाजरा और मक्के की फस्लों को हानि पहुँचाती है। इन फस्लों के अतिरिक्त यह सनई, धान, बरसीम, मूँग, उरद, तिल इत्यादि को भी हानि पहुँचाती है। इस सूँड़ी की उत्पत्ति पीले या हल्के गुलाबी पतिंगे से होती है जिसके पंखों पर काले धब्बे या धारियाँ होती हैं। पतिंगों का शरीर नीचे की ओर लाल होता है और इसकी लम्बाई ३/४ इंच होती है। सूँड़ियाँ पत्तों पर हमला करके पौधों को लगभग बिना पत्ते का कर देती हैं।

इस कीड़े की रोक-थाम खेत में १७½ सेर गैमेक्सेन पाउडर प्रति एकड़ छिड़क कर की जा सकती है। प्रारम्भ में यदि अन्डों व सूड़ियों को दिखलाई देते ही इकट्ठा करके नष्ट कर दिया जाय तो यह बढ़ने नहीं पाते। इसके पतिंगे प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं, इसलिये इनको मारने का यह भी सरल उपाय है कि खेत के बीच में रात के समय एक तेज प्रकाश जला कर एक ऐसे चौड़े मुँह के बरतन में रख दिया जाय जिसमें पानी के साथ मिट्टी का तेल मिला हुआ भरा हो। पतिंगे प्रकाश से आकर्षित होकर आवेंगे और मिट्टी के तेल से मिले हुये पानी में गिर कर मर जायँगे।

३. **ज्वार में स्मट या अगिया की बीमारी**—यह ज्वार की सबसे हानिकर बीमारी है। यह एक प्रकार के फंगस से फैलती है। पौधे में से जब तक भुट्टे नहीं निकलते तब तक इस बीमारी का कोई संकेत नहीं मिलता। दाने बालियों में कुछ बड़े हो जाते हैं। उनके अन्दर काले पाउडर की तरह स्पोर भर जाता है जो दँवाई के समय फूट कर बाहर निकल आता है और पूरी पैदावार को दूषित कर देता है। इस प्रकार से यह साल के बाद साल एक फसल से दूसरी फसल में फैलता रहता है।

चूँकि यह बीज से फैलने वाली बीमारी है, इसलिये इसकी रोक-थाम

बीज के बारे में सावधानी बरतने से की जा सकती है। ऐसे खेतों का ही बीज बोना चाहिये जिसमें यह बीमारी न लगी हो। यदि यह सम्भव न हो तो बीज को बोने के पहिले ऐग्रोसेन जी० एन० से १० तोला प्रति मन के हिसाब से मिला कर शुद्ध कर लेना चाहिये।

सरसों की बीमारियाँ

नं० १. माहू—माहू कई प्रकार के होते हैं और कई प्रकार की फस्लों पर आक्रमण करते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के माहुओं का रंग भी भिन्न-भिन्न होता है। सरसों का माहूँ छोटा मोटा हल्के हरे रंग का रस चूसने वाला कीड़ा है जिसकी लम्बाई $\frac{1}{10}$ से $\frac{1}{8}$ इंच तक होती है। कुछ बड़े माहुओं के लम्बे सफेद पंख भी उग आते हैं परन्तु कुछ पंखहीन ही रह जाते हैं। मांहू के बच्चे पंख विहीन होते हैं। किन्तु और हर प्रकार से बड़े माहुवों के समान ही होते हैं। इनके झुंड के झुंड पत्तियों और तनों पर चिपक कर उसका रस चूसते रहते हैं। जिसके फलस्वरूप पौधे बदरंग हो जाते हैं, उनका बढ़ाव रुक जाता है और अंत में सूख जाते हैं। इन कीटों से एक चिपचिपा रस भी निकलता रहता है जो मीठा होता है और जिसमें प्रायः चीटियाँ लग जाया करती हैं।

इस कीड़े से बचने के लिये निकोटीन सल्फेट को ५०० गुना पानी और तीन गुना साबुन में घोलकर पौधों पर छिड़कना चाहिये।

नं० २. सरसों का काला कीड़ा—यह एक उड़नेवाला ततैये के किस्म का कीड़ा है। यह मक्खी से कुछ बड़ा होता है। शरीर का रंग नारंगी किन्तु शिर और पंख काले होते हैं। इसकी सूड़ी काले रंग की होती है, शरीर पर झुर्रियाँ और पाँच लम्बी धारियाँ होती हैं। पूरा बढ़ने पर इसकी लम्बाई आधी इंच होती है। कीड़ा स्वयं हानि नहीं पहुँचाता है परन्तु सूड़ियाँ सरसों तथा सरसों की जाति के पौधों के लिये हानिकर हैं। यह पत्तों में छेदकर उन्हें खा जाते हैं। जिन पत्तों में अधिक छेद हो जाते हैं वे सूख जाते हैं और उनका बढ़ाव रुक जाता है। यदि दाना पड़ते समय इन सूड़ियों का आक्रमण होता है तो फस्ल लगभग नष्ट हो जाती है।

इनसे बचने के लिये सूड़ियों के दिखाई देते ही इन्हें पकड़ कर नष्ट कर देना चाहिये। यदि कीड़े अधिक संख्या में उत्पन्न हो गये हों तो फस्ल पर लेड आर्सिनेट दवा छिड़ककर इन्हें नष्ट किया जा सकता है। लेड आर्सिनेट का घोल १ छटाँक लेड आर्सिनेट, १॥ छटाँक चूना, ३ छटाँक गुड़ और २० सेर पानी मिलाकर तैयार कर लेना चाहिये।

चने की बीमारियाँ

नं० १. चने की सूंड़ी—यह कीड़ा गेहुँये रंग के तितली से उत्पन्न होता है। तितली के पंख डेढ़ इंच से सवा दो इंच चौड़े होते हैं और उनके

पंख पर काले रंग के धब्बे होते हैं। पूरी बढ़ी हुई सूड़ी की लम्बाई १।। से १।।। इंच होती है । रंग बादामी, शरीर छूने में बहुत ही चिकना होता है। यह कीड़ा चने, आलू, तम्बाकू और गेहूँ के फस्लों को नुकसान पहुँचाता है, जब यह छोटे रहते हैं तब पत्तियाँ चबाते हैं किन्तु बड़े होने पर यह पौधों को भूमि की सतह पर काट कर गिरा देते हैं इसीलिये इनको अंग्रेज़ी में 'कटवर्म' कहते हैं। यह जितना खाते नहीं उससे ज़्यादा पौधों को काट कर हानि पहुँचाते हैं। अधिकतर नुकसान यह रात के समय करते हैं और दिन को छिप कर बैठ रहते हैं।

इस कीड़े की रोक-थाम गेमेक्सेन पाउडर छिड़क कर की जा सकती है। जहाँ तक सम्भव हो गेमेक्सेन को पौधों की जड़ों के सन्निकट ही छिड़कना चाहिये। इनको मारने का दूसरा उपाय यह है कि २५ सेर भूसी या चोकर में १ सेर सोडियम फ्लोसिलिकेट, २।। सेर गुड़ और आवश्यकतानुसार पानी मिलाकर विषैला चारा तैयार करके खेत में बिखेर दिया जाय।

नं० २. छेदा——यह कीड़ा एक हल्के बादामी रंग की तितली से उत्पन्न होता है। इसके पंखों की चौड़ाई डेढ़ इंच होती है और इन पर छोटे काले निशान होते हैं। पूरी बढ़ी हुई सूँड़ी की लम्बाई दो इंच, रंग हरा या बादामी और गहरे रंग की पीठ पर धारियाँ होती हैं। यह कीड़ा चने, कपास, अरहर और मक्का इत्यादि पर आक्रमण करके उन्हें हानि पहुँचाता है। यह पहले पत्तियों को खाता है उसके बाद छीमी में छेद करके दाने को खा-जाता है। इसीलिये इसको छेदा भी कहते हैं।

इसको नष्ट करने के लिये ५ प्रतिशत वाला डी. डी. टी. खेत में छिड़कना चाहिये। सोडियम फ्लोसिलिकेट को दस गुना राख से मिलाकर छिड़कने पर भी लाभ होता है।

तम्बाकू की बीमारियाँ

नं० १. तम्बाकू की सूंड़ी——यह सूड़ी एक भूरे शरीर की तितली से उत्पन्न होती है। इस तितली के अगले पंख गहरे बादामी रंग के होते हैं जिनमें हल्के रंगों में कई दाग होते हैं और जिनकी चौड़ाई लगभग १।। इंच होती है। पीछे के पंख प्रायः बिल्कुल सफेद होते हैं। सूड़ी जिस समय पैदा होती है इसकी लम्बाई १/१६ इंच होती है किन्तु बाद में बढ़कर १।। से १।।। इंच हो जाती है। बड़ी सूड़ी का रंग काला भूरा और नारंगी मिला हुआ होता है। यह तम्बाकू के अतिरिक्त अन्य कई फस्लों, जैसे फूलगोभी, एरंड, लूसर्न, मक्का, अरहर, मूँगफली और आलू पर भी आक्रमण करता है। मुख्यतः यह एरण्ड तथा तम्बाकू पर अधिक आक्रमण करता है। यह अधिकतर रात में ही सक्रिय रहता है, दिन

को बहुत कम दिखाई देता है। यह पत्तियों को खाता है और पौधों को पत्र-विहीन कर देता है। और कभी-कभी पौधों की टहनियों में छेद भी कर देता है।

इसके रोकथाम के लिये पौधों की जड़ों के पास ५ प्रतिशत वाला डी. डी. टी. पाउडर छिड़कना चाहिये। दूसरा उपाय यह है कि २५ छटाँक लेड् आर्सिनेट, ३७॥ छटाँक चूना, ७५ छटाँक गुड़ को १०० गैलन पानी में मिलाकर फस्ल पर छिड़कना चाहिये।

नं० २. तने में छेद करने वाला कीड़ा——यह कीड़ा तम्बाकू के तनों में छेद कर देता है जिसके फलस्वरूप पौधे सूख कर मर जाते हैं। यह अपने अन्डे पत्तों पर देता है। इसका पहिला आक्रमण पत्तियों पर ही होता है। पत्तियों के डंठल में छेद करता हुआ यह तने में पहुँच जाता है।

ज्यों ही यह कीड़ा पत्तों को चबाना शुरू करे त्यों ही यदि गेमेक्सेन पाउडर फस्ल पर छिड़क दिया जाय तो इस कीड़े को नष्ट किया जा सकता है।

नं०३. बीयड़ में तम्बाकू के पौधों का सूख जाना——यह फंगस की बीमारी है। इसके लगने पर तम्बाकू के पौधे बीयड़ में ही सूखने लगते हैं। इससे बचने के लिये ६४ वर्ग फीट के बीयड़ में बीज डालने के पहले १। सेर पेरीनाक्स दवा को ५० गैलन पानी में घोलकर छिड़क देना चाहिये। पौधों के उग आने पर दस-दस दिन का अन्तर देकर बीयड़ को इसी प्रकार के घोल से छिड़कते रहना चाहिये।

अध्याय १३

धरती से धन

संसार में जो कुछ भी चलते-फिरते, चेतन या जड़ पदार्थ हमको दिखाई पड़ते हैं, उन सबको जीवन और शक्ति सूर्य के प्रकाश से ही मिलती हैं। यदि सूर्य का प्रकाश न हो या उस प्रकाश से शक्ति या भोजन-सामग्री उत्पन्न करने के लिये पृथ्वी पर कोई साधन न हों तो यह पृथ्वी एक निर्जीव पत्थर के समान हो जाय। पशु-पक्षी और मनुष्य, सभी अपनी चलायमान शक्ति सूर्य से प्राप्त करते हैं। बहुत से लोग जिनको वनस्पति-शास्त्र के अध्ययन करने का अवसर नहीं मिला है, वे पूछ सकते हैं कि सब अपनी शक्ति इस प्रकार सूर्य के प्रकाश से कैसे प्राप्त करते हैं।

पृथ्वी के सभी छोटे-बड़े वृक्षों तथा फसलों की पत्तियों में एक हरे रंग का रस होता है जिसे क्लोरोफिल कहते हैं। सूर्य के प्रकाश की ही सहायता से क्लोरोफिल द्वारा पौधों के सभी पोषक तत्त्वों तथा उनके सारे अंग-प्रत्यंग की रचना होती है। इन्हीं पौधों की हरी पत्तियों द्वारा लाखों-करोड़ों वर्ष पहले भूगर्भ में जो कोयला और पेट्रोल जमा हो गया था उसी की ताकत से आज मशीनें और एंजिन चलते हैं और वर्तमान समय में भी इन्हीं वृक्षों और पौधों की पैदावार से सारे प्राणी जीवित हैं और चलते-फिरते दिखाई देते हैं। यदि यह पृथ्वी हरे रंग के पौधों से ढकी न रहे और पत्ती के अन्दर जीवनदायिनी हरे रंग का रस (क्लोरोफिल) बराबर सूर्य के प्रकाश में उसकी शक्ति से भोजन-सामग्री का संचय न करता रहे तो कोई भी जीवधारी या निर्जीव वस्तु हम लोगों को चलायमान न दिखाई पड़े।

अतः यह सिद्ध होता है कि हम उतना ही शक्तिशाली, धनवान्, समृद्ध या सुखी हो सकते हैं जितना सूर्य की किरणों की शक्ति हरे रंग की पत्तियों द्वारा संचय कर लें। जितने दिन, जितने घंटे, जितने महीने सूर्य की रोशनी हरी फसलों या वृक्षों के पत्तों पर पड़ती रहे उतना ही सूर्य की शक्ति से हम लाभ उठा सकते हैं। जो सूर्य की किरणें खाली खेत पर, पक्की दीवारों पर या पत्थरों पर पड़ती हैं वे केवल थोड़ी गर्मी भर पैदा करती हैं और रात में इस संसार को बिना कुछ लाभ पहुँचाये हुये वह गर्मी भी गायब हो जाती है। जो सूर्य का प्रकाश हरी पत्ती पर पड़ता है केवल वही जीवन और शक्ति देनेवाला है।

हमको विचार केवल यह करना है कि हम अपने देश की भूमि को किस प्रकार हर महीने और हर समय हरे रंग के पौधों और वृक्षों से ढके रहें ताकि अधिक से अधिक सूर्य की जीवन प्रदान करनेवाली शक्ति हम इकट्ठा कर सकें और हर प्रकार देश को सुखमय बनायें।

यदि हम सुखी और समृद्धिशाली होना चाहते हैं तो सूर्य की किरणों द्वारा जो यह खाद्य पदार्थों और धन की वर्षा बराबर पृथ्वी पर हो रही है, उसको अधिक से अधिक मात्रा में इकट्ठा करने का प्रयत्न करें।

भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से भूमि को धरती माता कहते आये हैं। सचमुच यह माता के समान ही है, क्योंकि संसार के सभी जीवों का पालन-पोषण धरती माता ही करती हैं। कुछ पुराने लोग धरती को पारस पत्थर भी कहते हैं, जिसमें लोहा छू जाने से सोना हो जाता है। वास्तव में ऐसा कोई पत्थर है, इसमें तो बहुत सन्देह है। परन्तु धरती अवश्य ही पारस पत्थर के समान है, क्योंकि इसमें लोहे के कुदाल, हल इत्यादि से यदि काम किया जाये तो यह सोना उगलती है। यदि बुद्धिमानी के साथ परिश्रम किया जाय तो एक एकड़ भूमि से कहीं-कहीं तो दो तीन हजार रुपये तक एक साल में कमाया जा सकता है। परन्तु यह भी देखा गया है कि मेहनत न करनेवाले लोगों को किसी-किसी साल १०० रुपये प्रति एकड़ भी कमाना कठिन हो जाता है। ऐसे किसानों के खेत बहुधा एक-फसली होते हैं और साल में आठ महीने इनके खेत खाली रहते हैं और सूर्य का प्रकाश खाली खेतों पर वृथा ही चमकता है।

मैं इस लेख में उन किसानों के बारे में कुछ नहीं कहना चाहता हूँ जो कि साल में केवल एक ही साधारण फसल लेते हैं और एक एकड़ भूमि से कभी-कभी १०० रुपये का भी खाद्य पदार्थ नहीं पैदा कर सकते। इस श्रेणी में बहुधा वे किसान आते हैं जिन्होंने धरती माता के धन को अपनाने का प्रयत्न नहीं किया और धरती को भूखा रक्खा और स्वयं भूखे हैं। दूसरी तरफ़ ऐसे कृषक हैं, जो एक साल के अन्दर ही चार-चार भारी फसलें लेकर खेत में खूब खाद और पानी का प्रयोग करके अधिक से अधिक अन्न उपजाते हैं। इनके खेत बहुत कम खाली रहते हैं। ऐसे ही किसान भारतमाता के असली सपूत और धरती के धन के सच्चे अधिकारी हैं। ऐसे ही धरती के सपूतों ने उत्तर-प्रदेश में ७०० मन से अधिक आलू, ५५ मन से अधिक गेहूँ, प्रति एकड़ पैदा करके दिखला दिया।

मैं कुछ ऐसे ही खेती के ढंग का वर्णन करना चाहता हूँ जिससे कि अधिक से अधिक खाद्य पदार्थ पैदा किया जा सके। और साल के अन्दर ही एक के बजाय दो-तीन या चार फसलें लेकर देश को सम्पन्न बनाया जा सके।

हमारे यहाँ गन्ना बोने से पहले खेत को बरसात और जाड़ों में खाली रखने की प्रथा है, जिसको गाँव में अठमास कहते हैं। ऐसे खेतों में भी बजाय खेत को खाली रखने के गर्मियों में सिंचाई करके मूँग नं० १ की ६५ दिनवाली फसल जून महीने से पहले-पहले तैयार की जा सकती है।

बरसात में उस खेत से सन की फसल ली जाती है जो दो सौ २००) से दो सौ पचास २५०) रु० प्रति एकड़ की सन की पैदावार किसान को देगी और मूंग व सन दोनों फलीदार फसलें खेत की उर्वराशक्ति को बढ़ायेंगी। सन के पश्चात् यदि सितम्बर के अन्त में लाही की फसल बो दें तो यह दिसम्बर के अंत में या जनवरी के आरम्भ में तैयार हो जायेगी। इसके पश्चात् खेत को जोतकर उसमें खूब खाद-पाँस डालकर गन्ना बोने के लिये तैयार कर लिया जाये। जनवरी के अन्तिम सप्ताह में खेत में चेना सावाँ बोकर और उसमें तीन-तीन फीट के फासले पर सीधी लाइन डालकर यदि गन्ना बो दिया जाये तो जब तक गन्ने की फसल उगेगी और दो चार पत्तियाँ निकलेंगी तब तक सावाँ की फसल तैयार हो जायेगी। मार्च के अन्त में चेना सावाँ की फसल काटकर गन्ने की खूब गुड़ाई करके और उसमें कुछ खली और सलफेट अमोनिया की खाद डालकर सिंचाई कर दी जाये तो गन्ने की फसल बहुत अच्छी होती है। इस तरह सावाँ के बाद गन्ने की फसल मैंने ७०० से ८०० मन के बीच प्रति एकड़ पैदा होते देखी है। जहाँ केवल गन्ने की तैयारी में साल भर खेत बेकार जोते जाते हैं, वहीं गन्ना पैदा करने के पहिले आप मूँग, सन, लाही और सावाँ की चार फसलें ले सकते हैं और गन्ने की पैदावार में किसी प्रकार की कमी भी नहीं आ सकती।

दूसरा ढंग चार फसलें लेने का यह है कि मूँग की एक फसल गर्मी में अप्रैल से जून तक और एक वर्षा ऋतु में पहले दो महीनों में लेकर उसमें जल्दी तैयार होनेवाला साठा आलू सितम्बर के महीने में बो दिया जाये। आलू जब उग आये और उसमें मिट्टी चढ़ा दी जाये और फसल तैयार होने के लिये छोड़ दी जाये तब अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में या नवम्बर के प्रथम सप्ताह में जो आलू के लाइन के बीच में नालियाँ होती हैं उनके अन्दर की मिट्टी बारीक करके गेहूँ बो दिया जाये तो एक साल के अन्दर दो फसलें मूँग की, एक आलू की और एक गेहूँ की तैयार हो सकती है। यह सब मिलाकर जो पैदावार हम इस समय ले रहे हैं उसकी तीन या चार गुना पैदावार होगी। कानपुर कृषि कालेज में लड़कों ने जुलाई में मूँग बोया जिसकी पैदावार सितम्बर के पहले सप्ताह में ९ मन प्रति एकड़ हुई व साठा आलू सितम्बर के अन्तिम पक्ष में बोया और अक्तूबर में उस आलू पर मिट्टी चढ़ाकर तैयार होने के लिये छोड़ दिया और नवम्बर के पहिले ही सप्ताह में आलू की मेंड़ों की बीच की

नालियों में गेहूँ बो दिया। आलू की पैदावार ९६ मन प्रति एकड़ और गेहूँ की १७ मन ३० सेर प्रति एकड़ हुई। इस प्रकार जुलाई से अप्रैल के बीच विद्यार्थियों ने लगभग १२०० रुपये की खाद्य सामग्री व चारा एक एकड़ से पैदा किया।

तीसरा ढंग साल में चार फसलें लेने का यह हो सकता है---वर्षा आरम्भ होने पर मक्का की फसल बो दें और उसके तैयार होने पर आलू बो दें और आलू की फसल लेकर फरवरी में चेना सावाँ बो दें और गर्मी में सिंचाई करके मूँग नं० १ की फसल बरसात प्रारम्भ होने से पहले ही ले लें। यह सब मिला कर एकफसली खेत से कई गुना पैदावार दे जायेंगे।

अन्य देशों से तुलना

हमारे उत्तर-प्रदेश में लगभग ४ करोड़ एकड़ में खेती होती है और कुल जन-संख्या लगभग ६ करोड़ ३० लाख है। अर्थात् दो एकड़ खेत से लगभग ३ आदमियों के लिये खाद्य पदार्थ उत्पन्न होता है। परन्तु जापान में केवल एक करोड़ ४६ लाख एकड़ में खेती होती है और वहाँ की जनसंख्या ८ करोड़ २० लाख है। अर्थात् जापान में २ एकड़ से ११ आदमियों के लिये भोजन-सामग्री उत्पन्न की जाती है। जापान में किसान खेतों में खाद डालने, उनकी उर्वराशक्ति बढ़ाने, बढ़िया से बढ़िया बीज बोने तथा अधिक से अधिक फसल लेने पर इतना ध्यान देते हैं कि उनकी औसत पैदावार हमारी औसत पैदावार से कई गुना ऊँची है। यदि हमारे किसान भी इस ओर पूरा ध्यान दें तो कोई कारण नहीं है कि हम जापान की सी पैदावार न कर सकें। हमारे देश में बहुत से ऐसे अच्छे कृषक हैं, जो जापान के कृषकों के बराबर ही पैदा कर लेते हैं और कोई-कोई तो उनसे भी बढ़ जाते हैं। परन्तु इस देश के अधिकांश कृषक ऐसा नहीं करते।

यह सब किसानी की क्रियायें अनोखी मालूम होती हैं, परन्तु किसी न किसी रूप में हमारे प्रान्त में ही किसान लोग ऊपर बताये हुये ढंग से बहुत जल्दी-जल्दी फसलें तैयार करके थोड़ी खेती से अधिक पैदावार लेकर देश की महान् सेवा कर रहे हैं।

अभी तक जो मैंने खेती के ढंग बताये हैं उनमें अधिक अन्न और आलू पैदा करने की ही योजना है। परन्तु तरकारी और गन्ना पैदा करनेवाले किसान भी धरतीमाता की सेवा करके उससे अधिक से अधिक धनोपार्जन करते हैं। कुछ किसान गर्मी और बरसात में अरुई की फसल लेकर जाड़ों में आलू की फसल लेते हैं और दोनों फसलें मिलाकर उनकी आय लगभग दो हजार रुपये प्रति एकड़ हो जाती है।

तरकारियाँ

पपीता, केला, जमीकन्द (कान्द), शकरकन्द, कद्दू, लौकी, फूलगोभी तथा पातगोभी इत्यादि की पैदावार भी प्रति एकड़ बहुत होती है और एक ही एकड़ से किसान हजारों रुपया कमा सकते हैं। गन्ने की पैदावार १८०० से २१०० मन प्रति एकड़ तक हमारे ही प्रान्त में हो चुकी है।

यदि हम चाहें तो खाद और पानी का उत्तम प्रबन्ध करके अपनी बुद्धि और परिश्रम के बल से ऐसी ही फसलें लेकर अपने आपको तथा अपने देश को पूर्णतया सम्पन्न बना सकते हैं। यदि हम ऐसा करेंगे तो धरतीमाता के धन को पूर्णतया प्राप्त कर सकेंगे तथा उसके सच्चे उपासक कहलाने के अधिकारी बन सकेंगे।

अध्याय १४

कृषि-उपयोगी अन्य बातें

नक्षत्र

कृषि का नक्षत्रों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। नक्षत्र २७ होते हैं। सूर्य को एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र तक पहुँचने में लगभग १४ दिन लगते हैं। नक्षत्रों के समय की सूची नीचे दी हुई हैः—

नाम नक्षत्र	तारीखें जिनके क़रीब नक्षत्र आरम्भ होते हैं
१ अश्विनी	१३ अप्रैल
२ भरणी	२७ ,,
३ कृत्तिका	११ मई
४ रोहिणी	२५ ,,
५ मृगशिरा	८ जून
६ आर्द्रा	२२ ,,
७ पुनर्वसु	६ जुलाई
८ पुष्य	२० ,,
९ अश्लेषा	३ अगस्त
१० मघा	१७ ,,
११ पूर्वाफाल्गुनी	३१ ,,
१२ उत्तराफाल्गुनी	१३ सितम्बर
१३ हस्त	२७ ,,
१४ चित्रा	१० अक्तूबर
१५ स्वाती	२४ ,,
१६ विशाखा	६ नवम्बर
१७ अनुराधा	१९ ,,
१८ ज्येष्ठा	२ दिसम्बर
१९ मूल	१६ ,,
२० पूर्वाषाढ़	२९ ,,
२१ उत्तराषाढ़	११ जनवरी
२२ श्रवण	२४ ,,
२३ धनिष्ठा	६ फरवरी

नाम नक्षत्र	तारीखें जिनके करीब नक्षत्र आरम्भ होते हैं
२४ शतभिषा	१६ फरवरी
२५ पूर्वा भाद्रपदा	३ मार्च
२६ उत्तरा भाद्रपदा	१६ ,,
२७ रेवती	३० ,,

अँग्रेजी तारीखें और हिंदी के नक्षत्र सूर्य की चाल पर निर्भर हैं इसलिये फ़सलों की बोआई तथा अन्य कृषि-कार्य नक्षत्रों से या अँग्रेजी तारीखों से ही करना चाहिये। हिंदी के महीने चन्द्रमा की चाल पर होते हैं और इनकी तिथियों पर खेती करनेवाले कभी-कभी समय से बहुत पहिले फ़सल बो देते हैं और किसी-किसी साल बहुत पिछड़ जाते हैं। बहुत से किसान गेहूँ दिवाली पर बोना चाहते हैं। परन्तु दिवाली किसी साल बहुत जल्द १८ अक्तूबर को ही पड़ जाती है और किसी साल बहुत देर १३ नवम्बर को होती है। गेहूँ बोने का सबसे अच्छा समय चित्रा का अन्तिम हिस्सा और स्वाती नक्षत्र है। यानी अक्तूबर महीने का अन्तिम सप्ताह या नवम्बर का पहिला सप्ताह है। इसी तरह खेती की जितनी क्रियायें हैं, सब या तो अँग्रेजी तारीखों से या हिंदी नक्षत्रों से होनी चाहिये। हिंदी के महीनों से खेती के काम कभी नहीं करना चाहिये। बहुत जल्दी या बहुत देर से बोने में फ़सलों को बड़ी हानि होने का भय रहता है।

घाघ की कृषि संबन्धी कहावतें

गेहूँ बाहा धान गाहा, ऊख गोड़ाई से है आहा ॥ १ ॥

गेहूँ के खेत को बारम्बार जोतने से और धान उग आने पर जोतने (बिदाहने) से पैदावार खूब होती है। गन्ने के खेत को कई बार गोड़ने से पैदावार बढ़ जाती है।

मैदे गेहूँ ढेले चना × × × ॥२॥

गेहूँ के खेत की मिट्टी जोतकर मैदे के समान महीन करने से और चने के खेत में ढेला रहने से पैदावार खूब होती है।

गेहूँ भवा काहें, असाढ़ के दो बाहें ॥३॥

अषाढ़ के महीने में गेहूँ के खेत को दो बार जोत देने से इसकी पैदावार बहुत बढ़ जाती है।

गेहूँ भवा काहें, सोलह बाहें नौ गाहें ॥४॥

सोलह बार जोतने से और नौ बार पाटा देने (हेंगाने) से गेहूँ खूब पैदा होता है।

गेहूँ बाहें, धान बिदाहें ॥५॥

बार-बार जोतने से गेहूँ और उग आने पर जोतने से (बिदाहने से) धान की उपज अच्छी होती है।

पछुवाँ हवा ओसावै जोई, घाघ कहै घुन कबहुँ न होई ।।६।।

घाघ कहते हैं कि जो अनाज पछुवा हवा में ओसाया जाता है उसमें घुन कभी नहीं लगता है। यानी खूब सूखे हुए गेहूँ में घुन कभी नहीं लगता।

गोहूँ गेरुई गाँधी धान, बिना अन्न के मरा किसान ।।७।।

यदि गेहूँ में गेरुई और धान में गंधी मक्खी लग जाय तो फसल नष्ट हो जाती है, और पैदावार कुछ भी नहीं होती और किसानों पर बड़ी आपत्ति आ जाती है।

पुष्य पुनर्वसु तान वे तान
अशलेषा बित्ता परमान
मघा पूर्वा घोंघा फेर
तीनों काढो एकै सेर

अगहनी धान यदि पुष्य पुनर्वसु (जुलाई) में रोपे जायें तो दूर-दूर पौध लगानी चाहिये। अश्लेषा (अगस्त) के पहिले पखवारे में एक-एक बित्ता या नौ-नौ इंच पर पौध लगानी चाहिये। मघा पूर्वा नक्षत्रों में (अगस्त के दूसरे पक्ष में व सितम्बर के पहिले पक्ष में) ऐसा लगाना चाहिये कि धान के पौधों के बीच से घोंघा भी कठिनाई से निकल सके तब पैदावार लगभग एक समान होती है।

पानी बरसे आधे पूस, आधा गेहूँ आधा भूस ।। ८ ।।

पूस माह के मध्य में यदि वर्षा हो जाय तो गेहूँ और भूसा बराबर होते हैं। अर्थात् अनाज खूब पैदा होता है।

कातिक बोवे अगहन भरै, ताको हाकिम फिर का करै ।। ९ ।।

जो किसान कातिक में बोकर अगहन में फसलें सींच देता है उसके पैदावार खूब होती है और लगान आसानी से दे सकता है।

कातिक मास रात हर जोतौ, टाँग पसारे घर मत सूतौ ।। १० ।।

रबी बोने के लिये रात में खेत तैयार करना चाहिये क्योंकि धूप में जोतने से नमी निकल जायगी और बीज नहीं उगेगा। इस ऋतु में असावधानी न करना चाहिये।

जोते खेत घास ना टूटे, तेकर भाग साँझ ही फूटे ।। ११ ।।

जिस किसान के जोतने पर खेत की घास नष्ट नहीं हो जाती उसका भाग्य फूटा हुआ समझना चाहिये। जोताई ऐसी हो कि सब घास मर जाय। मिट्टी पलटनेवाले हल इसमें बहुत सफल हैं।

दस बाँहों का माड़ा, बीस बाँहों का गाँड़ा ।। १२ ।।

दस बाँह जोतने से गेहूँ और बीस बाँह जोतने से गन्ना खूब पैदा होता है।

गोबर, चोकर, चकवर, रूसा, इनको छाँड़े होय न भूसा ।। १३ ।।

खेत को अधिक उपजाऊ बनाने के लिये गोबर, चोकर, चकवड़ और अड़ूसे की पत्तियाँ डालनी चाहिये। इसके छोड़ने से भूसा नहीं होता अर्थात् अन्न की पैदावार बढ़ जाती है।

नीचें ओद ऊपर बदराई, घाघ कहै गेरुई अब धाई ।। १४ ।।

यदि खेत की मिट्टी गीली हो और आकाश में बादल घिर रहे हों तो गेरुई पैदा हो जाती है।

रोहिनि बरसे मृग तपे, कुछ-कुछ अद्रा जाय ।
कहै घाघ घाघिन सुनो, स्वान भात नहिं खाय ।। १५ ।।

यदि रोहिणी नक्षत्र में वर्षा हो, मृगशिरा में कड़ी धूप व गर्मी हो और आर्द्रा में भी कुछ दिन पानी न बरसे तो धान की पैदावार बहुत ही अधिक होती है। यहाँ तक कि कुत्ते भी भात खाते-खाते उकता जाते हैं।

सावन मास बहे पुरवाई, बरदा बेंचि लिहा धनु गाई ।। १६ ।।

यदि सावन मास में पूर्वा हवा चले तो समझ लेना चाहिये कि भारी अकाल पड़ेगा, वर्षा न होगी और न बैलों की जरूरत पड़ेगी। ऐसी दशा में बैल बेचकर गाय मोल ले लेना चाहिये।

धान पान उखेरा, तीनों पानी के चेरा ।। १७ ।।

धान, पान और गन्ना इन तीनों को बहुत पानी की आवश्यकता होती है।

पुरवा में जिन रोपो भइया, एक धान पर सोलह पइया ।। १८ ।।

भाई किसान ! पूर्वा नक्षत्र में धान मत रोपो नहीं तो एक धान में सोलह पइया होगी यानी पैदावार कुछ नहीं होगी।

अद्रा धान पुनर्वसु पैया, गया किसान जो बोवै चिरैया ।। १९ ।।

धान की बोवाई आर्द्रा नक्षत्र में करनी चाहिये, पुनर्वसु में बोने से पैया (भूसी) ही हाथ आयेगी और पुष्य नक्षत्र में तो बोना ही बेकार है।

खेते पाँसा जो न किसाना, उसके घरे दरिद्र समाना ।। २० ।।

जो किसान खेत में खाद नहीं डालता है उसके घर में दरिद्रता वास करती है अर्थात् खेत में खाद न डालनेवाला किसान सदा दरिद्र ही रहता है।

जब सैल खटाखट बाजे, तब चना खूब ही गाजे ।। २१ ।।

जिस खेत में इतने ढेले हों कि पाटा देते समय बैलों के जुए की सैलें खट-खट की आवाज देती रहें तो उस खेत में चना बोने से पैदावार अच्छी होती है।

खेती तो थोड़ी करे, मिहनत करे सिवाय ।
राम कहैं वहि मनुष को, टोटा कभी न आय ।। २२ ।।

थोड़े खेत रखकर उसी में खूब मेहनत से काम करना चाहिये । ऐसा करने से ईश्वर की कृपा से कभी हानि नहीं हो सकती है ।

तीन कियारी तेरह गोड़, तब देखो ऊखी कै पोर ।। २३ ।।

तीन बार सींचने और तेरह बार गोड़ने से गन्ने की पैदावार खूब होती है ।

सरसे अरसी, निरसे चना ।। २४ ।।

तरीवाले खेत में अलसी और सूखे खेत में चने की बुआई करनी चाहिये ।

बाड़ी में बाड़ी करे, करे ईख में ईख ।

वे घर यों ही जायँगे, सुनै पराई सीख ।। २५ ।।

जो किसान कपास के बाद कपास और ईख के बाद फिर ईख उसी खेत में बोता है और जो दूसरों की ही सलाह पर चलता है उसका घर आप ही आप बरबाद हो जाता है ।

बाँधा बछड़ा जाय मठाय, बैठा ज्वान जाय तुँदियाय ।। २६ ।।

यदि बछड़ा बाँधकर खिलाया जाय और काम न लिया जाय तो वह सुस्त हो जाता है । इसी प्रकार जवान आदमी बैठा रहे तो उसकी तोंद निकल आती है ।

रूँध बाँध के फाग दिखाये, सो किसान मोरे मन भाये ।। २७ ।।

गन्ने का होली के पहिले उग आना अच्छा है, इसलिये ईख कहती है कि मुझे वही किसान पसन्द है जो होली के पहिले रूँध बाँधकर मेरी रखवाली का प्रबन्ध कर डालता है ।

चना चित्तरा चौगुना, स्वाती गेहूँ होय ।। २८ ।।

चित्रा में चना और स्वाती में गेहूँ बोना चाहिये ।

छ छी भली जौ चना, छ छी भली कपास ।

जिनकी छ छी ऊखड़ी, उनकी छोड़ो आस ।। २९ ।।

जौ, चना और कपास का दूर-दूर (या बिड़र) होना अच्छा है । परन्तु बिड़र गन्ने की आशा करना बेकार है ।

खेती करै खाद से भरै, तौ सौ मन कोठिला में धरै ।। ३० ।।

खेती करना हो तो खेत को खाद से खूब पाँस देना चाहिये । ऐसा करने से अनाज खूब पैदा होता है और बखार भर जाता है ।

आधे हथिया मूरि मुराई, आधे हथिया सरसों राई ।। ३१ ।।

हस्त (हथिया) नक्षत्र के आरम्भ में मूली इत्यादि और अन्त में सरसों और राई इत्यादि बोने चाहिये ।

जेकरे खेत परा नहिं गोबर, वहि किसान को जानो दूबर ।।३२।।

खेत में गोबर न डालनेवाला किसान गरीब और दुबला रहता है।

बाहै क्यों न असाढ़ एक बार, अब क्यों बाहै बारम्बार ॥ ३३ ॥

हे किसान ! तुमने अपना खेत असाढ़ में एक बार क्यों नहीं जोत दिया, अब क्यों बारम्बार जोत रहा है ? असाढ़ के जोतने से घास मर जाती है।

छोटी नसी धरती हँसी × × ॥ ३४ ॥

हलकी नसी को छोटा देखकर धरती हँस देती है क्योंकि छोटी नसी से जोताई अच्छी नहीं होती।

हर लगा पताल, तो टूट गया काल ॥ ३५ ॥

खूब गहरी जोताई से अकाल का डर नहीं रहता।

जोंधरी जोतै तोर मड़ोर, तब वह डाले कोठिला फोर ॥ ३६ ॥

मक्के के खेत को जितना ही अधिक और गहरा जोता जाता है उतनी ही अधिक पैदावार होती है।

अगाई, सो सवाई ॥ ३७ ॥

आगे बोई हुई फसल सवा गुना अधिक होती है।

ऊख गोड़ि के तुरत दबावै, तो फिर ऊख बहुत सुख पावै ॥ ३८ ॥

यदि गन्ना गोड़कर तुरन्त ही ढेले फोड़ दिये जावें अर्थात् पाटा दे दिया जावे तो उससे बड़ा लाभ होता है।

हस्त बरसे तीन होयँ, साली सक्कर मास ॥
हस्त बरसे तीन जायँ, तिल कोदो कपास ॥ ३९ ॥

यदि हथिया नक्षत्र में वर्षा हो तो धान, ईख और उड़द की पैदावार खूब होती है, परन्तु तिल, कोदों और कपास को बहुत हानि होती है।

खेती पाती बीनती, औ घोड़े की तंग।
अपने हाथ सँवारिये, लाख लोग हों संग ॥ ४० ॥

किसानी करना, पत्र लिखना, किसी से कुछ माँगना और घोड़े की तंग कसना, ये चारों काम अपने ही करने से अच्छे होते हैं। इन कामों को लाखों आदमी होने पर भी दूसरों पर न छोड़ना चाहिये।

बाढ़ै पूत पिता के धर्मा, खेती उपजै अपने कर्मा ॥ ४१ ॥

पिता के कर्मों का फल पुत्र को सफल करता है, परन्तु खेती में अपने ही हाथ से करने पर सफलता होती है।

नित्तै खेती दुसरे गाय, नाहीं देखै तेकर जाय।
घर बैठल जो बनवै बात, देह में वस्त्र न पेट में भात ॥ ४२ ॥

नित्य खेती और दूसरे दिन गाय की देख-भाल न करने से ये दोनों

नष्ट हो जाती हैं। जो लोग घर बैठे ही काम न करके खेती की बातें किया करते हैं, वे कभी भी सफल नहीं हो सकते हैं।

कृषि-क्रियाओं का मासिक कार्य-क्रम

जनवरी

१—गन्ने के खेत की जोताई करना और उनमें २० या २५ गाड़ी प्रति एकड़ खूब सड़ी हुई खाद डालना चाहिये।

२—गन्ने के खेत की भूमि को नरम बनाने के लिये समयानुसार गन्ने की नालियों को गोड़ते रहना चाहिये।

३—यदि जाड़े के दिनों में वर्षा न हो तो गेहूँ तथा रबी की अन्य फसलों की दूसरी या तीसरी सिंचाई कर देनी चाहिए।

४—बेकार चीजें जैसे तरकारी का डंठल और गन्ने आदि की पत्तियों को इकट्ठा करके कम्पोस्ट बनाना चाहिये।

५—गुड़ बनाने का काम जारी रखना चाहिये।

फ़रवरी

१—यदि गन्ना बोनेवाले खेत में नमी की कमी हो तो उसे सींचकर तब बोना चाहिये।

२—नीम की खली को महीन करके ३ या ४ मन प्रति एकड़ कूँड़ में डाल देना चाहिये।

३—फ़रवरी के दूसरे और तीसरे सप्ताह में गन्ना बो देना चाहिये।

४—रबी की उन्नतिशील फसलों में से देसी या दूसरे बीज के पौधों को उखाड़कर फेंक देना चाहिये, ताकि अच्छे बीज में कोई मिलावट न रहे।

मार्च

१—बोये हुए गन्ने में अच्छी तरह से उगती हुई घासों को जड़ समेत निकालकर धूप में सूखने के लिये डाल देना चाहिए ताकि गन्ने में घास जोर न करे।

२—मार्च के अन्त में गन्ने की सिंचाई कर देना चाहिए।

३—पहिली सिंचाई के ४ या ५ दिन बाद जहाँ तक सम्भव हो दोपहर के बाद 'अकोला हो' या देशी हल से गुड़ाई कर देनी चाहिये।

४—जानवरों की सरिया में ६ इंच तक मोटी तह भुरभुरी मिट्टी को फैला देना चाहिये और उसे समतल करते रहना चाहिये। साथ ही जानवरों के पेशाब और गोबर से भीगी हुई मिट्टी को भुरभुरी मिट्टी से ढँकते रहना चाहिये ताकि वह सोख ले। और सप्ताह में एक बार मिट्टी की तह को गोड़ कर उलट देना चाहिये ताकि मिट्टी जानवर के मूत्र इत्यादि को खूब सोख ले।

५—रबी की फसल को काटना चाहिये। उन्नतिशील बीज की फसल को देसी फसलों से अलग रखकर दाना निकाल लेना चाहिये, जिससे अच्छे बीज में मिलावट न होने पावे।

६—कम्पोस्ट बनाने के लिये पेड़ से गिरी हुई पत्तियों को जमा करना चाहिये।

अप्रैल

१—कुदाल या कस्सी से गोड़े हुए गन्ने को १५ या २० दिन के अन्दर सींच देना चाहिये।

२—बीच-बीच में (खाली जगहों में) गन्ने को दुबारा बो देना चाहिये।

३—रबी फसल की दँवाई आरम्भ कर देना चाहिये।

४—जानवरों के नीचे जमाई हुई मिट्टी की तह को गन्ने की नालियों में या खेतों में डालकर उसकी जगह नई भुरभुरी मिट्टी बैलों के नीचे फिर डाल देना चाहिये।

५—रबी की फसल कटने के बाद ही खेतों की जुताई कर देनी चाहिये ताकि खेत गर्मी भर खूब सूखें।

६—पत्तियों को प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा करके जानवरों के नीचे डालना चाहिये और फिर उसे निकालकर समतल जमीन पर कम्पोस्ट का ढेर लगा देना चाहिये। इसी तरह से इस काम को जारी रखना चाहिये।

मई

१—गरम ऋतु की जोताई जारी रखना चाहिये।

२—३ फिट ऊँचा कम्पोस्ट का ढेर लगाने के लिये जानवरों के नीचे पौधों का डन्ठल व सूखी पत्तियों को डालते रहना चाहिये और उसे कम्पोस्ट के ढेर पर जमा करना चाहिये। अच्छा कम्पोस्ट बनाने के लिये पत्तियों के साथ घर का कूड़ा-करकट व राख और जानवरों के नीचे की मिट्टी और कुछ गोबर भी कम्पोस्ट के ढेर में डालते रहना चाहिये।

जून

१—कस्सी से गन्ने की गहरी गुड़ाई और सिंचाई १० जून तक अवश्य करते रहना चाहिये।

२—वर्षा होने के बाद तुरन्त ही अरहर, मक्का और मूँगफली इत्यादि खरीफ की फसल को बो देना चाहिये।

३—वर्षा आरम्भ होने के पहिले ही कम्पोस्ट का ढेर पहली उलटाई के लिये तैयार हो जाना चाहिये।

४—हरी खाद के लिये सनई मूँग नम्बर १ लोबिया नम्बर १ या ढेंचा बो देनी चाहिये।

५—आरम्भ जून में गन्ने की मेड़ें गिराकर बराबर कर देना चाहिये।

६—धान, ज्वार और अन्य खरीफ की फसलें वर्षा आरम्भ होने पर बो देना चाहिये।

जूलाई

१—पहिले सप्ताह में कम्पोस्ट के ढेर को उलटना चाहिये, फिर उसी के ऊपर आध पाव या तीन छटाँक सनई का बीज बो देना चाहिये।

२—जिन खेतों में वर्षा के अन्त में गेहूँ या जौ बोना हो उनमें मूँग नम्बर १ या लोबिया नम्बर १ बो देना चाहिये।

३—खेत को तैयार करके महीने के दूसरे पक्ष में बाजरा बोना चाहिये।

४—कपास और मक्का इत्यादि की निकाई और गोड़ाई इस महीने में करना आवश्यक है।

५—कुआरी धान की निराई भी इसी महीने में होती है।

६—गन्ने में मिट्टी इसी महीने में दो बार चढ़ा देना चाहिये।

७—अगहनी धान की रोपाई ५ जुलाई से आरम्भ करके इसी महीने में समाप्त कर देना चाहिये।

अगस्त

१—खूब वर्षा होने के बाद इस महीने के आरम्भ में बरसाती कम्पोस्ट के ढेर की दूसरी पलटाई कर देनी चाहिये।

२—हरी खाद के लिये बोई हुई सनई या ढेंचा या गुआर को बोने के सात सप्ताह बाद मिट्टी पलटनेवाले हल से जोत देना चाहिये। रबी बोनेवाले खेतों में सनई की जोताई १० अगस्त के पहिले और गन्ने के खेत की सनई २० अगस्त तक अवश्य जोत देना चाहिये नहीं तो हरी खाद नहीं सड़ेगी। परन्तु यह पाटा देकर मिट्टी पलटनेवाले हल से ही करना चाहिये ताकि पौधे मिट्टी से ढँक जावें।

३—गन्नों को गिरने से बचाने के लिये जड़ पर मिट्टी चढ़ाकर ऊपर बाँध देना चाहिये।

४—मूँग नम्बर १ लोबिया नम्बर १ की फलियाँ व दाने इकट्ठा करना चाहिये।

५—अगहनी धान की रोपाई १० अगस्त तक अवश्य समाप्त कर देना चाहिये। रोपाई देर में करने से पैदावार घट जाती है।

सितम्बर

१—पहिले सप्ताह में बरसाती कम्पोस्ट की तीसरी पलटाई कर देना

चाहिए। मूँग नम्बर १ या लोबिया नम्बर १ की फसल जोतकर मिट्टी के नीचे दबा देनी चाहिए।

२—जल्द तैयार हुए धान और मक्का की फसल को काट लेना चाहिए और इस तरह खाली हुए खेत को चना और मटर बोने के लिये जोत डालना चाहिये।

३—रस्सी बनाने के लिये सनई को काटकर साफ पानी में सड़ाना चाहिये।

४—१५ सितम्बर के बाद मिट्टी पलटनेवाले हल से जोताई बन्द कर देना चाहिये। रबी बोवाई करने के लिये खेत में पाटा देकर फिर उसे देशी हल से जोतकर तैयार करना चाहिये। मिट्टी पलटनेवाले हलों से जोताई करने से बरसात के अन्त में नमी उड़ जाने का डर रहता है। खेत सूख जाने पर रबी का बीज अच्छा नहीं उगेगा।

अक्तूबर

१—महीने के पहिले दस या बारह दिन रबी के खेतों की जोताई करना चाहिये। फिर इसके बाद चना, जौ और मटर बो कर फिर अन्तिम सप्ताह में गेहूँ बोना चाहिये।

२—रबी की फसलों में सिंचाई के लिये क्यारी बनाना चाहिये।

३—इस समय तक बरसाती कम्पोस्ट की खाद तैयार हो जायगी। इसे खेतों में डाल देना चाहिये।

४—खेत में नमी रोकने के लिये सितम्बर के अन्त में और अक्तूबर में जोताई शाम को या रात में करना चाहिये और धूप निकलने के पहिले पाटा फेर देना चाहिए।

नवम्बर

१—पशुशाला में सूखी मिट्टी और पत्ती इत्यादि डालना चाहिये।

२—गेहूँ और दूसरी रबी की फसलों की सिंचाई, बोआई के २०-२५ दिन या एक महीना बाद करना चाहिये।

३—मूँगफली को पहिले सप्ताह में खोद लेना चाहिये।

४—गन्ने की पेराई का प्रबन्ध करना चाहिये।

५—नये गन्ने की बुवाई के लिये महीने के अन्त तक नालियों को खोद कर तैयार कर देना आवश्यक है। उत्तर-प्रदेश के पूर्वी जिलों में जहाँ पर गर्मी के दिनों में लू चलती है गन्ने की बुवाई नालियों में बोने से अच्छी होती है। जहाँ की भूमि मटियार है और हवा सूखी और गरम नहीं है और सिंचाई के लिये पानी भी काफी है वहाँ गन्ने को नालियों में बोने से अधिक लाभ नहीं है। ऐसी जगहों में बराबर ज़मीन में ही गन्ना बोना चाहिये।

दिसम्बर

१——नये उन्नतिशील कोल्हू से गन्ने का रस निकालकर अच्छी भट्ठियों पर गुड़ बनाना चाहिये।

२——यदि पड़ोस में कोई गन्ना पेरने का मिल हो तो वहाँ गन्ना पहुँचाकर उसकी बिक्री करना चाहिये।

३——गन्ने के खेत में खाद डाल देना चाहिये और उसकी जोताई करना चाहिये।

उन्नत कृषि प्रसार

कृषि विज्ञान ने इस देश में गत पचास वर्षों से विशेष उन्नति की है परन्तु उनसे हमारे किसानों को पूरा लाभ नहीं हुआ है।

प्रसार का काम यही है कि ये सब चीजें किसानों तक पहुँचाई जायँ और किसान भाई इन सब चीजों पर काम करने लगें। इसके अतिरिक्त किसानों की समस्याओं को कृषि-विज्ञान के जानने वालों के सामने लाकर उनके सरल उपाय जानने की चेष्टा करके किसानों तक पहुँचायें और इसीलिये प्रसार एक ओर तो वैज्ञानिकों के आविष्कारों को किसान तक पहुँचाता है और दूसरी ओर किसानों की ऐसी समस्याओं को जिनपर कुछ काम नहीं हुआ है, विज्ञान के कार्यकर्ताओं के सामने लाकर उनका उपाय चाहता है। इस तरह से सिलसिला एक ओर से दूसरी ओर तक लगा रहता है।

प्रसार के लिये अति आवश्यक बातें——प्रसार के लिये मुख्य सिद्धांत किसी भी देश के लिये या किसी खास देश के भाग के वहाँ के सामाजिक तथा साँस्कृतिक स्थिति का ध्यान रखना अति आवश्यक है। इस जानकारी में स्थानीय रीति-रिवाज, धार्मिक विचार, वहाँ के कृषि के ढंग तथा यंत्रों के प्रयोग को ध्यान में रखना अति आवश्यक है कि प्रचार की वृद्धि प्रजातंत्र उपायों से की जाय। अगर कोई चीज ऊपर के दबाव से की जाती है तो यह सम्भव है कि उसमें कुछ काम का होना दिखाई देने लगे। परन्तु वे चीजें दबाव के समाप्त होते ही नष्ट हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त प्रसार का कार्य सीधा-सादा और लोगों की भाषा में ही होना चाहिये। जो काम करने वाले हों वह अपने कार्य से निपुण लोगों से मिल-जुल कर कार्य करने में चतुर और देश-सेवा की भावना से काम करने वाले होने चाहिये। जो कर्मचारी अपने को किसानों से ऊँचा समझते हैं और सेवा-भाव से काम नहीं करते, प्रसार के कार्य से सफल नहीं हो सकते। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रसार के अधिकारी वर्ग लोगों से खूब मिलकर काम करें।

प्रसार के उपाय——प्रसार के लिये यह अति आवश्यक है कि जिस

गाँव में यह काम किया जावे उनमें पहले जाकर पूरी जानकारी कर ली जाय कि वहाँ की क्या-क्या मुख्य समस्यायें हैं। ऐसा मालूम करने के लिए यह अनुभव किया गया है कि प्रसार के अधिकारी लोग एक जगह गाँव की जनता को बुलाकर बात करें। ऐसी समस्याओं पर ज्यादा ध्यान दिया जावे जिसका परिणाम वास्तविक और शीघ्र मिले। उदाहरण के लिए यह पाया जाता है कि हमारे प्रदेश में खेती के लिए पानी की बड़ी कमी है। इस बात को किसान भली भाँति जानते हैं। प्रसार के अधिकारी जब गाँव में जायें तो इन्हें उन सुविधाओं की पूरी तरह से जानकारी होनी चाहिए जो कि सरकार किसानों को दे सकती है। वास्तव में यह अच्छा है कि उनसे यह कहा जाये कि बगैर सरकारी मदद से वे कैसे अपनी समस्याओं पर काबू पा सकते हैं। जब यह बातें मालूम हो जायँ तो यह देखना अति आवश्यक है कि उसके लिये रुपये-पैसे का तथा और दूसरी सुविधाओं का प्रबन्ध कैसे हो सकता है। प्रसार के कार्यकर्त्ता के अपने उपायों का पूरा नक्शा बना लेना अति आवश्यक है और गाँव में उसपर काम शुरू करना चाहिये।

प्रसार करने के ढंगः——प्रसार करने के ढंगों में सामाजिक शिक्षा का उत्तम स्थान है। सामाजिक शिक्षा, प्रसार के लिए एक ऐसी स्थिति पैदा करती है जिससे कि प्रसार का काम बहुत आसान हो जाता है और उसके फैलने में कोई रुकावट नहीं होती। सामाजिक शिक्षा आराम और मनोरंजन के लिये भी आवश्यक है। इसका अभिप्राय यही है कि हमारे ग्राम्य-जीवन में हर प्रकार से उन्नति हो। अपने प्रदेश के किसानों की उन्नति के लिए नीचे लिखे कुछ उपाय प्रसार में बहुत सहायता देते हैं।

कृषि प्रदर्शनः——खेती में उन्नति स्थापित करने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि किसानों को इस बात का विश्वास दिला दिया जाये कि उन्नतिशील ढंग से जो कार्यकर्ता कार्य करना चाहता है, वह वास्तव में श्रेष्ठ है। उदाहरणार्थ अगर देशी गेहूँ के बीज के स्थान पर कोई दूसरा बीज काम में लाया जावे तो कार्यकर्ता के लिए यह आवश्यक होगा कि वह इस प्रकार के प्रदर्शन को एक ही खेत के दो बराबर हिस्सों में दोनों बीज को बोये। किसान स्वयं उन क्षेत्रों को बोने के समय से लेकर उसके पक जाने के समय तक परीक्षा करता रहेगा। पकने पर दोनों हिस्से अलग-अलग काट कर व दाँय कर उनकी पैदावार की तुलना की जाय। इससे केवल एक व्यक्ति लाभ नहीं उठायेगा वरन् दूसरे कृषक भी लाभ उठायेंगे। इस प्रकार के प्रदर्शन गेहूँ, जौ, चना, मटर, तथा गन्ने के बीजों पर किए जाने चाहिये। विविध प्रकार की खाद के लिए भी इस प्रकार के प्रदर्शन आवश्यक हैं। यह प्रदर्शन किसानों को भिन्न-भिन्न प्रकार की खेती के तरीकों की श्रेष्ठता के विषयों

में विश्वास दिला सकते हैं। विकास-कार्य में इस प्रकार के प्रयोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

सार्वजनिक क्षेत्रों का खोलना:—पंचायत घरों के समान इस प्रकार के क्षेत्र खोले जाने में प्रोत्साहन देना आवश्यक है जहाँ लोग इकट्ठे हो सकें। ऐसे क्षेत्रों में तसवीरें, पुस्तकें तथा इश्तहारों का संग्रह होना चाहिए और प्रौढ़-शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन मिलना चाहिए। ऐसे स्थानों को सार्वजनिक केन्द्र बनाया जाय जहाँ से कृषि, सफाई स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी कार्य-क्रम प्रसारित हो सकें।

किसानों के लिये मेले तथा नाटकों का आयोजन:—ग्रामीण जनता को इन सब प्रकारों की सूचना का ज्ञान कराने के लिए मेले तथा नाटकों का आयोजन बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुआ है। नाटक, कवि सम्मेलन तथा दर्बारों का आयोजन ग्रामीण जनता में नये विचारों को फैलाने में सफल होते हैं। किसानों का एक जगह से दूसरी जगह जाना जहाँ पर कुछ रचनात्मक कार्य हो रहे हों, बड़ा ही लाभदायक सिद्ध हुआ है।

प्रतिस्पर्धा:—फसल को उन्नतिशील बनाने के लिए कृषि-प्रदर्शन, बालकों के स्वास्थ्य में उन्नति के लिए बाल-प्रदर्शन, सफाई की उन्नति के लिए सफाई प्रदर्शन, पशुओं की उन्नति के लिए पशु प्रदर्शन, बहुत उपयोगी साबित हुए हैं। प्रदर्शन साधारण ग्रामीणों को एक जगह इकट्ठा करने में पर्याप्त रूप से लाभदायक सिद्ध हुए हैं। विकासवादी कार्यकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह यह ध्यान रक्खे कि कृषकों को सर्वतोमुखी उन्नति करना है। उसका ध्येय कृषकों की तथा अन्य ग्रामीण जनता की आर्थिक, सामाजिक तथा अध्यात्मिक उन्नति करना है। आर्थिक उन्नति से नाना प्रकार की कृषि सम्बन्धी उन्नति सम्बन्धित है जैसे, श्रेष्ठ बीज का उपयोग, पशुओं की नस्ल में उन्नति, बीमारियों की रोक-थाम, भूमि की उर्वराशक्ति में उन्नति, रुपया उधार लेने की सुविधायें तथा उपज की बिक्री। उत्तरप्रदेश में जहाँ कि समुदाय-विकास का कार्य आरम्भ हो चुका है, बहुधन्धी सहकारी समितियाँ अर्थ सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने में लगी हैं। प्रौढ़ शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, तथा गाँव की सफाई और अन्य आवश्यक कार्य ग्राम पंचायत द्वारा हल किए जा रहे हैं।

विकास कार्य में ग्रामीण पाठशाला का स्थान:—शिक्षा आयोजन में उच्च माध्यमिक विद्यालय तथा माध्यमिक विद्यालयों का विशेष स्थान है और यही पाठशालायें समुदाय क्षेत्र बनाई गई हैं। इनमें एक विकास अध्यापक की व्यवस्था की गई है। इस अध्यापक का विद्यार्थियों को कृषि के उच्च साधनों से शिक्षा देना तथा उनको खेतों पर ले जाकर कृषि-कार्य कराना होगा। वार्षिक प्रदर्शनों द्वारा विद्यार्थियों को यह दिखलाया जायगा कि किस प्रकार उत्तम बीज

तथा उत्तम साधनों से खेती की प्रगति उन्नतिशील हो सकती है। इन अध्यापकों को आयोजन विभाग से पूर्ण सम्पर्क रखकर कार्य करना होगा। उनके विकास कार्य तथा उनके प्रदर्शनों का निरीक्षण क्षेत्र विकास अफसर तथा जिला आयोजन अफसर द्वारा होगा। इसके अतिरिक्त इन अध्यापकों का निरीक्षण शिक्षा विभाग के उच्चाधिकारियों द्वारा भी होगा। हर एक स्कूल में भूमि, अन्य साधन तथा अच्छे बीज के केन्द्रों की व्यवस्था की जायेगी। विकास अध्यापक जिला कृषि अफ़सर तथा अन्य स्थानीय कृषि कर्मचारियों से विशेष कर बीजों की प्राप्ति में सहायता लेगा। विकास अध्यापक जिन गाँवों में कार्य करेंगे, उन ग्रामों में आयोजन विभाग के सेवक काम नहीं करेंगे। जिले में जिला विद्यालय निरीक्षक, जिला आयोजन अफ़सर से समय-समय पर विकास के प्रश्नों पर सहायता लेता रहेगा और दोनों एक मत होकर कार्य करने का प्रयत्न करेंगे।

उत्तम खेती-संघ——खेती के बहुत से काम ऐसे हैं जिनको अकेला किसान चाहे जितनी मेहनत करे, पूरा नहीं कर सकता। कभी उसको पैसे की कमी होगी तो कभी दूसरे प्रकार की सहायता की आवश्यकता होगी। सब कामों को उचित रूप से करने के लिये "उत्तम खेती-संघ" हर गाँव में होना चाहिये।

इन उत्तम खेती-संघ या पंचायतों की रजिस्ट्री सरकार की तरफ से हो जाती है। ऐसी सहकारी समितियों को यह अधिकार होगा कि वे अपने मेम्बरों से चन्दा करके गाँव की उन्नति के लिए खर्च कर सकें। इसके अलावा जिन कामों के लिये ज्यादा पैसे की आवश्यकता होती है, उनके लिये सरकार से तकावी मिल सकती है। इन्हीं पंचायतों से खेती की हर तरह की उन्नति की जा सकती है। उदाहरण के लिये इन पंचायतों के कुछ काम नीचे लिखे जाते हैं:——

अच्छी खेती के लिये उत्तम बीज बहुत ही आवश्यक है। लेकिन हमारे किसानों को उत्तम बीज की तो बात ही क्या, कभी-कभी बीज का मिलना ही असंभव हो जाता है। प्रायः हर गाँव में एक ऐसा महाजन होता है जो किसानों को सवाई या डेढ़गुने पर बीज देता है। लेकिन वह यह नहीं देखता कि जो अनाज बीज के लिये दिया जा रहा है, वह अच्छा है या बुरा। उत्तम बीज बाँटने के लिये कुछ सहकारी गोदाम खुले हैं जिनसे पंचायतों को बढ़िया बीज अपने मेम्बरों को बाँटने के लिये मिल सकता है।

हरी खाद की जोताई के लिये 'पंजाब' और 'विक्टरी' हल जरूरी हैं। कुट्टी काटने की मशीन, मड़ाई करने के लिये 'ओलपड थ्रेशर और ओसाई-की मशीन या 'विनोवर' अधिक दामों पर मिलते हैं। ऐसी मशीनें हर एक किसान

नहीं खरीद सकता लेकिन पंचायतों के लिये उनका खरीदना आसान है। पंचायतें इनको ख़रीदकर अपने मेम्बरों को थोड़े से किराये पर दे सकती हैं। किसानों के लिये इन पंचायतों द्वारा कोल्हू व कड़ाह का भी प्रबंध किया जा सकता है।

बहुत सी जगहों पर जंगली पशुओं से खेती को बड़ी हानि होती है। इनसे बचने के लिये काँटेदार तार खेतों के चारों ओर लगाना ही एकमात्र उपाय है। लेकिन काँटेदार तार यदि हर खेत या हर किसान के खेत पर अलग-अलग लगाया जाय तो खर्चा बहुत अधिक होगा। और अगर कई किसानों की जमीन का एक चक बनाकर उसके चारों ओर तार लगाया जाय तो जंगली जानवरों से रक्षा उतनी ही हो जायगी जितनी कि अलग-अलग तार लगाने से हो सकती है। परन्तु खर्चे में बहुत कमी हो जायगी क्योंकि ऐसी दशा में बहुत कम तार लगाने पड़ेंगे जैसा कि नीचे दिये हुए चित्र से विदित होगा।
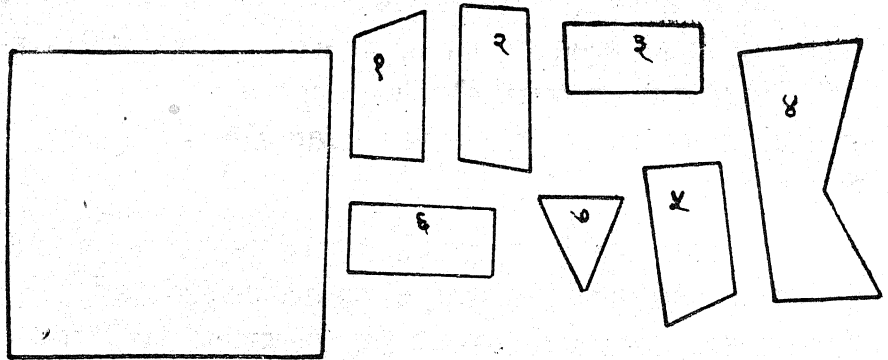
अलग-अलग खेतों की रखवाली करने में या उसके चारों ओर तार लगाने से खर्चा बढ़कर दसगुना से भी अधिक हो जाता है जो कभी अकेले किसान के बस का नहीं है। अगर पूरा गाँव खेतों की रक्षा के लिये तार इत्यादि लगाना चाहे तो बहुत थोड़े खर्चे में सब खेतों की रक्षा हो सकती है। लेकिन यदि हर किसान अलग-अलग अपने खेतों को बचाना चाहे तो इतना अधिक खर्च पड़ेगा कि कोई किसान नहीं दे सकेगा।

खेती की रखवाली का काम भी यदि पंचायत करे तो बहुत सस्ते में सबकी फसलों की रक्षा हो सकती है। लेकिन यदि हरएक किसान अलग-अलग अपने खेतों की रखवाली करे तो बड़ी मेहनत और बहुत अधिक खर्चा होगा। बहुत जगह गाँवों में किसान लोग आपस में चन्दा करके पंचायती रखवालों को रखते हैं। यह बड़ी अच्छी प्रथा है और सब ग्राम-पंचायतों को कृषि के रखवाले रखने चाहिये।

बहुधा गाँवों में कुआँ, तालाब या नहर के पानी से सिंचाई होती है। तालाब से सिंचाई होने वाली जगहों में किसानों को पानी सस्ता मिल जाता

है। लेकिन जहाँ सिर्फ गहरे कुओं से सिंचाई होती है, वहाँ किसानों को बहुत कठिनाई से पानी मिलता है। कुओं से सस्ता पानी लेने के लिये उनमें बोरिंग कराना, रहट लगाना या कहीं-कहीं पर इंजन और पम्प लगाना आवश्यक हो जाता है। इन सब कामों में अधिक खर्च होता है जो छोटे-छोटे किसानों की पहुँच से बाहर है। लेकिन इन कामों को पंचायतें आसानी से कर सकती हैं और सरकार की ओर से भी पंचायतों को तकावी इत्यादि की सहायता मिल सकती है जिससे ये सब काम आसानी से हो सकते हैं। बहुत सी जगहों में छोटी-छोटी नहरें, गूलें और नालियाँ सिंचाई के लिये निकालनी पड़ती हैं या पानी के निकास के लिये नाले खोदने पड़ते हैं। इस प्रकार के कामों को कोई किसान अकेला नहीं कर सकता। मगर पंचायत के रुपये या मेम्बरों की मेहनत से यह सब काम सरलता से किये जा सकते हैं। और सरकार भी इन पंचायतों की अच्छी सहायता करती है।

यह मानी हुई बात है कि अच्छे साँड़ का अच्छा बच्चा और छोटे साँड़ का छोटा बच्चा होता है। और खेती के लिये अच्छे बैल होना आवश्यक है। यह भी मानी हुई बात है कि एक किसान, जिसके पास एकाध गाय और दो-चार बैल होते हैं, एक साँड़ नहीं रख सकता। हमारे देश में पहिले यह रिवाज था कि साँड़ गाँवों में स्वतंत्र घूमकर चरते थे लेकिन अब धीरे-धीरे यह प्रथा टूटती जाती है। इसलिये लाचार होकर साँड़ों के लिये खाने का प्रबंध करना पड़ता है। साँड़ पालने का काम भी ऐसा है जिसको पंचायत ही कर सकती है।

इन विशेष कामों के अतिरिक्त पंचायत और भी बहुत से कामों को जितनी आसानी से कर सकती है उतनी आसानी से हर किसान अलग-अलग नहीं कर सकता है।

इसी तरह फसल की रक्षा का काम पंचायत द्वारा सस्ता और अच्छा हो सकता है। जिन गाँवों में ईख, बाजरा, मक्का जैसी फसलें बोई जाती हैं, वहाँ लगभग सभी किसान उन्हें बोते हैं और हर एक किसान को अपने-अपने खेत की रखवाली का अलग-अलग प्रबन्ध करना पड़ता है। और यदि किसी के घर में रखवाले पूरे नहीं हैं तो जानवरों से बहुत हानि हो जाती है और यदि मजदूरी पर रखवाला रखा गया तो खर्चा इतना अधिक हो जायगा कि उस फसल से बचत बहुत कम रह जायगी। यदि कुछ किसान मिलकर ऐसी फसलों को एक चक में बो लें और बारी-बारी से रखवाली करें या चन्दा करके एक या दो रखवाले रख लें तो बड़ी सुविधा हो जाय और खर्च कम पड़े। आशय यह है कि पंचायत बनाकर किसान कम से कम खर्च में अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं।

भारतवर्ष में पंचायती विचार कुछ नवीन आविष्कार नहीं है। यह प्रथा तो हमारे देश में प्राचीन काल से ही चली आती है।

खेती करने के लिए केवल किसान और पशु ही काफी नहीं हैं। एक किसान को बढ़ई, लोहार, कुम्हार, चरवाहा, नाई और धोबी इत्यादि की भी आवश्यकता है। यदि किसान इन सब को मजदूरी देकर काम लें तो वे इतना पैसा कहाँ से पा सकते हैं। आजकल भी ये पेशेवर मिलजुल कर काम करते हैं। यदि एक हल बनाता है तो दूसरा फाल, एक खेतों पर किसान को पानी पिलाता है तो दूसरा मोट या चरस तैयार करता है, एक कपड़ों को धोता है तो दूसरा खेती के यंत्र और बर्तन बनाता है। तात्पर्य यह है कि यह सब रोज-गारी अपने-अपने कर्त्तव्य (रोजगार) बिना पैसा लिये साल भर करते रहते हैं और फसल आने पर अपना-अपना हिस्सा पैदावार में बाँट लेते हैं। एक तरह से सब किसान मिलकर पंचायती रूप से लोहार, बढ़ई आदि को नौकर रखे हुए हैं। यही उद्देश्य हम बड़े से बड़े काम में भी रख सकते हैं और ऊपर लिखे हुए लाभ प्राप्त कर सकते हैं। सच पूछिये तो दुनिया का सब सुख किसान को पंचायत और सहकारिता के द्वारा प्राप्त हो सकता है।

पुस्तक मिलने का पता
भानुप्रतापसिंह
मुद्रक —
नव ज्योति प्रेस